Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

20 रुपए

वागर्थ

अंक 215
जून 2013

भारतीय भाषा परिषद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

न मैं किसी गिरजे में जाता हूँ और न किसी मन्दिर में, न मैं नमाज पढ़ता हूँ और न रोजा ही रखता हूँ, न संध्या ही करता हूँ और न कोई देव-पूजा ही करता हूँ, न किसी आचार्य के नाम का मुझे पता है और न किसी के आगे मैंने सिर ही झुकाया है। तो इससे प्रयोजन ही क्या और इससे हानि भी क्या? मैं तो अपनी खेती करता हूँ, अपने हल और बैलों को प्रातःकाल उठकर प्रणाम करता हूँ, मेरा जीवन जंगल के पेड़ों और पत्तियों की संगति में गुजरता है, आकाश के बादलों को देखते मेरा दिन निकल जाता है। मैं किसी को धोखा नहीं देता; हाँ यदि मुझे कोई धोखा दे तो उससे मेरी कोई हानि नहीं। मेरे खेत में अन्न उग रहा है, मेरा घर अन्न से भरा है, बिस्तर के लिए मुझे एक कमली काफी है, कमर के लिए लँगोटी और सिर के लिए एक टोपी बस है। हाथ-पाँव मेरे बलवान हैं, शरीर मेरा अरोग्य है, भूख खूब लगती है, बाजरा और मकई, छाछ और दही, दूध और मक्खन मुझे और बच्चों को खाने के लिए मिल जाता है। क्या इस किसान की सादगी और सचाई में वह मिठास नहीं जिसकी प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदाय लम्बी-चौड़ी और चिकनी-चुपड़ी बातों द्वारा दीक्षा दिया करते हैं?

सरदार पूर्णसिंह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation ... by IKS-MoE-2025

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Book Donated
By
Agnishekhar & Kshama Kaul

वागर्थ

भारतीय भाषा परिषद की मासिक पत्रिका

मैं जानती हूँ, तुम यह कविता पढ़ रहे हो
जब तुम चलते हुए स्टोव पर दूध गरम करते हो
तुम्हारे कंधे पर रोता हुआ एक बच्चा है
और तुम्हारे हाथ में किताब है
क्योंकि जीवन छोटा है और तुम प्यासे भी हो

एडरीइन रिच

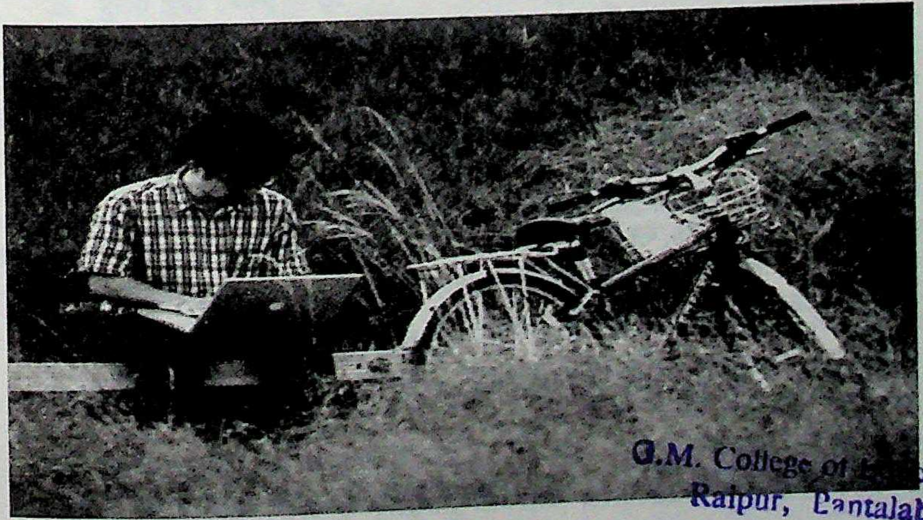

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No.....4566
Dated.......18.12.2023

संपादक

एकान्त श्रीवास्तव □ कुसुम खेमानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Book Donated
By
Agnishekhar & Kshama Kaul

वागर्थ 215

साहित्य और संस्कृति की मासिक पत्रिका

जून 2013

संरक्षक : इन्द्रनाथ चौधरी, द.जयकांतन, केदारनाथ सिंह
संपादक : एकान्त श्रीवास्तव ❐ कुसुम खेमानी
प्रबंध संपादक : डॉ. कुसुम खेमानी
प्रकाशक : नन्दलाल शाह
संपादन : अवैतनिक

संपर्क :
संपादक- वागर्थ
भारतीय भाषा परिषद
36ए शेक्सपियर सरणी, कोलकाता 700 017
फैक्स नं.: (033)22817476
सम्पर्क : एजेंसी, वितरण एवं सदस्यता, मो.09903508796, फ़ोन : (033) 2287 9962
शिकायत : प्रशासनिक अधिकारी-09339431576
ई-मेल : bbparishad@yahoo.co.in

मूल्य : एक अंक : 20 रुपए

सदस्यता शुल्क:
200/वार्षिक, 550/त्रिवार्षिक, 900/पंचवार्षिक, 3000/आजीवन

संस्थाओं के लिए :
220/वार्षिक, 600/त्रिवार्षिक, 975/पंचवार्षिक, 3000/आजीवन

विदेशों के लिए : एक अंक : 4 डालर, वार्षिक : 40 डॉलर
(सारे भुगतान मनीआर्डर/चेक/बैंक ड्राफ्ट वागर्थ, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता के नाम से देय। कोलकाता के बाहर के चेक में 35 रुपए और अधिक जोड़ें।)

- प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक एवं भारतीय भाषा परिषद की अनुमति आवश्यक है।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

- वागर्थ से संबंधित समस्त विवाद कोलकाता न्यायालय के अधीन होगा।

प्रबन्ध व्यवस्था : अपूर्व कुमार बनर्जी, मोहन लाल गुप्ता
प्रस्तुति सहयोग : सुशील कान्ति, मिथिलेश प्रसाद, मीनाक्षी दत्तागुप्ता, शिव प्रसाद श्रीवास्तव, तारक नाथ राय
वितरण : सूर्यदेव सिंह, अशोक बारीक, बैद्यनाथ कामती, खेत्राबासी बारीक, संतोष सिंह, प्रदीप नायक, मिलन सरदार, जगदीश दास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुक्रम

Book Donated
By
Agnishekhar & Kshama Kaul

देश–देशान्तर

2 **सरदार पूर्णसिंह** : किसान की सादगी

131 **विस्लॉव शिम्बोर्स्का** : साधारण चीज़ें

बतरस

127 **हिन्दी की साहित्यिक विरासत और आधुनिक जगत में उसकी समीचीनता**

कथा–साहित्य

7 **राज शेखर** : मास्टरजी का मटरू

16 **अनिता सभरवाल** : रौशनियाँ

26 **मुरारी शर्मा** : पहाड़ पर धूप

32 **लक्ष्मीनन्दन बोरा** : मनुष्य का मोल (असमिया कहानी : अनुवाद : शर्मिला बोहरा जालान)

37 **आइजक वेशिविस सिंगर** : अलटेली (यिदिश कहानी : अनुवाद : इन्दुप्रकाश कानूनगो)

आलेख

46 **काशीनाथ सिंह** : खोज : अपनी और अपने समय की

51 **राजी सेठ** : रचनात्मक अंतरालों का अन्वेषक- रिल्के

55 **प्रकाश परिमल** : खून के महासमन्दर में खड़े तमस को चीरती तीन रौशन मीनारें

कविता

59 **शिवकुटी लाल वर्मा** : अब चलता हूँ, बाण बना दे, एक मुक्तक

60 **प्रयाग शुक्ल** : मिलन व्यथा कथा, जब दिखती है मोह लेती है, झर झर झरता वह बहता

63 **गोविन्द माथुर** : कौवे : तीन कविताएँ

65 **नरेश चंद्रकर** : जीवन के सिम्त, केदार जी ने सही कहा था, बातचीत, एंबुलेंस, क्या नाम दूँ क्या उपमा दूँ

68 **कुमार वीरेन्द्र** : तब तक, रखवारी, छाया

70 **भास्कर चौधुरी** : रंग, मृत्यु, दस की बिटिया

71 **सतीश कुमार सिंह** : औरत, लिखो कवि

72 **दुर्गा शंकर राय** : पार्लर में लड़की, तुम्हारे भीतर, जैसे किला

73 **सौम्या शर्मा** : ओ मेरे बचपन, राख से निकलता पेड़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संवाद

74 **साहित्य का आधार साहित्य होना चाहिए**
(अब्दुल बिस्मिल्लाह से बिजय कुमार रबिदास की बातचीत)

गीत

78 **अनूप अशेष :** उँगलियों में छोह लेपे, खूँटियों पर टँगे, चेहरे आते, जले हुए पेड़ नहीं

80 **यश मालवीय :** दुख कि अर्जन है हमारा, एक प्रतिनिधि चीख जैसे, कबिरा ने तो चादर बीनी, चल पड़ें चलो पैदल–पैदल

ग़ज़ल

83 **अहद प्रकाश :** ख़ामोश दिल, उल्टा ज़माना, मिट्टी की ख़ुशबू

ललित निबन्ध

84 **दादूराम शर्मा :** माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः

अन्तःपाठ

90 **परेश** : चिथड़े में लिपटा सुख (निर्मल वर्मा का उपन्यास : एक चिथड़ा सुख)

चैत की लाल टहनी

94 **बेबी कुमारी** : नमी, रोज, चाँद, क़िस्से, अकाल

परख

96 **स्वप्निल श्रीवास्तव** : जहाँ एक जंगल था (उपन्यास) **मदन मोहन**
100 **हेमंत कुकरेती** : कविता समग्र – बलदेव वंशी : **सं कृष्णदत्त पालीवाल**
103 **राजेश सक्सेना** : जहाँ भी हो जरा सी संभावना (कविता संग्रह) **प्रदीप जिलवाने**
106 **रश्मि सील** : उसकी हँसी को मुक्त कर दो (कविता संग्रह) **किरण श्रीवास्तव**
109 **प्रताप सिंह** : बसेरा (उपन्यास) **हरिसुमन बिष्ट**

लोकमत : 112
झरोखा : 116
वागर्थ प्राप्ति स्थान : 120
सांस्कृतिक गतिविधियाँ : 122
पुस्तक मिली : 125

आवरण : नेट से साभार
रेखांकन : प्रभात

वागर्थ वेबसाइट : www.bharatiyabhashaparishad.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मास्टरजी का मटरू

राज शेखर

मास्टरजी! शहर के एक छोटे से स्कूल में पढ़ाते थे। बड़े ही लगनशील थे। जिस काम में लग जाते, उसे पूरा किए बिना नहीं रुकते। वे प्राय: अपने सभी कार्य खुद ही करना चाहते थे। नाक नुकीली, गोल चेहरा, आँखें छोटी, साँवला रंग, शरीर दुबला-पतला, पेट उठा हुआ जैसे किसी ने उलटी हाँड़ी रख दी हो। कुर्ता पायजामा पहनते, किन्तु मूँछें राजकपूर स्टाइलवाली रखते थे। बाल भी हमेशा उसी के जैसा बनाते थे। बातें करते तो बहुत सोच समझ कर, जैसे एक-एक शब्द तौल-तौल कर रख रहे हों। उनका कद नाटा था, परन्तु उनकी बातों से हमेशा विश्वास झलकता था। उनके जीवन से सम्बन्धित तमाम घटनाएँ बहुत ही रोचक और मजेदार हैं। एक बार उनका ग्वाले से झगड़ा हो गया। झगड़े का कारण दूध की शुद्धता को लेकर था।

जो लोग पॉलिथीन वाला दूध नहीं पीना चाहते हैं, वे शुद्धता की खोज में ग्वाले के पास पहुँच जाते हैं। मास्टरजी भी इसी खोज में थे। उनके जीवन में शुद्धता का बहुत महत्त्व था। अब उन्हें कौन बताए कि भैया! आज के समय में शुद्धता कहाँ से आयेगी? वह भी दूध बेचनेवाले के पास से। आधा दूध और आधा पानी। कभी-कभी दूध की माँग बढ़ी, तो डिटर्जेंट से ही दूध बना दिया। कौन-सा खुद पीना है।

दूध की शुद्धता को लेकर मास्टरजी की अपनी श्रीमती से हमेशा झड़प हो जाया करती थी। दूध ग्वाला दे और भकझक पत्नी से, क्योंकि दूध लाने का कार्य होम मिनिस्ट्री के पास ही था। मास्टरजी अपनी पत्नी के मामले में कुछ ज्यादा ही सहृदयी थे। वे अन्य लोगों से हुई मानसिक परेशानी को अपनी पत्नी से उलझकर शान्त कर लेते थे। एक बार मास्टरजी खाने पर बैठे। साथ में दूध भी आया। पीते समय दूध का स्वाद कुछ अच्छा नहीं लगा। बस मास्टरजी अपनी पत्नी पर उबल पड़े-

'यह कैसा दूध है? मानों किसी ने दूध में दवा घोल दी हो।'

पत्नी भी आश्चर्य में पड़ गयी। झुँझलाकर बोली- 'आपकी तो सब चीज में खोट निकालने की आदत है। मैं जो भी करती हूँ, वह आपको अच्छा नहीं लगता है।'

'तुम पीकर तो देखो, तब समझ में आयेगा।'

'अच्छा लाइए इधर।'

पत्नी ने दूध लिया और एक घूँट पीया था कि दूध मुँह से बाहर आ गया। वह औ-औ करते हुए बेसिन की ओर भागी। मास्टरजी गुस्से से लाल हो रहे थे। तुरंत अपने बच्चों को भेजकर ग्वाले को बुलवाया। उसने दूध की शुद्धता को लेकर कई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तरह की सफाई दी, मगर मास्टरजी ने उसका हिसाब-किताब कर उसे चलता किया।

दूसरे दिन मास्टरजी एकदम सबेरे उठे। बिना किसी को बताए बाहर चले गए। पत्नी ने सोचा कि उनसे पूछे कि कहाँ जा रहे हैं? किन्तु मन में भय हुआ कि वे बिगड़ जायेंगे और बोलेंगे कि जब देखो जाने के समय टोक देती है। इसलिए वह चुप रही। काफी देर बीत जाने के बाद भी जब मास्टरजी न लौटे तब वह चिंतित हो उठी। मन अंदर ही अंदर किसी अनहोनी को लेकर घबड़ाने लगा। समय काटने के लिए घर से बाहर निकलकर रास्ता देखने लगी। सड़क लम्बी थी। इसलिए बहुत दूर जब किसी के आने की आकृति प्रकट होती, तो उसे लगता कि मास्टरजी ही आ रहे हैं। निकट आने पर मालूम होता कि कोई और है। बच्चे मम्मी की इस हरकत का मजाक भी उड़ाते। तभी बच्चों ने कहा कि 'मम्मी साइड हो जाओ, गाय आ रही है।' वे सभी साइड हो गए। दो व्यक्ति गाय लेकर आ रहे थे। वे दोनों उनलोगों के पास आकर रुके और पूछा-

'मास्टरजी का घर कौन सा है?'

बच्चों ने कहा- 'यही है। क्या बात है? बताइए।'

'गाय कहाँ बाँधनी है?' उन दोनों ने कहा।

'क्या? यह किसकी गाय है? आप गलत जगह आ गए' -मास्टरजी की पत्नी ने आश्चर्यचकित हो कहा। किसी को समझ में नहीं आ रहा था। यह कैसा मजाक हो रहा है? ये यहाँ गाय लेकर क्यों आये हैं और ऐसा कैसे हो सकता है? तभी मास्टरजी भी पीछे से आ गए। उन्होंने उनसे कहा-

'भैया! इधर आँगन में गाय को बाँध दो। हाँ और यह बछड़ा इस साइड। सुरक्षित रहेगा।' अपने बच्चों की तरफ देखते हुए मुस्कराते हुए मास्टरजी ने कहा।

अबतक घरवालों को यह बात समझ में आ गयी थी कि गाय उनके घर आ गयी है। बच्चे बहुत खुश थे कि उनके यहाँ अब गाय रहेगी। खासकर बछड़े को लेकर ज्यादा उत्साहित थे। पत्नी अंदर ही अंदर मास्टरजी की बुद्धि पर आश्चर्यचकित थी। लेकिन इस समय कुछ बोलना उसे उचित नहीं लगा। चुपचाप घर के अंदर गई और एक थाली में हल्दी, सिंदूर, चावल, घास आदि ले आयी और गाय की पहले पूजा की; फिर उसे बाँधने दिया।

घर में किसी को गाय पालने का कोई अनुभव नहीं था और गाय आ गयी। न गाय का गुहाल था और न ही गाय का खाना। इतना साधन कैसे जुटाया जाय? पत्नी परेशान। आखिर नहीं रहा गया। बोली-'आपके जैसा आदमी मैंने कभी नहीं देखा था।'

'तो अब देख लो।'

'पहले आपको सब इंतजाम कर लेना चाहिए था। इस तरह से कोई काम थोड़े ही होता है। संसार में कोई ऐसा नहीं करता। आप कढ़ाई चढ़ाकर सब्जी खरीदने जाते हैं।'

'संसार में ऐसे ही होता है। चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। सब इंतजाम हो जाएगा।' मास्टरजी ने पूरा भरोसा दिलाया।

बच्चों की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। वे बछड़े के साथ मग्न थे। बच्चे तो बच्चे ही होते हैं। उन्हें बस मनोरंजन का साधन मिलना चाहिए। अन्य दिन होता तो अभी तक उन्हें पढ़ाई करने के लिए डाँट पड़ चुकी होती। लेकिन आज का दिन. कुछ और था। अभी मास्टरजी अपने ही रंग में थे। वे कुछ और सोचकर अपना वक्त बर्बाद नहीं करना चाहते थे। वे थोड़ी ही देर में प्रबंध करने घर से निकल पड़े।

पत्नी को ये सारा कार्य फिजूलखर्ची लग रहा था। जब मास्टरजी चले गये तो बच्चों से अपने मन का उद्‌गार निकालने का उसे मौका मिल गया। अपनी सबसे बड़ी लड़की पूजा, जो 12 साल की थी, उससे कहा- 'देख लो पूजा, अपने पापा का हाल? मुझसे बिना पूछे इतना बड़ा काम कर दिया। घर में पहले से खर्च का बोझ इतना ज्यादा है। मैं कैसे घर चलाती हूँ, उन्हें क्या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पता? आज तक उन्होंने मुझे एक अच्छी साड़ी भी लाकर कभी नहीं दी।'

'लेकिन मम्मी! पापा ने कुछ अच्छा सोचकर ही ऐसा किया होगा।'

'तुम भी अपने पापा की एक नम्बर की चेली हो। अभी आगे देखना कि कितनी परेशानी होती है? उनको क्या है? घर जले तो जले दमकल तो देख ही लेंगे।'

राज शेखर

जन्म : *1979 में जन्म।*

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, एम. ए. एवं एम. फिल. तथा पीएच. डी.। बच्चन पर केन्द्रित लघु पुस्तिका 'जीवन के सत्य का अग्निपथ' प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई लेख प्रकाशित। कविता, कहानी एवं बाल-साहित्य लेखन में भी सक्रिय। सम्प्रति डी.जी.वैष्णव कालेज, चेन्नई में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत।

तभी उसका सबसे छोटा लड़का अमर, जो अभी 8 साल का था, माँ के पास अपना हाथ दिखलाता हुआ आया और बोला-

'मम्मी! बछड़े ने मेरा हाथ चाट लिया। तुम भी उसके पास चलो।'

'अच्छा चलो।'

माँ के लिए चाहे अपना बच्चा हो या किसी अन्य जीव का, वात्सल्य प्रेम तो उमड़ ही पड़ता है। वह अपने इस प्रेम को नहीं छुपा सकी। वह बछड़े के पास गयी और उसकी पीठ पर हाथ फेरकर पुचकारने लगी। इतना प्यार पाकर बछड़ा भी बोलने लगा। बच्चों ने कहा-

'लगता है इसे भूख लगी है। मम्मी, इसे रोटी खाने को दे दें?'

'अभी यह रोटी नहीं खा सकता। अभी बहुत छोटा है।' माँ ने समझाया।

'मम्मी! पापा कब आयेंगे?'

'बेटा, वह गाय का खाना लाने गए हैं। थोड़ा वक्त तो लगेगा, जल्दी ही आ जायेंगे।' माँ ने बेटे को समझाया और खुद ही बेसब्री से इंतजार करने लगी। सोचने लगी कि मास्टरजी ने सुबह से कुछ खाया भी नहीं और दूसरा पहर बीतने को है। वे हैं ही ऐसे। जब कभी किसी धुन में लग जाते हैं तो उसे पूरा किए बिना रुकते नहीं और आज तो उन्होंने हद ही कर दी। ग्वाला से लड़ाई क्या हुई गाय ही खरीद लाये। भला ऐसा भी कोई हो सकता है! आज के जमाने में किसमें इतनी हिम्मत है कि प्यास लगे और कुआँ खोदकर पानी पिये। वह इसी उधेड़बुन में थी कि मास्टरजी सब जरूरी सामान लिये टपक पड़े।

आते ही मास्टरजी ने गाय को खाना दिया और अकेले ही सारी व्यवस्था करने में जुट गए। पत्नी मास्टरजी को इस तरह से काम करते हुए देख हैरान हो गई और झट से पुरानी बातों को ताक पर रखकर वह भी काम में लग गई। दोनों बच्चे भी लग गए। थोड़ी ही देर में गाय के लिए कामचलाऊ व्यवस्था हो गयी। उनका घर बहुत बड़ा नहीं था। दो कमरे, एक बरामदा और एक आँगन के साथ-साथ घर के बराबर ही बाहर खुली जगह थी। उसे छोटी फुलवारी कहा जा सकता था। उसमें आम के दो बड़े पेड़ तथा छोटे-छोटे फूलों के कुछ पौधे थे। वहीं आम के एक पेड़ के नीचे कुछ ईंटें बिछा दी गयी थीं, जिस पर गाय आसानी से रह सके।

सारा काम निपटाकर मास्टरजी ने अपनी पत्नी से कहा- 'अब तुम गुस्सा मत हो। बच्चों को घर में ही शुद्ध दूध मिलेगा। उन ग्वालों से छुटकारा भी मिल गया। वे सोचते थे कि वही लोग जानवर पाल सकते हैं। अरे! उन्हें क्या पता कि एक मास्टर क्या-क्या कर सकता है?'

'मैं आपको कुछ नहीं कह रही हूँ। न ही गुस्सा हूँ। लेकिन आप अपना मायाजाल कुछ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ज्यादा ही फैला रहे हैं। हमलोगों को गाय पालने का कोई भी अनुभव नहीं है। मैं अभी तक यह नहीं सोच पा रही हूँ कि ये सब कैसे होगा?'

'कोई भी सबकुछ पेट से ही सीखकर नहीं आता। यहीं पर सीखता है। मैं सबकुछ कर लूँगा। चिंता करने की कोई बात नहीं है।' आज मास्टरजी का कांफीडेन्स सातवें आसमान पर था। शाम हुई और इसी कांफीडेन्स के साथ उन्होंने पूजा को बाल्टी लाने के लिए कहा।

'बाल्टी का क्या करोगे पापा?'

'जल्दी लेकर आ, गाय का दूध निकालना है।'

पूजा बाल्टी लेकर आयी और मास्टरजी ने गाय दुहने के लिए सबसे पहले बछड़े को खोला। फिर उसके थोड़ा दूध पीते ही उसे हटाया और लगे दूध निकालने। यह उनके जीवन का पहला अनुभव था। हाँ, उन्होंने ग्वाले को कभी-कभी दूध निकालते अवश्य देखा था। दूध निकालना इतना भी आसान कार्य नहीं होता। वह भी पहले अभ्यास में। मगर मास्टरजी का जुनून और उनकी कर्मठता उनसे सबकुछ बड़ी ही कुशलता से करा लेती थी।

उन्होंने थोड़ी देर में जैसे-तैसे करके लगभग पाँच लीटर दूध निकाल ही लिया और थक गए। पूरा दूध निकालना उनके वश का नहीं था। अब बारी थी बछड़े की। उसने शेष सारा दूध पी लिया। ऐसा मालिक पाकर बछड़ा भी धन्य हो गया।

धीरे-धीरे मास्टरजी एक सप्ताह के अंदर ही दूध निकालने में माहिर हो गए। गाय अच्छी नस्ल की थी और दूध देने की क्षमता 20 लीटर से कम न थी। पहले घर में दूध की खपत मात्र 2 लीटर हुआ करती थी। एक तो गाय को पालना बड़ी समस्या, दूसरी उससे बड़ी समस्या गाय का दूध। अब ऐसे में क्या किया जाए? पूरा परिवार समस्या का हल खोजता। एक हल दूध बेचने का था। मगर वह संभव नहीं हो पाया क्योंकि ऐसा करने पर मास्टरजी की स्थिति ग्वालों जैसी हो जाती। दूध के साथ पानी का तालमेल सभी तरह के विश्वास को तोड़ कर रख देता है। मास्टरजी अपनी प्रतिष्ठा खोना नहीं चाहते थे। उन्होंने एक दिन इसका बड़ा ही प्यारा निदान निकाला और अपनी पत्नी को बुलाकर कहा-

'बछड़ा है। दूध पर पहला अधिकार उसी का है। पहले उसे भरपेट पिला दूँगा। फिर जो मिलेगा उसे अपने लिए रखना है। उसमें भी बच जाए तो उसे गाय को पीने के लिए दे दूँगा।' यह कहकर मास्टरजी ने घर में जो दूध बचा था, उसे गाय को पिला दिया। यह एक अनोखी पहल थी। शायद ही ऐसा संसार में देखने को मिले।

उनकी पत्नी को यह बात बड़ी अटपटी लगी। उसने कहा- 'आपका ये सारा काम गोबर में घी डालने जैसा है। आपको जो करना हो कीजिए।'

पत्नी घर में बढ़ रहे खर्चों से परेशान थी। उसे मास्टरजी का यह कारनामा सही नहीं लगा। वह चाहती थी कि कुछ दूध बिक जाए तो क्या हर्ज है? उसका सोचना भी उचित था। पहले दूध पर जितना रुपया खर्च होता था अब उससे दस गुणा ज्यादा खर्च होने लगा। किन्तु इन सबसे मास्टरजी को ज्यादा फर्क नहीं पड़ता था। जहाँ ग्वाला बछड़ा-वछड़ा को दूध नहीं पिलाता, वहीं मास्टरजी बछड़े को अपने बेटे की तरह दूध पिलाने लगे।

अमर और पूजा का बछड़े से गहरा लगाव हो गया था। खासकर पूजा का। वह प्रतिदिन कुछ न कुछ उसे अपना खाना अवश्य देती थी। उसने बछड़े का नाम मटरू रख दिया था। मटरू इसलिए क्योंकि उसे मटर बहुत पसंद था। दोनों बच्चे प्रायः उसे मटर खाने को देते थे। वह उसे खाने के लिए हमेशा पागल रहता। सबलोग उसे मटरू के नाम से पुकारते थे। बच्चों ने उसे जी चटोरा भी बना दिया था। गर्मी के दिनों में बच्चे पानी में चीनी डालकर बर्फ जमाते थे। पूजा अक्सर उस बर्फ के गोले को मटरू के मुँह में डाल देती थी। मटरू उसे एक बार में तो खा नहीं पाता, मगर उसे धीरे-धीरे चाव से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चभलाता रहता।

मटरू बड़ा तगड़ा निकला और कुछ ही महीनों में बड़ा भी हो गया। मास्टरजी अपने हृष्ट-पुष्ट बछड़े को देखकर फूला नहीं समाते थे।

दो साल निकल गए। मास्टरजी को पता ही नहीं चला कि कब वह छोटा-सा मटरू इतना बड़ा हो गया। इस दौरान गाय ने एक और बाछी को भी जन्म दिया। वेतन का बहुत बड़ा हिस्सा गाय पर खर्च हो रहा था। श्रीमती जी इन सबसे बहुत व्याकुल हो जाती थी। गाय के ऊपर तो खर्च ठीक था, परन्तु अलग से इस मटरू का खर्च गाय से भी अधिक था। शहर में जानवर पालना और भी ज्यादा मुश्किल था। महँगाई अलग से थी। बछड़ा महँगाई से भी बढ़कर हो गया था।

ऐसी बात नहीं कि मास्टरजी इन सब बातों से अनभिज्ञ थे। किन्तु वे समझ नहीं पा रहे थे कि इसका करें तो क्या करें? कई ग्राहक स्वयं आते और बोलते मास्टरजी इसे बेच दीजिए। कोई कहता साँढ़ बनाएँगे तो कोई कहता बैल। कोई और होता तो उसे बेचकर मोटी कमाई कर लेता। इतने लोगों को आते हुए देखकर उनकी पत्नी ने एक दिन कहा- 'अब यह काफी बड़ा हो गया है। हमलोग इसे नहीं पाल पायेंगे। कई लोग आते हैं। किसी को दे देते हैं।'

'मैं इसको नहीं बेच सकता हूँ।'

'मैं बेचने की बात नहीं कर रही हूँ। जो भी जरूरतमंद हो उसे बिना पैसे के ही दे दीजिए।'

'किसको दे दूँ। सब कसाई आते हैं। तरह-तरह की बात कर अपना मतलब निकालना चाहते हैं।' मास्टरजी ने अपनी पत्नी को गुस्से से देखा।

'आपको सब कसाई ही क्यों नजर आते हैं। उसमें कुछ अच्छे भी तो हो सकते हैं।'

'मुझे किसी को नहीं देना है। तुमको लगता है, जो भी आए, उसे दे दूँ। मैं अपने हाथों से इसे कसाईखाने में कटने के लिए किसी को नहीं दे सकता हूँ। इतना बड़ा गोवध। राम-राम!'

'आपको जो करना है, कीजिए। लेकिन याद रखियेगा, यह बछड़ा नहीं रह गया है, अब यह साँढ़ है साँढ़। किसी दिन यह आपका काल भी बन सकता है। अब यह आपके वश का नहीं है।'

'देखते हैं।' कहकर मास्टरजी अपने मटरू के पास चले गए। वास्तविकता उन्हें भी मालूम थी। पर वे उसके प्रति अपने असीम प्यार और अपने आदर्शों से मजबूर थे।

वे अपनी पत्नी से खिच-खिच बंद करने के लिए कोई न कोई उत्तर दे देते थे। किन्तु वे भी लगातार समाधान ढूँढ़ने की कोशिश करते। बच्चों का क्या था? इतनी छोटी अवस्था में वे क्या समझ पाते? उन्हें भी मटरू से गहरा लगाव था। वे भी मास्टरजी की बातों में हाँ मिलाते और कहते, 'जो अमुकवा आया था- एकदम कसाई जैसा दिखता था।'

अपनी दिनचर्या में मास्टरजी एक दिन सुबह-सुबह जानवरों को खाना दे रहे थे। तभी वे जोर-जोर से चिल्लाने लगे। सबलोग दौड़कर उनके पास आये तो देखा कि मास्टरजी को साँढ़ बना मटरू पूरी ताकत के साथ मारना चाह रहा है और रस्सी टूटने पर है। अजीब स्थिति उत्पन्न हो गयी। आसपास के लोग भी आ गए। दूसरी रस्सी लाई गई और किसी तरह बंधनों में उसे जकड़कर उसपर काबू पाया गया। फिर भी वह अपना थूथन फुलाकर आक्रमण करने के मूड में था। मास्टरजी बड़े गुस्से में बोले- 'अब इसे कसाईखाना जाना ही होगा।

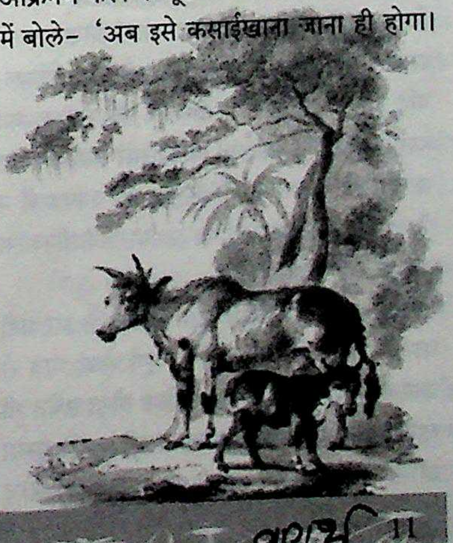

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरी बिल्ली मुझी से म्याऊँ। अभी जाकर तुम्हारा इंतजाम करता हूँ।'

घर के सभी लोग भयभीत हो गए। सबलोग मास्टरजी के पास जाकर खड़े हो गए। अगल-बगल के लोग मास्टरजी को इसे हटाने की सलाह देकर चले गए। सबके जाने के बाद पत्नी ने पूछा- 'क्या हो गया था? ये तो ऐसा नहीं करता था।'

'मुफ्त खाते-खाते चर्बी चढ़ गई है। इसकी अकड़ तो देखिए। खाना देने में थोड़ी देर क्या हो गई। मुझे ही मारने लगा।'

'मैंने आपको पहले ही कहा था कि कभी भी यह हमारा काल बन सकता है।' पत्नी ने अपनी भविष्यवाणी को सही साबित करने की कोशिश की।

'जो होना था हो गया। इसे किसी कसाई को बेचकर ही मेरी आत्मा शांत होगी।'

मास्टरजी बहुत क्रोध में थे। वह दृश्य भी काफी रोमांचक था। ऐसा लग रहा था कि बेटा जवान हो गया हो और बाप उसे हिस्सेदारी देने को तैयार न हो। मास्टरजी लगातार बोले जा रहे थे और मटरू अभी भी नाक फुलाये जा रहा था। कुछ देर बाद मामला शांत हो गया। लेकिन मास्टरजी ने कभी भी यह कल्पना नहीं की थी कि ऐसा भी हो सकता है। अब उन्हें अपनी पत्नी की बात उचित लग रही थी। पर क्या किया जाए? निदान इतना आसान नहीं था और उसे हटाना और भी मुश्किल। यदि उन्हें यह पता होता कि दूध की समस्या का हल निकालते-निकालते इतनी सारी समस्याएँ आ जायेंगी तो शायद वे भी शुद्धता के चक्कर में न फँसते और ग्वाले के यहाँ का अथवा पॉलिथीनवाला दूध पी रहे होते।

इतना सब होते हुए भी मास्टरजी ने हार नहीं मानी। अगले दिन से वे फिर पूर्ण सेवा भाव से जानवरों के साथ लग गए। लेकिन थोड़ा सचेत भी रहते। साथ ही उन्हें व्यवस्था पर भी काफी गुस्सा आता। वे अकसर पत्नी से कहते- 'आज बैलगाड़ियाँ नहीं रहीं। खेतों में बैलों की जरूरत नहीं है। और आजकल प्रजनन के लिए साँढ़ की भी आवश्यकता नहीं है। ऐसे में क्या किया जाए?'

पत्नी को भी दया आती। वह भी इन सबसे आहत थी। वह भी अफसोस करती। बात सही थी। अब वह प्रेमचंद के हीरा-मोती वाले बैलों का युग नहीं था और न ही रेणु के 'मारे गए गुलफ़ाम' के गाड़ीवान का। अब तो युग था मास्टरजी के बछड़े का, जिसकी अवहेलना सब जगह निश्चित थी।

ऐसे भी जानवरों के बारे में सोचने के लिए गिने-चुने लोग ही बचे हैं। जब लोग अपने ही जानवरों के बारे में नहीं सोचते हैं तो दूसरों के जानवरों के बारे में कौन सोचेगा? कई संगठन गिनाने भर के लिए हैं। जानवरों की रक्षा करनी चाहिए यह एक सिद्धांत भर रह गया है। सरकार की भी योजनाएँ धरी की धरी रह गयी हैं। न महावीर हैं और न ही गौतम बुद्ध। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के सिद्धांत भी पन्नों में ही सजकर रह गये हैं। इन सबके बीच कोई है तो मास्टरजी और उनका मटरू। वे अभी भी अपने बछड़े के हित में खड़े हैं। अहिंसावादी मास्टरजी की बात ही कुछ निराली थी।

आखिरकार मास्टरजी को समाधान मिल ही गया। वह भी सपने में। उन्होंने तड़के उठने के साथ पास सो रही पत्नी को जगाया और कहा-

'आज सपने में भगवान शिव का मंदिर देखा और वहीं पर अपना मटरू भी घूम रहा था। मैं वहाँ पूजा करने गया तो वह मेरे पास आ गया। पता नहीं इसका क्या मतलब है?'

'कुछ अच्छा ही होगा। आपने सपने में भगवान को देखा है।'

'तुमको पता है न कि कई लोग अपने बछड़े को दागकर भगवान शिव को समर्पित करते हैं। तुमने कुछ जगहों पर देखा भी होगा।'

पत्नी ने हाँ में केवल सिर हिलाया। उसे समझते देर न लगी कि अब वे क्या कहना चाहते हैं?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'तुम बताओ तो मटरू को भी दागकर छोड़ दें।' मास्टरजी ने आश्वस्त होकर कहा।

'आपका यह विचार सही है। ऐसा करने से इसको आजादी मिल जायेगी और हमारी समस्या भी खत्म हो जायेगी।' उनकी पत्नी को भी यह बात उचित लगी।

आज मास्टरजी काफी उत्साह में थे। उन्हें अंदर ही अंदर महसूस हो रहा था कि अब वे भी अपने बछड़े को सभी जगह घूमते हुए देख सकेंगे। उन्हें बनारस का वह दृश्य याद हो आया जहाँ कई ऐसे बछड़े भगवान शिव को समर्पित कर देने और उसे दाग कर छोड़ देने से वे सामाजिक प्राणी हो जाते हैं। उसके बाद उसे कोई दिक्कत नहीं होती। उनकी आँखों के सामने कई ऐसे बछड़े विचरण करते हुए दिखने लगे जो काफी हृष्ट-पुष्ट प्रायः सड़कों पर दिख जाया करते थे।

उसी दिन मास्टरजी ने दागनेवाले को बुलाया। मटरू का पैर बाँधा गया। लोहे की सलाखों को गरम किया गया और उसके पुट्ठे पर त्रिशूल का निशान बना दिया गया। हर हर महादेव के जयघोष के साथ सारा काम तमाम हो गया। उसने थोड़ा दर्द का अनुभव किया होगा, मगर वह अब बछड़े से साँढ़ बन चुका था और समाज में उसे खुला घूमने का अधिकार प्राप्त हो चुका था। उसे फंदे से आजाद कर दिया गया और घर से बाहर खुला छोड़ दिया गया। उसने खुलने के साथ हवा में दो तीन बार कुलाचें मारीं। कई बार फुफकार मारी, किन्तु उसे खुला वातावरण रास नहीं आया। वह बार-बार घर के अंदर आना चाहता था। यह देखकर मास्टरजी ने घर का दरवाजा बंद कर दिया।

मगर समाज में जगह कहाँ बची थी बछड़ों और साढ़ों के लिए या अन्य प्राणियों के लिए। जंगल कटते चले गए। मैदानों पर बड़े-बड़े घर बनते गए। आम रास्तों पर इतनी गाड़ियाँ हो गईं कि जब गाड़ियों के लिए जगह नहीं है तो जानवरों के लिए कहाँ से आये। इन सभी के बीच मटरू का एक नया संघर्ष शुरू हो गया।

घर से निकाल देने और आजाद कर देने के बावजूद मटरू मास्टरजी के घर के आसपास ही घूमता और आवाज लगाता रहता। दुनिया में उसका कौन अपना था? यदि कोई अपना था तो मास्टरजी और उनका परिवार। सबसे बड़ी समस्या मटरू के लिए भोजन की थी, जो बाहर कहीं उपलब्ध नहीं था। बेचारा क्या खाता? मास्टरजी भी इस बात को समझते थे। वे क्या करते? जब भी मटरू घर के पास आता, वे उसे भरपूर खाना देते। अब दूसरे तरह की विपत्ति उत्पन्न हो गयी थी। घर के अन्दर था तो वह सुरक्षित था। बाहर का क्या भरोसा? दागने से पहले उन्होंने नहीं सोचा था कि ऐसी समस्या भी आ सकती है। अब वे मजबूर थे। एक बार बाबा भोलेनाथ का नाम लेकर मटरू को आजाद कर दिया तो उसे अब घर के अंदर नहीं रखा जा सकता था।

इस तरह पूरे परिवार की चिन्ता मटरू की सुरक्षा हो गई। बच्चे दिन में कई बार घर से बाहर निकलकर उसे देखते कि वह कहाँ है और क्या कर रहा है? मास्टरजी भी स्कूल जाने और आने के क्रम में उसपर नजर रखा करते। जैसे-तैसे दिन गुजर रहा था और मटरू भी सामाजिक बनने की कोशिश कर रहा था। लेकिन मास्टरजी की समस्या कम नहीं हो रही थी।

एक दिन मास्टरजी स्कूल से आये तो बच्चों ने तुरन्त उन्हें मटरू के बारे में जानकारी देनी शुरू कर दी। अमर ने कहा-

'पापा! बगलवाले अंकल आए थे। मटरू की शिकायत कर रहे थे।'

'क्या शिकायत कर रहे थे?'

'यही कि मटरू आज उनके गार्डेन में घुस गया था। उसने उनकी पूरी बागवानी खराब कर दी।'

'अच्छा!'

'कह रहे थे कि कालोनी में मास्टरजी ने साँढ़ छोड़ दिया है। आज न कल यह किसी की हत्या अवश्य कर देगा।' इस बार पूजा ने यह बात

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बतायी।

ये सारी बात सुनकर मास्टरजी बहुत चिंतित हो गए। उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। उन्होंने पत्नी से कहा- 'विचित्र बात है। एक से बढ़कर एक समस्या आ रही है।'

'क्यों न इसे गाँव भेजवा दें? वहाँ काफी खुली जगह है और एक अलग तरह की आजादी भी है।' पत्नी ने समाधान दिया।

'तुम सही कह रही हो। आज ही पिताजी से बात कर इसे जल्दी से गाँव भेजवाने की कोशिश करता हूँ।'

अब मटरू बेचारे की इसमें क्या गलती थी? उसे क्या मालूम था कि किसी के गार्डेन में नहीं घुसना है। वह तो यही समझता था कि जैसा मास्टरजी का घर वैसा ही सभी का। वह मनुष्य की तरह भेदभाव नहीं जानता था। उसे तो सारा संसार ही एक जैसा दिखता था।

ऐसा नहीं था कि मास्टरजी की कालोनी में सबलोग उससे नफरत करते थे या परेशान थे। वह जब घरों के सामने से गुजरता था तब ऐसे घरवाले भी थे जो उसे कुछ न कुछ खाने के लिए देते थे। किन्तु कहीं-कहीं उसे पत्थर या छड़ी भी खाने को मिल जाता था। ऐसा भी हो सकता है कि जिसकी दुश्मनी थोड़ी बहुत मास्टरजी से थी, वे उनकी परेशानी और बढ़ाना चाहते थे। कारण जो भी हो, लेकिन इस तरह की दुनिया का खेला मटरू जैसा नादान प्राणी कैसे समझ सकता था?

मास्टरजी ने फैसला तो कर लिया था कि उसे गाँव भेजवाना है। पर वह इतनी जल्दी क्रियान्वित नहीं हो पा रहा था। इसी उधेड़बुन के समय एक बड़ी बुरी घटना घट गयी। मास्टरजी की पत्नी ने सबसे पहले देखा। वह चीख पड़ी। मास्टरजी घबराते हुए घर से बाहर आये और पत्नी से पूछा-

'क्या हुआ?'

'देखिए न, मटरू को क्या हो गया है? उसकी जाँघ से लगातार खून बह रहा है।'

'कहाँ? अरे! ये तो किसी ने इसे भाला मार दिया है।' यह कहते हुए मास्टरजी भी विचलित हो गए। बच्चे रोने लगे। पत्नी ने ऐसा करनेवाले को खूब बुरा भला कहा।

मास्टरजी ने फौरन डाक्टर को बुलाया। कुछ लोगों ने उसे पकड़ा, रस्सियों से बाँधा और डाक्टर ने बड़ी मुश्किल से इलाज किया। धीरे-धीरे उसका जख्म ठीक होने लगा। मास्टरजी के रुपये भी अच्छे खासे खर्च हुए। कालोनी के कई लोगों ने भी इस कृत्य की निंदा की, तो कई लोग मन ही मन प्रसन्न भी हुए। प्रायः समाज में दूसरे के दुख पर भी कई लोग सुख का अनुभव करते हैं।

धीरे-धीरे मटरू स्वास्थ्य लाभ लेता हुआ फिर से लोगों के प्यार और अवहेलना के बीच अपने को साधने लगा। इधर मास्टरजी ने गौर किया था कि मटरू आजकल कभी-कभी ही उनके घर आता है। वह प्रायः चौराहे पर गाँधी जी की प्रतिमा के नीचे बैठा रहता है। जब कभी मटरू उनके घर नहीं आता, तब वे ही उसके पास कुछ खाना लेकर चले जाते थे। काफी देर मास्टरजी उसके पास रहते। इशारों में ही आपस में कुछ संवाद भी होता। इसे मटरू या मास्टरजी ही समझ सकते थे। लेकिन उस सड़क से गुजरनेवाले लोग यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो जाते थे।

इतने दिनों में मटरू और भी बड़ा हो गया था। एक हट्टा-कट्टा साँढ़। उसका बचपन से खाया-पीया शरीर था। पूरे शरीर में हड्डी कहीं नहीं दिखाई पड़ती थी। पूरा शरीर मांसपेशियों से गँठा हुआ था। मास्टरजी ने उसके शरीर को बनाने में काफी मेहनत की थी। बहुत सारे रुपये उसपर खर्च किए गए थे। जब वह चलता तो बड़ा ही रोबदार लगता। मास्टरजी उसे देख बड़े खुश होते।

उसका प्रायः गाँधी जी की प्रतिमा के पास बैठना एक पहेली बन गयी थी। वह ऐसा भाला लगनेवाली घटना के बाद करने लगा था। इसके पीछे उसका कोई प्रतिक्रियात्मक संकेत था- नहीं कह सकते; क्योंकि था तो वह जानवर ही। यह उसकी सोच से परे था। अब वह मास्टरजी के घर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी कम ही जाता था। पता नहीं क्यों? लगता था जैसे उसे वैराग्य हो गया हो। मास्टरजी और उनके परिवार को यह बात बड़ी अखरती थी। इन सबसे दुखी होकर एक बार मास्टरजी ने अपनी पत्नी से कहा– 'मटरू को लेकर मेरा मन बड़ा उदास हो जाता है। हमलोगों ने उसके अच्छे के लिए ये सब किया था, लेकिन सब बेकार हो गया।'

'आप दुखी मत होइए। पिताजी परसों रविवार को इसे गाँव ले जायेंगे। उन्होंने कहा है कि हमलोग ज्यादा चिंता न करें।' पत्नी ने ढाढ़स दिया।

'गाँव में भी तो अपने ढंग की समस्या है। पता नहीं उसे वहाँ पर अच्छा लगेगा या नहीं।' मास्टरजी ने आशंका जाहिर की।

'यह कहना मुश्किल है कि उसे वहाँ कैसा लगेगा? मगर वहाँ खाने पीने की उसे कोई समस्या नहीं होगी। साथ ही, पिताजी भी उसे वहाँ देखते रहेंगे।' पत्नी ने उन्हें भरोसा दिलाने की पूरी कोशिश की।

'उसके साथ बड़ा बुरा हुआ है। हमलोगों के यहाँ वह राजा की तरह रहता था आराम से। अब उसके लिए जाड़ा, गर्मी और बरसात सब एक समान हो गया है।' मास्टरजी ने अफसोस जाहिर किया।

'वह तो है। पर हम भी विवश हैं। क्या करें?' पत्नी ने दुखी होकर कहा।

मास्टरजी का स्कूल जाने का समय हो रहा था। वे अनमने ढंग से स्कूल जाने की तैयारी में थे। वे अंदर से दुखी इस बात से भी थे कि मटरू परसों चला जायेगा। तभी पत्नी ने उन्हें खाने पर बुलाया। वे खाने के लिए आये और बोले– 'आज बहुत अच्छा नहीं लग रहा है।'

'क्या हुआ?' पत्नी ने तुरंत उनके सिर पर हाथ रखकर देखा कि कहीं बुखार तो नहीं हो गया है।

'कुछ नहीं, खाना दे दो।'

मास्टरजी ने अभी मुँह में एक ही कौर डाला था कि बच्चे घबराते हुए घर के अंदर आये। उनके मुँह से आवाज नहीं निकल पा रही थी। बड़ी मुश्किल से दोनों ने एक साथ ही कह डाला–

'पापा! देखो न वहाँ पर मटरू को क्या हो गया है? काफी भीड़ भी जमा हो गई है।'

इतना सुनते ही मास्टरजी खाना छोड़ उठ गए। वे अपने बच्चों के साथ भीड़ की तरफ ही दौड़ पड़े। भीड़ की तरफ से जो लोग आ रहे थे, वे आपस में बातें कर रहे थे। एकाध पंक्ति मास्टरजी ने भी सुनी। कोई कह रहा था कि जहर दे दिया गया है। कहीं से फुसफुसाहट आयी कि बेचारे साँढ़ ने क्या अपराध किया था? इन पंक्तियों ने मास्टरजी की बेचैनी और बढ़ा दी। उन्होंने अपनी गति और तेज कर दी। उन्हें लग रहा था कि वे एक ही छलाँग में वहाँ पहुँच जाते तो कितना अच्छा होता। किसी अनहोनी की आशंका ने उनका मन भारी कर दिया और उन्हें ऐसा लग रहा था कि किसी ने उनका दिल निकालकर वहाँ पर हवा भर दी हो। इसी बदहवास स्थिति में वे वहाँ पहुँचे। बहुत मशक्कत के बाद वे मटरू तक पहुँच सके, क्योंकि भारी भीड़ जमा थी। वहाँ का दृश्य देखते ही मास्टरजी स्तब्ध रह गये।

गाँधी जी की प्रतिमा के नीचे भारी भरकम मटरू गिरा तड़प रहा था। उसके मुख से झाग निकल रहा था। मास्टरजी को देखते ही मटरू उनकी ओर सिर उठाने की कोशिश करने लगा, मानों उनसे कुछ कहना चाह रहा हो। उसकी बाहर की ओर निकल रही आँखों से साफ दिख रहा था कि वह अत्यंत पीड़ा में है। इतना देखते ही मास्टरजी उसके गले लिपट गए। मास्टरजी के गले लगते ही मटरू ने अपनी आँखें बंद कर लीं।

द्वारा : सोनल चन्द्र, आई.पी.एस., बी-1/3, एस ए एफ गेम्स विलेज, कोयमबेदू, चेन्नई, तमिलनाडु मो.09444392500

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रौशनियाँ

अनिता सभरवाल

तनिशा सारा दिन सामने के पहाड़ों को देखती रही थी और अब रात हो गई थी।

निरंजना ने उसे कई बार वहाँ से उठने के लिए कहा भी, लेकिन वह तो जैसे किसी जादू के असर में थी। पल-पल कैसे रंग-रूप बदल रहे थे ये पहाड़ और नीचे की छोटी पहाड़ियाँ भी। कभी झक्क सफ़ेद, तो कभी काले-काले से। सूरज की रौशनी में सोने-से दमकते, तो कभी चाँदनी में जगमग-जगमग करते। और तो और कई बार तो उसे लगा- जैसे उसकी तरफ़ बढ़ आया है यह पहाड़। उसने उन्हें छूना चाहा तो, लापता-से हो गए। सफ़ेद-काले, चितकबरे-से बादल झूमते हुए जाने कहाँ से आते, पहाड़ों की चोटी पर कुछ देर के लिए सुस्ताते और चल देते। अगर हवा तेज़ होती, तो उनकी रफ़्तार भी तेज़ हो जाती। उसे सारा कुछ जाना-पहचाना-सा लग रहा था, लेकिन वह समझ नहीं पा रही थी कि ऐसा क्यों है।

'यह जगह तो बहुत अच्छी है माँ। कभी मुझे लगता है मैं यहाँ पहले भी आ चुकी हूँ। फिर अचानक ही लगने लगता है कि नहीं, यहाँ तो मैं कभी आई ही नहीं। ऐसा क्यों हो रहा है?' माँ बस मुस्करा दीं। उन्हें अच्छा लगा यह सुनकर।

'चलो अंदर। अब खाना खाते हैं।'

'लेकिन खाने के बाद मैं यहीं बैठूँगी... फिर से।' तनिशा ने बच्चों की तरह कहा।

'ठीक है। हम चाय यहीं पिएँगे।' निरंजना ने कहा।

उसे देखकर निरंजना सोच रही थीं, पता नहीं उन्होंने यहाँ आकर ठीक किया है या गलत। वह तो बड़ी उम्मीद लेकर आई थीं देहरादून। तनिशा को तो यही कहा था कि दिल्ली जा रहे हैं। देहरादून कहने से या तो उसे कुछ भी याद नहीं आता या फिर सब याद आ जाता और उसकी तबीयत फिर से खराब हो जाती। कितनी मुश्किल से तो वह उस दौर से निकल पाई थी। अभी भी पूरी तरह सामान्य नहीं थी। कभी एकदम चुप हो जाती, तो कभी बोलती रहती। कभी सब कुछ भूल जाती, तो कभी कुछ याद आते ही, रोने-चिल्लाने लगती। उसके मम्मी-पापा तो रो ही देते। वह अपनी सुध-बुध ही खो बैठी थी जैसे।

पिछले एक साल से तनिशा की यही हालत थी। अभी लगभग दो महीने से उसमें कुछ सुधार आ रहा था और काफ़ी ठीक थी वह। अब यहाँ लाने का मकसद तो यही था कि उसे बाकी सब भी याद आ जाए और वह कुछ बात करे इस बारे में। अपने अतीत के बारे में जब तक वह खुलकर बात नहीं करेगी, वह सामान्य नहीं हो पाएगी, उसका इलाज़ कर रहे मनोचिकित्सक ने कहा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह सब बिला-वज़ह तो नहीं हुआ था...

तनिशा -तनिशा रावत। निरंजना और धीरेंद्र रावत की बेटी। मकरंद रावत की छोटी बहन। मकरंद पिछले दो साल से लंदन में पढ़ रहा था। धीरेंद्र रावत पुलिस में एक उच्चाधिकारी थे और लखनऊ में पोस्टेड थे। यह सारी कहानी एक-डेढ़ साल पहले ही शुरू हुई थी, लखनऊ में ही।

तनिशा वहीं के एक कॉलेज में बी.ए. फ़र्स्ट इयर की छात्रा थी। उसके हँसमुख स्वभाव की वज़ह से जल्दी ही उसके कई दोस्त बन गए थे; जिनमें कनिष्क भी था। वह उससे दो साल सीनियर था। रैगिंग लेते-लेते ही दोनों में दोस्ती हो गई थी। बिना बाहों की टी-शर्ट पहने, अजीबोगरीब टैटू गुदवाए हुए और रंग-बिरंगे बालों वाला वह लड़का, लड़कियों में तो लोकप्रिय था, लेकिन निरंजना को वह पहली नज़र में ही पसंद नहीं आया। वह अक्सर घर भी आने लगा था। कभी किसी कार, जीप में, तो कभी किसी बाइक पर। एक दिन निरंजना ने तनिशा से कह ही दिया कि उस लड़के से फ़ालतू का मेलजोल न बढ़ाए, बल्कि उसे घर आने के लिए ही मना कर दे।

'क्यों? क्या खराबी है कनिष्क में?'

'बस, ठीक नहीं लगता मुझे। उसे देखने से ही समझ में आता है कि वह अच्छा लड़का नहीं है। बस अपनी अमीरी का प्रदर्शन करता रहता है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।'

'अरे वाह, यह भी कोई बात हुई क्या? आप फ़ेसरीडर हैं क्या? ऐसे ही किसी को बुरा नहीं कह सकतीं आप। वह भी कनिष्क को... दोस्त है मेरा। अच्छा बताइए, कभी आपसे मिसबिहेव किया है उसने?' तनिशा का स्वर बात करते-करते कुछ ऊँचा भी हो गया था, जो निरंजना को हैरान कर गया। फिर भी खुद पर काबू रखा उन्होंने।

'देखो तनिशा, तुम्हारे पापा की एक अलग रेपुटेशन है। यह एक सीनियर आई पी एस ऑफ़ीसर का घर है। हम नहीं चाहते, वह यहाँ आए। फिर वह तुम्हारी क्लास में भी नहीं है। सीनियर है तुमसे। और हाँ, मुझसे मिसबिहेव किया होता, तो यहाँ नहीं आ रहा होता अब तक।'

'मम्मा। आप शायद नहीं जानतीं कि उसके पापा एक बहुत बड़े बिल्डर हैं। नोएडा में जितना कंस्ट्रक्शन हो रहा है न आजकल, उसका लगभग फ़िफ़्टी पर्सेंट तो इन्हीं का है। बहुत अमीर और अच्छी फ़ैमिली से बिलांग करता है।' तनिशा कुछ गर्व से बोली थी।

'तो तुम इतना प्राऊड क्यों फ़ील कर रही हो इस फ़िफ़्टी परसेंट पर? मैं बस इतना चाहती हूँ कि वह घर न आए। अब मैं उससे कुछ कहूँगी, तो तुम्हें भी बुरा लगेगा और उसे भी। सो तुम्हीं कह देना।' निरंजना की आवाज़ में सख्ती और गुस्सा दोनों थे।

'ऐसे कैसे मना कर दूँ और क्यों? ही इज़ माइ फ़्रैण्ड। मेरे कहने से आप अपनी किसी फ़्रैण्ड को अपने घर आने से रोक देंगी?' तनिशा की आवाज़ अभी भी ऊँची ही थी।

'तनिशा, तुम भूल गई हो कि मुझसे कैसे बात करनी है। है न?'

'सॉरी माँ, लेकिन मैं आपकी यह बात नहीं मान सकती', कहकर वह अपने कमरे में चली गई।

फिर भी अगले रोज़ तनिशा ने कनिष्क से इतना तो कहा ही था कि उसके पेरेंट्स घर में लड़कों का आना पसंद नहीं करते। खास तौर से तुम्हारा।'

'कमाल है यार, किस दुनिया में रहते हैं वे? कोई बात नहीं, हम कॉलेज में तो रोज़ ही मिलते हैं न? तुम उनकी बात को ज़्यादा सीरियसली न लो। थोड़े दिन कहेंगे। अभी-अभी स्कूल से आई हो न और लड़की हो, इसीलिए। फिर पुलिस वाले हैं न तुम्हारे घर वाले। पता है, ये माँ-बाप होते ही इसलिए हैं। उन्होंने कह दिया, तुमने सुन लिया, लेकिन मेरे पेरेंट्स ऐसे नहीं हैं। मेरी बहनों को भी पूरी आज़ादी है, किसी भी वक़्त, कहीं भी आने-जाने की। बड़ी वाली तो दिल्ली में ही रहती हैं। बिल्कुल अकेली। उसे फ़्लैट लेकर दिया है पापा ने। एक दिन तुम्हें अपने घर ले चलूँगा। देखना, कितने प्यार से मिलते हैं सब। चलोगी न?'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'श्योर' तनिशा ने मुस्कराकर कहा।

वह खुश थीं। ऐसे ही माँ की बात से नाराज़ हो रही थीं। कनिष्क ने तो बिल्कुल भी बुरा नहीं माना। उसे कितनी अच्छी तरह समझा भी दिया। अब वह ध्यान ही नहीं देगी कि माँ क्या कहती है।

कनिष्क ठीक ही कह रहा था। वह कॉलेज में क्लास छोड़कर कनिष्क के साथ उसकी बाइक पर उसके घर गई थी। कनिष्क की दोनों बहनें, माँ और दादी सब कितने प्यार से मिलीं थीं। कितना बढ़िया चाय-नाश्ता करवाया था। आते वक़्त उसे कितनी सारी विदेशी चॉकलेट्स भी दी थीं।

'फिर आना', सबने कहा था।

उसकी माँ भी तो उसके सारे दोस्तों का ऐसे ही ध्यान रखती हैं। खूब खिलाती-पिलाती भी हैं। ज़रा सी देर हो जाए तो, घर भी पहुँचाती हैं। इस कनिष्क से इतनी प्रॉब्लम क्यों है?

कनिष्क ने घर आना बंद कर दिया था। तनिशा इस बात से कुछ दिन तो माँ से नाराज़ रही फिर सब ठीक हो गया। कॉलेज में दोनों की दोस्ती कुछ ज़्यादा ही आगे बढ़ गई थी। फिर उसका जन्म-दिन भी आया। उसने माँ को मना लिया था कि अब कनिष्क घर पर नहीं आता, लेकिन जन्म-दिन पर तो आ सकता है। माँ ने हाँ कर दी, लेकिन उसका लाया हुआ तोहफ़ा स्वीकार करने से साफ़-साफ़ मना कर दिया था। सोने का ब्रेसलेट। कनिष्क ने बहुत कहा कि उसकी माँ ने भेजा है।

'लेकिन हम तो उन्हें नहीं जानते न? किसी अनजान लड़की के लिए वे भला इतना महँगा तोहफ़ा क्यों भेजेंगी? तुम इसे ले जाओ। हम इसे नहीं रख सकते।'

दरअसल तनिशा ने गिफ़्ट खोलकर कनिष्क के सामने ही माँ को दिखा दिया था और वे अड़ ही गईं कि वह इसे वापिस कर दे। पापा ने कहा भी था कि आज रहने दो बाद में लौटा देना, लेकिन उन्होंने एक नहीं सुनी।

आखिर में कनिष्क ने अपना तोहफ़ा ले लिया और बिना खाना खाए चला गया। तनिशा खूब रोई-चिल्लाई थी। उसे अपनी और कनिष्क की बेइज़्ज़ती अखर गई थी। फिर बेमन से सबने खाना खाया और चले गए। उनके जाते ही तनिशा ने हंगामा कर दिया था। माँ ने गुस्से में उसके गाल पर एक ज़ोरदार थप्पड़ भी मार दिया। पापा उन दोनों को ही काफ़ी देर तक समझाते रहे थे। उन्होंने इतना ज़रूर कहा था कि न तो तनिशा को यह गिफ़्ट उसी वक़्त खोलकर माँ को दिखाना चाहिए था और ऐसा हो ही गया, तो निरंजना को चुप रहना चाहिए था। गिफ़्ट बाद में लौटा सकते थे।

इसके बाद घर में सन्नाटा छाया रहा था। अगले दिन तनिशा कॉलेज भी गई थी। लौटी, तो अपने कमरे में बंद हो गई। इसके बाद इतवार था, सो देर तक सोई रही। निरंजना जानती हैं कि एक तो इतवार को वह दस बजे से पहले उठती ही नहीं। और अगर नाराज़ हो, तो नाश्ता-खाना सब कमरे में ही मँगवाती है, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। निरंजना तो यही सोच रही थी कि उसे कॉलेज नहीं जाना है, सो उसे जगाया ही नहीं। उसे लगभग ग्यारह बजे सब पता चला था। वह तो तनिशा का मोबाइल बजता जा रहा था और वह उठा ही नहीं रही थी। पहले तो वे कुछ समझ ही नहीं पाईं कि क्या हुआ है। फिर देखा कि उसके कपड़े इधर-उधर बिखरे हुए थे। खुली अल्मारी में नज़र गई, तो देखा कि कुछ ड्रेसेज़ नहीं थीं। वे एकदम बेकाबू हो गईं और अपने पति से लिपटकर रोने लगीं। काफ़ी देर तक वे रोती रही थीं। तनिशा के पापा तो किसी सदमे में थे जैसे। तनिशा तो शनिवार की रात को ही घर से चली गई थी। रात दो बजे। वह कनिष्क के साथ घर से भाग गई थी। अचानक निरंजना एकदम से आँसू पोंछकर खड़ी हो गईं और अपने पति को सख़्त हिदायत दी थी कि किसी को भी पता नहीं चलना चाहिए इस बात का। आपके डिपार्टमेंट में भी नहीं। घर के नौकरों को भी नहीं।

'नौकरों को तो नहीं पता चलेगा, लेकिन इस तरह हम उन्हें कैसे खोज पाएँगे?'

'पहले तो मैं कनिष्क के घर जाऊँगी। मुझे पूरा-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनिता सभरवाल
22 अगस्त को जन्म। अँग्रेज़ी साहित्य में एम.ए.। दो उपन्यास– 'यात्राशेष' और 'तिरिया जात ना जाने कोई'। इसके अलावा रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

पूरा यक़ीन है कि वहाँ से ज़रूर कुछ पता चलेगा।'

'वहाँ से क्यों?'

'उसी का किया धरा है यह सब। आ'यम श्योर।'

'हाँ, उस दिन जो हुआ वह उसकी इंसल्ट के लिए बहुत था। उसी की नहीं, तनिशा की भी बेइज़्ज़ती कम हुई थी क्या?'

'अब आप मुझे दोष देने के बजाए, उनके घर चलिए।'

'अभी रुक जाओ। हम दोनों ही चलेंगे। मैं ज़रा ऑफ़िस होकर आता हूँ। पहले यह पता लगा लूँ कि कनिष्क, शहर में ही तो नहीं है।'

'लेकिन...'

'निरंजना, मुझे अपने तरीके से काम करने दो। बात बिगाड़ो नहीं।'

रावत साहब जानते थे कि निरंजना वहाँ जाएगी तो बात बिगड़ेगी ही। उन्होंने अपने तरीके से काम शुरू कर ही दिया था। उनके भरोसे के कुछ लोग थे जो किसी को कानोंकान खबर नहीं होने देते, क्योंकि इस बात में जितनी देर होती उतना ही उन्हें तलाश करना मुश्किल हो जाता। फिर वे अकेले ही कनिष्क के घर गए थे। घर में नौकरों के अलावा कनिष्क की बहन ही थी। एक पुलिस अधिकारी को देखकर वह थोड़ा घबराई तो थी, लेकिन उसने बड़ी तमीज़ से बात की थी। उन्होंने तो सीधे-सीधे पूछा था, 'कनिष्क कहाँ है? बुलाइए उसे।'

'वह तो कल से घर पर नहीं है।'

'तो कहाँ है?'

'पता नहीं, शायद दिल्ली... नहीं, मुझे नहीं पता।' वह कुछ घबरा गई थी।

'क्यों वह घर में बताकर नहीं जाता कि कहाँ जा रहा है?' उन्होंने प्यार से मुस्कराते हुए कहा।

वह कुछ सामान्य हुई उनकी मुस्कान देखकर और कहा, 'भैया जब भी जाते हैं, तो दिल्ली ही जाते हैं, इसलिए...'

'ठीक है, जब आए तो उसे कहना कि रावत साहब आए थे।'

वे आने के लिए मुड़े ही थे कि तनेजा साहब भी आ गए। उन्होंने बड़ी शिष्टता से बात की थी। रावत साहब ने उनसे पूछा, तो उन्होंने बिना किसी झिझक के बता दिया कि वह दिल्ली गया है।

'कब तक आएगा?'

'अब यह तो नहीं पता, लेकिन सर, आप उसके बारे में क्यों पूछ रहे हैं?' तनेजा साहब के चेहरे पर घबराहट थी।

'दरअसल उसकी एक दोस्त भी नहीं है। उसके घर वालों का कहना है कि वही ले गया होगा उसे। आप उससे बात करें और मुझे सारी जानकारी दें। अपने दिल्ली वाले घर का पता और फ़ोन नम्बर भी दीजिए मुझे।'

सारी जानकारी लेकर वे घर आए, तो निरंजना को देखकर फ़िक्रमंद हो गए। वह रोए ही जा रही थी। उन दोनों ने सुबह से कुछ भी नहीं खाया था। वे लोग यही सोचते रहे थे कि क्या हो गया और कैसे? क्या सच में निरंजना की गलती थी? तो क्या माँ-बाप अपने बच्चों को कुछ भी नहीं कह सकते?

इतनी-सी बात पर कोई घर छोड़कर जाता है क्या?

हुआ यह था कि जन्मदिन के अगले रोज़ जब तनिशा कॉलेज गई, तो कनिष्क बहुत नाराज़ था। उससे बात ही नहीं करना चाहता था।

'कनिष्क, मुझे भी बहुत बुरा लग रहा है। शर्म आ रही है मुझे खुद पर ही। पता नहीं माँ ऐसी क्यों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं?' वह रोने लगी।

'मैं तुमसे बात नहीं करना चाहता। चली जाओ यहाँ से।'

'इसमें मेरा कसूर क्या है? मैंने तो तुम्हारा तोहफ़ा स्वीकार कर लिया था।'

मेरी जो इंसल्ट हुई, उसका क्या? अगर मैं भी कुछ कह देता तो?'

'जानते हो मुझे तो माँ ने थप्पड़ भी मारा।' यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आई थीं।

'क्या कह रही हो यह तुम? कोई माँ इतनी बड़ी बेटी को मार सकती है क्या? तुम ऐसे घर में, ऐसे लोगों के बीच कैसे रहती हो तनिशा? मुझे अब तुम पर तरस आ रहा है, गुस्सा नहीं।'

'और कर भी क्या सकती हूँ?'

'तुम चाहो, तो मेरे घर रह सकती हो।'

वह सवालिया नज़रों से उसे देखती रही थी।

'देखो, हम एक-दूसरे को पसंद करते हैं। हम कुछ दिन साथ रहेंगे और सब ठीक हो जाएगा।'

'कैसे?'

'यह इतना आसान तो नहीं है। पहले तो हमें अपने घर वालों को सबक सिखाना ही होगा। हम कहीं दूर चले जाएँगे और शादी कर लेंगे। तुम्हारे पेरेंट्स को झक्क मार कर हमारी बात माननी पड़ेगी।' उसने अपना जाल फ़ैंकना शुरू कर दिया था।

'हमारा एक घर देहरादून में भी है। तुम मेरे साथ वहीं चलो।'

'शादी कैसे कर सकते हैं?' वह कुछ परेशान हो गई थी।

'वैसे ही जैसे की जाती है।'

'नहीं, मैं ऐसा नहीं करना चाहती। घर छोड़ना... नहीं, कनिष्क, कोई और तरीका भी तो हो सकता है अपना गुस्सा दिखाने का।' तनिशा परेशान हो गई थी।

'एक यही तरीका है। पेरेंट्स सोचते हैं, हम उनके बिना कुछ भी नहीं कर सकते। तुम मेरे साथ चलो तो सही। दो दिन में सब ठीक हो जाएगा।' उसने बड़े प्यार और भरोसे से उसे समझाया था।

'लेकिन तुम्हारे घर के लोग? वे क्या कहेंगे?'

'अरे, मैं तुम्हें वहाँ नहीं ले जाऊँगा।'

बस, वह चली आई उसके साथ। रात के लगभग दो बजे थे। उस वक्त तो वह उसे एक होटल में ले गया था।

'कनिष्क, पुलिस हमें यहाँ खोज ही लेगी।'

'हम कुछ घंटे ही रहेंगे यहाँ, सुबह होते ही निकल जाएँगे।'

'पर यहाँ?'

'डरो मत। कुछ ग़लत नहीं करूँगा तुम्हारे साथ।'

सुबह उसने कहा था कि वे देहरादून जा रहे हैं। रास्ते भर वह उसे समझाता रहा था कि वे दो-तीन दिन देहरादून, मसूरी घूमेंगे। तब तक तनिशा के घर वालों की अक्ल ठिकाने आ जाएगी, वगैरह-वगैरह। तनिशा का डर कुछ कम हुआ था और कनिष्क पर भरोसा भी हो गया था। देर रात को वे देहरादून पहुँच गए थे। तभी बादल गरजने लगे और तेज़ बारिश शुरू हो गई थी। जनवरी की बर्फ़ीली सर्दी, ऊपर से बारिश। वह टेरस पर आ गई। कुछ साफ़ नहीं दिख रहा था, लेकिन पहाड़ों का आस-पास होना उसे रोमांचित कर गया था। उस रात कनिष्क ने उससे जबरदस्ती शारीरिक सम्बन्ध बना ही लिए थे। वह बहुत रोई-चिल्लाई थी।

'इतना नाटक क्यों कर रही हो? क्या तुम नहीं जानती थी कि यह सब होगा ही? बेवकूफ़ लड़की।'

वह सुबकती रही। फिर उसने तनिशा से प्यार से बात की, 'देखो, आज नहीं तो कल होता यह। आखिर हम शादी करने ही वाले हैं न?'

वह उस कमरे में नहीं सो पाई। बाहर आकर बैठ गई थी सर्दी में। बहुत देर बाद अंदर आकर सोफ़े पर लेट गई थी। पता नहीं उसे कब नींद आई। सुबह उठी, तो उसकी नज़र पहाड़ियों पर अटक गई। कल तो कुछ देख ही नहीं पाई थी। रात की बारिश के बाद सब कुछ कितना अच्छा लग रहा था। सब कुछ धुला-पुँछा-सा।

केयरटेकर चाय की ट्रे ले आया था।

'गुडमॉर्निंग बेबी साब।' उसने बड़े अदब से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहा।

'गुडमॉर्निंग।' बड़ी मुश्किल से जवाब दिया था उसने।

'आप रात को ज़्यादा देर तक बाहर न बैठें। सर्दी पकड़ लेगी। आपको आदत नहीं है। पहाड़ों की ठंड तो देह चीर देती है।' उसने चाय का कप तनिशा को पकड़ाते हुए कहा। तनिशा ने देखा, उसकी नज़रों में कुछ था। उसे लगा वह सब जानता है। उसकी आँखें नम हो गईं।

उसे घर की याद आने लगी। कितनी बड़ी गलती हो गई उससे।

कनिष्क उसे फिर बिस्तर पर ले आया था। नाश्ते के बाद उसने कहा, 'मैं शादी का इंतज़ाम करता हूँ। कुछ दोस्त हैं, उन्हें लेकर आता हूँ।'

'मुझे वापिस जाना है। नहीं करनी तुमसे शादी। तुम चीट हो।' वह रोती रही थी। उसने कुछ खाया भी नहीं।

काफ़ी देर बाद वह दो दोस्तों के साथ आया था। वह डर गई थी। कनिष्क को बाहर ले जाकर कहा उसने, 'कनिष्क, हमने गलत किया है घर से आकर। हमें वापिस लौट जाना चाहिए। चलो न।'

'यू मस्ट टीच देम अ लेसन। पेरेंट्स हैं तो हमसे इस तरह से बात करेंगे? दो-चार दिन बाद जब हम घर जाएँगे न, तो देखना, उनके तेवर ही बदले होंगे।' वह हँसा, तो तनिशा तो डर ही गई। डरने वाली तो बात ही थी। वे तीनों उसे अगली सुबह तक बारी-बारी रौंदते रहे थे।

'बेबी, एक पुलिस ऑफ़िसर की बेटी होकर भी तुम इतनी बुद्धू हो -हैरानी हो रही है मुझे। तुम्हारी माँ ने यही कहा था न कि यह एक सीनियर पुलिस ऑफ़िसर का घर है। अब याद रखना, आगे से किसी को घर बुलाकर उसका अपमान न करना। बता देना अपने घर वालों को।'

वह रोते-रोते, मिन्नतें करते थक गई थी, सो चुप हो गई। सुबह वह बहुत बुरी हालत में थी। जब कनिष्क ने कहा कि वह रात को आएगा, तो वह कुछ नहीं बोली। उसने बल्कि राहत की साँस ली थी। ठीक ही कह रही थीं माँ। बच्चों को हमेशा बाद ही में माँ-बाप क्यों ठीक लगते हैं?

आज सारे नज़ारे उसे बेकार लगने लगे थे। वह बड़ी मुश्किल से उठी थी। सारा बदन बुरी तरह टूट रहा था। केयरटेकर यानी कि केशव बाबा चाय ले आए थे।

'बाहर नहीं आएँगी आप? आज तो अच्छी धूप खिली है।'

वह अपने कदम घसीटती हुई बाहर आई थी। ज़रा सा ही वक़्त तो हुआ था उसे यहाँ आए और कितना कुछ हो गया! और ये पहाड़ तो उसकी ज़िंदगी का अहम हिस्सा हो गए थे। उसकी तकलीफ़ के साक्षी!

तभी उसे ठंड महसूस होने लगी। सर्दियों में पहाड़ की ठंड! उसने खुद को अच्छी तरह लपेट लिया था।

'बेबी साब, मसूरी में बर्फ़ गिरी है, इसलिए घाटी में इतनी ठंड हो गई है।'

'मसूरी पास में ही है?' पूछा उसने।

'वह तो रहा।' केशव बाबा ने दूर इशारा किया।

'रात को देखना। पूरा पहाड़ बिजली से चमक उठेगा। वैसे कनिष्क बाबा वहीं तो गए हैं। आपको नहीं पता?'

तनिशा ने बस इंकार में सिर हिलाया था।

'वे कल ही लौटेंगे।'

'नाश्ते में क्या खाएँगी?'

'कुछ नहीं।'

'आलू के परांठे बनाता हूँ। ठीक?' वह बिना कुछ सुने चला गया।

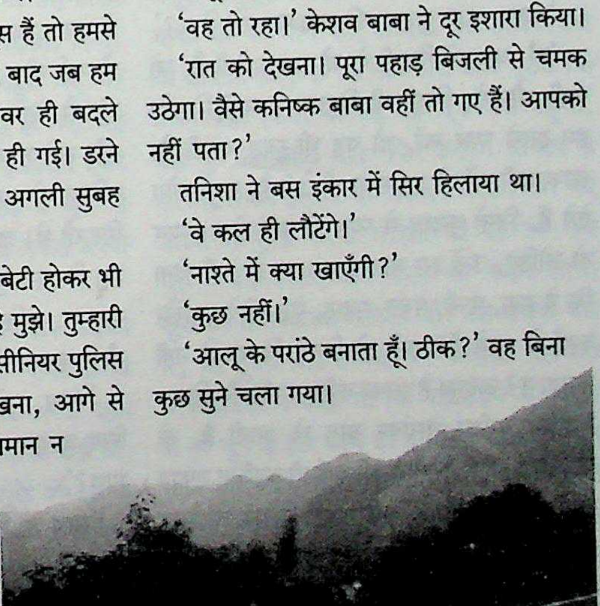

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तनिशा ने देखा था कि नाश्ते की ट्रे में पेनकिलर्स भी थे। बाबा को सब पता है। इस आदमी पर भरोसा किया जा सकता है क्या? वह खाते-खाते सोच रही थी। उसने गोलियाँ भी खा लीं।

'बेबी साब, आप कुछ देर सो जाएँ, आपकी तबीयत ठीक नहीं लग रही।'

वह रोने लगी।

'आप पहली बार आई हैं यहाँ?' वह नीचे बैठ गया था।

'हूँ।'

'कहते हैं, अगर आप अचानक ही पहाड़ों में आ पहुँचे, तो या तो बहुत अच्छा होता है आपके साथ या बहुत बुरा... पहाड़ बुलाते ही तभी हैं... और उन्हीं को जो उन्हें प्यारे होते हैं।'

'प्यारे होते हैं, तो उनके साथ बुरा क्यों होने देते हैं? उन्हें तो बचाना चाहिए न बाबा?'

'बेबी साहब, कुदरत की हर बात में कोई न कोई इशारा, रहस्य छिपा होता है। यह जो करती है न हमारे लिए ही करती है।' तभी बादल बनने शुरू हो गए थे। वह अंदर आ गई। कमरा साफ़ हो चुका था और गर्म भी था। वह रज़ाई में घुस गई।

'बाबा, आप कुदरत की बात कर रहे थे न?'

'हाँ। यह हमें ज़िंदगी के वो सबक देती है, जो कहीं और से, किसी भी किताब से नहीं मिलते। हम इससे प्यार करें, तो यह भी प्यार करती है। लापरवाही करें तो वह सज़ा भी देती है। बहुत लोग ऐसे हैं, जिन्हें कुदरत से प्यार ही नहीं होता। प्यार तो छोड़िए, उन्हें इस बात से मतलब ही नहीं होता कि ये हवा, पानी, पर्वत-पहाड़, पेड़-पौधे आखिर कहाँ से आते हैं? इन्हें तो किसी बिल्डर ने नहीं बनाया न? अद्भुत है इसका करिश्मा भी। रिमझिम-रिमझिम बारिश, भयंकर बाढ़ ले आती है, तो कभी रूठ जाती है। रुई-सी बर्फ़ ही बर्फ़ीला तूफ़ान लाती है। यही सूरज अपनी धूप से फ़सल तैयार करता है और गुस्से में सब झुलसाकर राख भी यही कर देता है। रिश्ते भी ऐसे ही बनते-बिगड़ते हैं। धीरे-धीरे गहरे होते हैं। कभी उनमें नर्मी, तो कभी गर्मी आती है। जो ऊपर से सख्त होते हैं न, वही सबसे ज़्यादा नर्म होते हैं।' तभी वह मुस्करा दिया और कहा, 'एक बात पूछूँ?'

तनिशा ने उसके चेहरे और आँखों में जाना-पहचाना-सा सवाल तैरता देखा और कहा, 'पूछिए।'

'आपके घर में पता है आप यहाँ हैं?'

'नहीं, मैं घर छोड़कर आई हूँ।'

'क्यों?'

'पता नहीं। मैं घरवालों से गुस्सा थी। पर मैं जानती हूँ कि मैंने गलत किया है।'

फिर तनिशा ने सब कुछ बता दिया। केशव बाबा ने लम्बी साँस लेते हुए कहा, 'आपकी माँ ने ठीक पहचाना था कनिष्क बाबा को। आप घर में फ़ोन करके बता दें कि आप यहाँ हैं। आपके पापा पुलिस में हैं। सब ठीक हो जाएगा।'

उसे बात करते-करते नींद आने लगी थी। बाबा उठकर बाहर आ गए और वह सो गई थी। शाम को उठी तो अचानक लाइट चली गई। वह बाहर आई। दूर देखा, तो पहाड़ अचानक कुछ काले-से लगने लगे थे। तभी उसकी साँस रुक गई जैसे। बर्फ़ के सफ़ेद-सफ़ेद गुच्छे पहाड़ पर गिर रहे थे, उड़ रहे थे इधर-उधर, धीरे-धीरे। फिर इनकी रफ़्तार तेज़ हो गई थी। 'केशव बाबा, इधर आइए...' वह ज़ोर से चिल्लाई थी। इतनी ही देर में बर्फ़ ने पहाड़ और सारे शहर को अपने आगोश में ले लिया था। तनिशा को लगा- टुकड़ा-टुकड़ा बादल उस पर भी गिर रहे थे। वह भी दब जाएगी इस बर्फ़ में, ज़िंदा ही। फिर सब कुछ थम-सा गया था। इतना कुछ हो रहा था, लेकिन चारों ओर असीम शांति थी। सब मौन। कुदरत के सम्मान में।

'बाबा, मुझे पहाड़ों ने यह खूबसूरती देखने के लिए बुलाया है... फिर यह सब क्यों हुआ मेरे साथ?'

'साथ ही रिश्तों का मतलब समझाने के लिए भी।'

'मेरे पास फ़ोन नहीं है।'

केशव ने फ़ोन दे दिया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'पापा?

'तनु बेटे, कहाँ हो?' उन्होंने भर्राई आवाज़ में पूछा।

'पापा।' वह रोने लगी, तो केशव ने फ़ोन लेकर बात की। पता-ठिकाना बताकर डरी हुई आवाज़ में कहा, 'साब, मेरा नाम तो नहीं आएगा न?'

'आप डरिए नहीं। आपके बारे में कोई कुछ नहीं कहेगा। आपका शुक्रिया। हाँ, मेरा दोस्त तनिशा को लेने आएगा। आप उस वक्त वहाँ नहीं रहिएगा।' रावत साहब जानते थे कि पुलिस कैसे काम करती है।

तनिशा डर भी रही थी। अगर कनिष्क पहले आ गया तो?

पता नहीं, अब क्या होगा? क्या करेंगे मम्मी-पापा उसके साथ? मम्मी तो पहले ही उससे नाराज़ थीं। जो उसने किया है वह माफ़ करने लायक नहीं और जो उसके साथ हुआ है उसका क्या?

इस फ़ोन के बाद एक ही घंटे में एक महिला पुलिस अधिकारी वहाँ पहुँच गई थीं। बेहद डरी-सहमी तनिशा को पता नहीं क्या हुआ कि उन्हें देखकर चीखने-चिल्लाने लगी थी। वे उसे अपने साथ ले गए। इस दौरान केशव नहीं दिखाई दिया।

रात की फ़्लाइट से पापा भी पहुँच गए थे। तनिशा की हालत देखकर वे जड़वत् हो गए। वह उनसे दूर भागती रही। उसे नींद का इंजेक्शन देकर सुलाया गया। पुलिस अपनी कार्रवाई में जुट गई थी। कनिष्क और उसके दोस्तों को पकड़ लिया गया था।

तनिशा घर तो आ गई थी, लेकिन उसकी मानसिक हालत बिगड़ गई थी। माँ-पापा तो हर वक़्त आँसू बहाते रहते। इधर केस चलता रहा। तनिशा एक बार कनिष्क को पहचानने गई थी, लेकिन अपना आपा खो बैठी। उसके परिवार के सारे सदस्य उससे मिलने घर भी आए थे। वे बेहद शर्मिंदा भी थे। पापा ने उनसे सिर्फ़ इतना ही कहा था, 'अगर आप उस दिन यह न कहते कि कनिष्क दिल्ली गया है, तो यह नहीं होना था। हम उन्हें गलत रास्तों पर तलाशते रहे और मेरी बेटी का क्या हाल हो गया।' बड़ी मुश्किल से अपने आँसू रोके थे उन्होंने।

'मेरा यक़ीन कीजिए सर, इसने मुझे यही कहा था।'

लगभग एक साल बीत गया था इस बात को। इस बीच माँ उसे लंदन भी ले गई थीं। तनिशा न तो पूरी तरह कुछ भूल पा रही थी, न ही याद कर पाती थी। निरंजना चाहती थीं कि वह अच्छी तरह से इस बारे में बात करे, लेकिन वह खामोश हो जाती थी कुछ पूछने पर। वह अब रोती-चिल्लाती नहीं थी और हिंसक भी नहीं होती थी। उन दो-दिनों में जो हुआ वह उसे बिल्कुल भूल गई हो, ऐसा नहीं था। हाँ, कुछ साफ़-साफ़ याद भी नहीं था। ज़्यादा ज़ोर देती, तो उसका बर्ताव असामान्य हो जाता था। वह अब कॉलेज भी जाने लगी थी, लेकिन वहाँ लड़कों के नज़दीक आते ही रोने-चिल्लाने लगती थी। उसे हमेशा दवा देनी पड़ती थी, जिससे उसका दिमाग शांत रहता था। उसने कई बार मसूरी में हुए स्नोफ़ॉल की बात की। उसने केशव बाबा की भी बात की, लेकिन जैसे ही निरंजना या डॉक्टर कनिष्क का नाम लेते और पूछते कि उसने क्या किया या वह देहरादून कैसे पहुँची, वह चुप हो जाती थी। फिर उन्होंने डॉक्टर से सलाह लेकर इलाज़ का तरीका बदला था। नए तरीके से कुछ करना चाहती थीं वे। उसे सब भुलाने की बजाए याद करने को कहने लगीं। खुलकर बात करना चाहती थीं। उस सबके बारे में, जो हुआ था। तनिशा भी कोशिश कर रही थी। डॉक्टर ने कहा था कि वह सदमे की वज़ह से तो चुप है ही। साथ ही इसलिए भी अपने मन की बात नहीं करती, क्योंकि खुद को गलत समझ रही है। वह अपराधबोध से ग्रस्त है। माँ उसे कहती थी कि उसने कुछ गलत नहीं किया था। बच्चों से ऐसा हो जाता है। कनिष्क ने गलत किया है सब। अब उन्हें इस बात से भी मतलब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं रह गयी थी कि उन लड़कों को सज़ा मिलेगी या नहीं। वे तो भगवान से एक ही प्रार्थना करतीं थीं कि उनकी बेटी ठीक हो जाए, भले ही कनिष्क को छोड़ दें। वे अपने पति पर दवाब डालने लगीं कि केस वापिस ले लिया जाए। फिर एक दिन उन्होंने फ़ैसला किया यहाँ आने का। तनिशा के डॉक्टर ने भी इसकी इजाज़त तो दे दी; साथ ही ध्यान रखने को भी कहा। उन्होंने कनिष्क के देहरादून वाले घर का पता भी ले लिया था और उनकी इजाज़त भी कि वे उन्हें वहाँ जाने दें। अभी तो वे पुलिस गेस्ट हाउस में ठहरी थीं।

रात का खाना खाने के बाद तनिशा और निरंजना बाहर शेड के नीचे आ गई थीं। तभी लाइट चली गई थी। वह चौंक गई और एकदम से बोली, 'केशव बाबा लाइट जाने पर कमरे में सिगड़ी जलाकर रख देते थे।'

निरंजना ने सुनकर भी अनसुना कर दिया। उनका दिल धड़क रहा था।

फिर उसने धीरे-धीरे खिड़की का पर्दा हटाकर बाहर देखा। जैसे डर रही थी कि परदा हटते ही घाटी का अँधेरा अंदर आ जाएगा।

'माँ, वह रौशनी कैसी है?' दूर पहाड़ियों पर रौशनियाँ थीं -ठहरी हुई नहीं, थिरकती-सी, खुशमिजाज़ रौशनियाँ। बिजली शायद सारे शहर में नहीं थी, इसीलिए घाटी में घुप्प अँधेरा था। पर डरावना नहीं। स्तम्भित करने वाला।

'यह मसूरी है। उस तरफ़ कितनी रौशनी है और इस तरफ़ अँधेरा।' माँ ने तनिशा के चेहरे की ओर देखते हुए कहा।

'लेकिन यह अँधेरा तारों के उजाले में लिपटा हुआ है माँ।' स्टारलिट डार्कनेस- कहीं पढ़ा हुआ यह लफ़्ज़ याद आया उसे।

निरंजना ने यों ही कहा, 'ये केशव बाबा कौन हैं?'

'केशव बाबा?' और उसे केशव बाबा याद आ गए। साथ में जो याद आता था उससे बचती थी वह। कभी कुछ भूल भी जाती थी।

'माँ, आप बताओ न ये केशव बाबा कौन हैं हमारे? क्यों मुझे इतना याद आते हैं? मैं सब कुछ याद क्यों नहीं कर पा रही? कहीं कुछ मिस कर रही हूँ मैं।' उसने कहा, तो निरंजना के आँसू बहने लगे।

'मिलना चाहोगी उनसे? जब तुम पिछली बार यहाँ आई थीं, तो मिली थीं। बहुत हेल्प की थी उन्होंने तुम्हारी।'

पिछली बार? क्यों आई थी पिछली बार वह यहाँ? रात को वह बार-बार अतीत की गलियों में आती-जाती रही।

'माँ, हम सब कुछ भूलने या याद करने ही पहाड़ों में आते हैं? क्यों?'

'हाँ, खुद को तरोताज़ा करने भी आते हैं यहाँ। देहरादून तो सुंदर है ही, मसूरी देखोगी, तो बस उछल ही पड़ोगी। कुदरत इतनी मेहरबान है हम पर कि इस खूबसूरती को देखने हमें बुला ही लिया।'

'कुदरत?'

'हाँ बेटा। कुदरत, यानी कि नेचर। इंसान सारे दुख भूल जाता है इसकी खूबसूरती देखकर। पता है, अपनी खुशी और दुख जताने के तरीके होते हैं नेचर के भी। वह हमारे लिए कितना कुछ करती है और हम क्या देते हैं उसे बदले में?'

ये सारी बातें तो वह पहले भी सुन चुकी है। सब कुछ जाना-पहचाना-सा क्यों लग रहा है उसे? वह कुछ समझ नहीं पा रही थी।

तीन दिन निरंजना आशा-निराशा की राहों पर चलती रहीं। वह थक गई थीं। तनिशा टुकड़ों में बात करती और कुछ कहते-कहते खामोश हो जाती।

चौथे दिन उसने कहा था, 'ममा, ये वो जगह नहीं, जहाँ मैं पिछली बार आई थी। और वहीं थे केशव बाबा।'

'और?'

और... वे दोनों एक-दूसरे को देखती रहीं। निरंजना की साँस रुक गई थी। कोई अनहोनी हो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रही हो जैसे।

'तुम नहा लो। नाश्ते के बाद देखते हैं; शायद वे वहीं रहते हों।' कहते ही निरंजना अंदर चली आईं। उसका दिल फिर से ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था।

'और? और कौन था?' कई चेहरे उसकी आँखों में तैर गए। कनिष्क का भी।

वे गए थे वहाँ। केशव बाबा को पता था कि तनिशा आएगी। इस दौरान जो भी हुआ था, उन्हें सब पता चला गया था।

'गुडमॉर्निंग बेबीसाहब।' वह मुस्कराए, लेकिन उनकी आँखों में आँसू थे। तनिशा ने उनका हाथ पकड़ लिया।

'आप ऊपर आइए। चाय वहीं पिएँगे। है न?' वह उन्हें ऊपर टेरेस पर ले आए। वही पहाड़ियाँ, वही बादल। वही हवा। बस वह ही बदल गई है। माँ कैसे उम्मीद लगाए हुए है। उसे काफ़ी कुछ याद तो आ गया था, लेकिन सब कुछ एक सपना लग रहा था। वह माँ से इस बारे में क्या कहे?

'अब यहाँ कोई नहीं आता बाबा?'

'नहीं बेबीसाहब।'

तनेजा साहब की दोनों बेटियाँ आगे की पढ़ाई के लिए बाहर चली गई हैं और... वह चुप हो गए।

'और? और कनिष्क? क्यों नहीं लेते आप उसका नाम बाबा?' उसने एक लम्बी साँस लेकर कहा।

दोनों उसे देखते रहे। एक लम्बी खामोशी के बाद तनिशा ने कहा, 'आइ हेट कनिष्क। बहुत बुरा लड़का है वह। उसने और उसके दोस्तों ने ...ममा, आप ठीक थीं। कैसे मैंने आप पर यकीन नहीं किया।'

वे दोनों वहाँ पड़ी कुर्सियों पर बैठ गईं। चाय पीते-पीते वह सब बताती चली गई। बाबा और निरंजना की आँखों से आँसू बहते रहे। 'पर माँ, पापा कहाँ हैं, वे ही तो आए थे न मुझे लेने?' वह फिर पीछे चली गई।

'वह तो पुरानी बात है तनु।' फिर निरंजना बहुत कुछ बताती रही थीं।

अचानक खूब ठंडी हवा चलने लगी थी। तेज़ हवा पहाड़ छूकर आई और तनिशा को पूछने लगी, 'याद है, हम पहले भी मिले थे?' तभी बारिश की हल्की-सी बौछार उसे भिगो गई। सब याद था उसे। डर, बोझ सब कहीं गायब हो गए थे।

'आप ठीक कहते थे बाबा, कुदरत हमें सबक सिखाती है, लेकिन हम ही नहीं सीखते।' थोड़ी ही देर में बाहर न धुंध, न कोहरा, न धूप की चमकती किरणों का पहरा ही था पहाड़ पर। न ही बारिश की बौछारों का झीना पर्दा। पहाड़ ऐसे कि यहीं से छू लो। सूरज की रोशनी में जगमग-जगमग करता हुआ। तनिशा बेहतर महसूस कर रही थी। एक लम्बी साँस ली उसने।

वहाँ से निकलते वक़्त उसने बाबा को थैंक्स कहा। 'आपकी वज़ह से ही मैं आपसे दोबारा मिल सकी। माँ, आपने कनिष्क को बताया तो नहीं न कि इन्होंने मेरी मदद की है?'

'नहीं बेटा, ये बातें किसी से कहने की नहीं होतीं। इन्हें तो बस मन की तिज़ोरी में रख लेते हैं। इन्हें भूल जाना ही बेहतर होता है, पर यही हम नहीं कर सकते।'

'चलते हैं बाबा। आपका एहसान है हम पर। हमें ज़िंदगी दी है आपने। वह भी दो बार। आज भी आप ही को बुलाया इसने सबसे पहले और आप ही के पास आकर सब कह सकी।' निरंजना ने हाथ जोड़कर कहा।

तनिशा उन्हें देखकर मुस्कराई और केशव बाबा सोच रहे थे वही बात, अपनी ही कही हुई, '...पहाड़ बुलाते ही तभी हैं... या तो बहुत अच्छा होता है या बहुत बुरा... '

पी 5/5, यमुना कॉलोनी, देहरादून-248001 उत्तराखंड फोन-0135-2531367

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहाड़ पर धूप...

मुरारी शर्मा

... वो गर्मियों के दिन थे और शाम ढलने वाली थी। यूँ भी इस मौसम में पहाड़ पर ढलती हुई साँझ का मंजर भी कौतुहलपूर्ण होता है। पहाड़ की चोटी पर बैठा सूरज मानों अलविदा कह रहा हो। और वह भी विदा होने से पूर्व एक नजर वादी को देखने के साथ कुछ उदास, कुछ स्पंदित-सा प्रतीत होता है। दिन भर लम्बी परवाजें भरते नीले आकाश की थाह पाने की कोशिश में लगे पक्षियों के झुंड भी थक कर वापस अपने घोंसलों की ओर लौट रहे हैं। गर्मियों के मौसम में गोधूलि की बेला में घर की ओर चौकड़ी भरते मवेशिओं के खुरों से उड़ती धूल आसमान में उड़ते हुए गुलाल-सी प्रतीत हो रही थी। शाम के इस धुंधलके में बड़की ताई का गुस्से से तमतमाया और झुर्रियों के जाल में उलझा चेहरा सूरज की सिंदूरी किरणों से और भी ओजस्वी लग रहा था। सब जानते हैं बड़की ताई जब गुस्से में होती है तो किसी की क्या मजाल जो उससे बात करने का साहस कर सके। छूटते ही पूरे खानदान की पड़पोतरी एक ही साँस में पढ़ लेगी।

... और बाद में फिर चाहे कोई उसके मुँह का टुकड़ा भी ले ले। मन की बड़ी भोली है बड़की ताई...। आज बड़की ताई का यह रौद्र रूप देख पहले तो पुरोहित जी कुछ सहमें, फिर साहस कर पूछ ही बैठे

-अरी ओ भागवान। आज किससे झगड़ा हो गया, किसकी शामत आई थी?

-चुप रहो जी! बड़की ताई तुनक पड़ी- झगड़ती है मेरा जूती। किसी के घर आग नहीं लगाती हूँ मैं...! पर उस बेईमान मास्टर की तो मैं ऐसी-तैसी करके ही छोड़ूँगी... समझता क्या है अपने आपको, जात-बिरादरी में नाक देने के काबिल नहीं छोड़ूँगी उसे। बड़की ताई के तेवर और तीखे हो गए। पुरोहित जी समझ गए कि उनकी गृहलक्ष्मी आज कोई बड़ा ही बखेड़ा कर बैठी है। बड़की ताई ने पानी का लोटा खड़े गले से गटकने के बाद गहरी साँस ली और फिर शुरू हो गई।

-बच्चे तो सबके एक समान होते हैं जी! और उस मास्टर के तो भगवान की दया से दो बेटे हैं, उसकी बुद्धि न जाने कैसे भ्रष्ट हो गई है... मुझे तो लगता है कि उसके दिमाग में पत्थर पड़ गया है... खस्माखाणा एक को हीक का और दूसरे को पीठ का समझता है, बेईमान कहीं का, बड़े लड़के और बहू को कोप दे रखा है उसने...।

...पुरोहित को समझते देर नहीं लगी कि आज उनकी घरवाली उनके छोटे भाई मास्टर हरी सिंह से उलझ गई होगी अभी तक भी उसका गुस्सा शान्त नहीं हुआ था...। भगवान इतना दे रहा है... पर उसकी भूख नहीं मिटती... जैसे छाती पर उठा कर ले जाएगा सब कुछ। पुरोहितजी को अब लगने लगा कि मामला कुछ गड़बड़ है। वैसे भी पंडिताइन को अपने देवर के बड़े बेटे से कुछ ज्यादा ही लगाव है।... बचपन में जब वह दुधमुहाँ बच्चा था... तो उसकी माँ बीमार हो गई थी...। खुद को सम्भालने की सामर्थ्य उसमें नहीं था तो बच्चे को कैसे सम्भालती। डाक्टरों ने बीमार माँ का दूध नवजात शिशु को पिलाने से मना कर दिया था। तब बड़की ताई ने अपनी छाती का दूध पिलाकर उसे बड़ा किया था। आज भी उसका ममत्व उबाल मार ही जाता है- देखो जी, बड़ी बहू के कमरे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में ताला लगाकर सामान आँगन में फैंक दिया उसने, बेचारे बेटा-बहू मेरे पास आकर रोने लगे...। भला मैं ऐसा गजब कैसे देख सकती थी। हाथ के इशारे से बताते हुए कहती है इतना सा था तब से पाला है मैने उसे। उन्हें क्या पता है बच्चे कैसे पाले जाते हैं।

... पुरोहित जी जानते हैं कि जब तक पूरी घटना का आँखों देखा हाल लक्ष्मी सुना नहीं देगी, चुप होने का नाम नहीं लेगी। वैसे भी पूरे परिवार और गाँव के बच्चों में उसके प्राण थे। बच्चे क्या जवान भी उसके ममत्व की छाँव तले सुकून पाते थे। मानों वह एक-दो की नहीं, सारे जहाँ की माँ हो... तभी तो कोई उसे बड़ी अम्मा तो कोई बड़की ताई के सम्बोधन से पुकारता। पुरोहित जी जानते थे उसकी ममता का खजाना तो कुबेर के खजाने से भी बड़ा है। उसे जितना खर्च करो उतना ही बढ़ता जाता है। शायद उम्र के बढ़ने के साथ बच्चों के प्रति अपने अधिकार को लेकर और भी संवेदनशील हो चली थी। दूसरी ओर गाँव के बच्चों का लगाव भी उससे कम नहीं था... बड़ी अम्मा की गालियाँ भी उन्हें फूलों की बौछार लगतीं और जब तक बड़ी अ मा की गालियाँ न सुन ली तब तक कुछ अधूरा सा ही रहता...और सगे माँ-बाप के प्यार में भी उन्हें खोट नजर आता।

... पुरोहित जी अक्सर कहा करते- लक्ष्मी दूसरों के बच्चों के साथ इतना स्नेह ठीक नहीं... पता नहीं इनके माँ-बाप क्या सोचते होंगे। वैसे भी दूसरे के चूल्हे की माटी अपने चूल्हे में नहीं टिकती है। इस पर बड़की ताई बिगड़ जाती- रहने दो जी बच्चे तो भगवान के रूप होते हैं... ये दूसरों के कैसे हुए? उसकी जिद्द के आगे पुरोहित जी हार मान कर हथियार डाल देते और चुप हो जाते... वे जानते थे लक्ष्मी का यह स्नेह और ममत्व महज दिखावा नहीं है... वह तो पागलपन की हद तक गाँव के बच्चों से जुड़ी है। उसके अपने बच्चे तो दूर देस चले गए हैं; अपने-अपने परिवार के साथ मस्त हैं, मगर बड़की ताई का परिवार तो पूरा गाँव है। हाँ... कभी-कभी बड़की ताई को अपने बड़े हो चुके बच्चों की याद भी बहुत सताती है, जो रोजी-रोटी की तलाश में शहर क्या गए शहर के ही होकर रह गए। अब तो सुना है उसका बड़कू तो विदेश चला गया है अपने परिवार के साथ। अब वो घर लौटकर नहीं आते पिता जी के नाम उनके खत आते हैं और बैंक में ढेर सारे पैसे... मगर पैसों से ही तो बुढ़ापा कटने वाला नहीं है।

... यह अलग बात है कि कभी-कभार उसके कमाऊ बेटे गाँव आते भी हैं, तो बस दो-चार दिन के लिए मेहमान बनकर ही आते हैं। तब तो वह फूली नहीं समाती है। पूरे गाँव में इसकी सूचना दे डालती है... उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता। उसके मन में ढेरों बातें होती हैं उनसे करने के लिए... मगर बच्चों के आने पर उनकी सेवा-टहल में इतनी खो जाती है कि उसके मन की बात मन में ही रह जाती है। एक माँ के लिए कितनी अजीब होती हैं वे परिस्थितियाँ, वे क्षण... वे दिन जब उसके कमाऊ पूत उसके सामने मेहमान बन कर घर आते हैं। लक्ष्मी के लिए मेहमान बनकर आए बेटों का आना जितना सुखद लगता, उतना ही पीड़ादायक उनका जाना। उसने अपने जीगर के टुकड़ों को अपनी ममता की चादर में बुरी नजरों से बचाकर इसलिए तो नहीं रखा था कि जवान होते ही वे उससे दूर चले जाएँ...।

... पुरोहित जी से भी उसने कई बार कहा, जब भी उसके बेटे आएँ, तो उन्हें यहीं रोक लें...। भगवान का दिया सब कुछ है उनके पास। दस-पन्द्रह बीघे हलयातर जमीन है, बीस बीघे घासणी हैं, बाग-बगीचे हैं... ऊपर से जजमानी इतनी बड़ी है कि सात पुश्तों को भी कुछ करने की जरूरत नहीं है, मगर बाप-बेटों में पता नहीं क्या खिचड़ी पकती है... उसकी बात को हवा में ही उड़ा देते हैं...।

पुरोहित जी कहते- लक्ष्मी तू अपने बेटों को अब भी पीठ पर बाँध कर रख, तब नहीं जाएँगे वो शहर...। अरी ओ भली माणसे मैंने उन्हें इसलिए तो इतना पढ़ाया-लिखाया है कि वे घर-गाँव से बाहर जाकर अपने पैरों पर खड़े हों और अपनी मर्जी से अपनी जिन्दगी जीयें। अब गाँव-देहात में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुरारी शर्मा
26 जनवरी, 1962 को मण्डी, हिमाचल प्रदेश में जन्म। शिक्षा : स्नातक। एक कहानी संग्रह 'बाण मुठ'। लोक नाट्य पर एक पुस्तक 'लोक नाट्य बाँठड़ा' प्रकाशित। रमाकान्त स्मृति पुरस्कार से सम्मानित। सम्प्रति 'अमर उजाला' के लिए मण्डी में पत्रकारिता।

उनका भविष्य नहीं है... बेटे तो प्रवासी पंछी होते हैं जो दाना चुगने के लिए हजारों मील का सफर तय करते हैं अब वे वापस यहाँ आकर बसने वाले नहीं हैं... और तू है कि उनके साथ रहना नहीं चाहती... कहीं न कहीं तो समझौता तो करना ही पड़ेगा। इसी का नाम तो जिन्दगी है, परमेश्वर ने सबके हिस्से में कुछ न कुछ कमी छोड़ रखी है..वर्ना उसको मानेगा कौन।

बड़की ताई के पल्ले पुरोहित जी की दार्शनिकतापूर्ण बातें नहीं पड़ती है... वह कहती- एक साथ रहना है, तो लड़ना-झगड़ना बना ही रहता है जी... रसोई में बर्तनों की आवाज आती रहे, तो लगता है कि घर रसदा बसदा है... फिर सबके सब एक साथ तो हैं... पर ऐसी पढ़ाई-लिखाई का क्या फायदा है जो अपनों से दूर कर दे... बच्चे तो बुढ़ापे का सहारा होते हैं... अगर वो सहारा ही न मिले तो क्या फायदा... इससे तो बाँझ ही ठीक थी मैं।

हा-हा-हा। पुरोहित जी ठठाकर हँसते और लक्ष्मी मन मसोस कर रह जाती। हालाँकि, वो भी जानती है कि पुरोहित जी की हँसी उनके अन्दर के दर्द को छिपाने भर की कोशिश है।

-भली माणसे हम तो धार की धूप हैं... सुबह हैं तो शाम को नहीं। इस जिन्दगी का क्या भरोसा, साँसों की डोर कब तक जीवन की गाड़ी को खेंच पाती है... चलते-फिरते ही दम निकले, तो अच्छा है... किसी को सेवा टहल करने का कष्ट न उठाना पड़े।

-कैसी बात करते हो जी, अपने बेटों की जरा भी बुरी नहीं लगती आपको! आपको क्या पता मैंने उन्हें कैसे सर्दी-पाले में बचाकर बड़ा किया है... शहर में उनकी माँ थोड़ी बैठी है, जो उनकी देखभाल करेगी। आपको भी उदास होने की जरूरत नहीं है... मेरी कोख जाए ऐसे नहीं हैं... वे हमारे बुढ़ापे का सहारा नहीं बनेंगे तो कौन बनेगा।

पुरोहित जी पत्नी के दिल के दर्द को भी समझते हैं... वह जो कुछ भी कह रही है उसके पीछे उसकी ममता का साया है..., मगर वे पहाड़ की त्रासदी से भी बेखबर नहीं हैं। भला पहाड़ से बहते पानी को भी कोई रोक सका है... उसकी मंजिल अंततः विशाल समुद्र ही है, जहाँ वह अपनी चंचलता और चपलता भूल शान्त हो जाता है। बेरोजगारी, साधनों की कमी और पिछड़ापन पहाड़ के लोगों की जीवटता की परीक्षा लेता है। उनके देखते ही देखते पहाड़ों में भी कितने बदलाव आए हैं...। खेत खलियान से लोगों का नाता टूटता जा रहा है या यूँ कहें कि विकास के सपने दिखाकर पहाड़ियों को उनकी जमीनों से बेदखल किया जा रहा है... कहीं डैम बन रहे हैं, तो कहीं सीमेंट के कारखानों को लेकर जमीनों की खरीद-फरोख्त हो रही है। पहाड़ की पगडंडियाँ सड़कों और राजमार्गों से जुड़ने लगी हैं...महानगरीय संवेदनहीनता पहाड़ी समाज को धीरे-धीरे खोखला करती जा रही हैं

... और फिर शहर तो आदमियों का विशाल समुद्र है। कस्बा नहीं शहर... नगर और महानगर जितना बड़ा शहर उतना ही भारी जन सैलाब वहाँ कौन किसे पहचानता है... ऐसा लगता है कि कुम्भ के मेले में लोग उमड़ पड़े हों... और भीड़ में आदमी अकेला होता चला जाता है। बेहतर जीवन जीने की लालसा और तरक्की की चाहत में न

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाने कहाँ-कहाँ से लोग रोजी-रोटी की तलाश में भटकते हुए यहाँ आते हैं... यहाँ से विदेश चले जाते हैं...। तरक्की, धन दौलत यश पाने की अंधी दौड़ ने आदमी को मशीन बना दिया है... संवेदनहीन मशीन... चलता-फिरता रोबोट, जिसका रिमोट किसी दूसरे के हाथ में है। और शहर भी किसी समुद्र की तरह सबको अपने आपमें समेट लेता है।

... पुरोहित जी को आज भी आजादी के बाद के वो दिन याद हैं... जब गाँवों की जमीनों को लेकर मुजारा आन्दोलन का शंखनाद हुआ था... कई कॉमरेड- घालुआ मजूरा ओ डेरा तेरा दूरा ओ कदे घरा आवणां... जैसे क्रांतिकारी गीत गाकर शहरी सरमाएदारों और जमींदारों के खिलाफ बगावत का झंडा बुलन्द कर रहे थे। रियासत काल से ही गाँव के किसान शहरी खत्री-ब्राह्मणों के बसणू बनकर करसाणी करते थे... खेतों में पसीना किसान बहाते और अनाज के हकदार बझिए होते... राजाओं ने इन शहरी बझियों को कई-कई गाँवों का मालिक बना रखा था।... पर जब चौबीस-अड़तालीस कानून के तहत हल जोतने वाले किसान जमीनों के मालिक बने, तो गाँवों में खुशहाली का दौर लौट आया। और... शहरी बझियों ने पढ़ाई-लिखाई की ओर अपने बच्चों को ऐसे मोड़ा कि एक समय यह शहर देश में सबसे अधिक डॉक्टरों और इंजीनियरों को पैदा करने वाला शहर बन गया...। यही सोच कर उन्होंने भी अपने बेटों को अच्छी शिक्षा दी; आज वे अच्छे ओहदों पर हैं। शहर में अपनी जिन्दगी मजे में गुजार रहे हैं। इधर, गाँव-देहात में आ रहे बदलावों से पुरोहित जी चिन्तित हैं...। ऐसे में उनके बेटे पढ़-लिख कर गाँव से निकल गए हैं, तो अच्छा ही है। वर्ना यहाँ रहते तो औरों की तरह एक गज जमीन के टुकड़े के लिए एक-दूसरे का सिर फोड़ते रहते। गाँव का माहौल अब बिगड़ता ही जा रहा है... छोटे का लिहाज और बड़ों का डर अब नहीं रहा। अब पड़ोस के खडयालों को ही देख लो... जमीन-जायदाद के लिए रिश्तों की मार्यादा तार-तार हो रही है...। पुरखों की बनाई जमीन-जायदाद के लिए डांग सोठे लेकर एक-दूसरे का सर फोड़ने से भी झिझकते नहीं हैं...। गाँव के हर तीसरे टबर में यही सयापा पड़ा हुआ है...। बुजुर्गों का भाईचारा अब किस्से कहानियों की बात है... अब तो सबसे बड़ा दुश्मन कोई है, तो वो सगा भाई ही है। लक्ष्मी को समझाते हुए पुरोहित जी कहते हैं- भले माणस ये भी नहीं सोचते कि जिस जमीन-जायदाद के लिए रिश्तों का खून बहाया जा रहा है... वो कभी साथ गई है किसी के! इसे पीठ पर बाँध कर तो कोई गया नहीं है आज तक, जो ये लोग जाएँगे। बड़ा बुरा जमाना आ गया है लक्ष्मी... बहुत बुरा। गाँव के हालात से पुरोहित जी आहत हैं।

-सूखा पड़ने से गाँव की जमीन तो बंजर हो रही... पर लोगों के दिल भी बंजर हो गए हैं। नदी का जल सूखने से गाँव की हरियाली सूख गई है... और मन की हरियाली सूखने से जीवन का जल भी जैसे सूख रहा है...।

एक बार लक्ष्मी भी शहर गई थी... अपने बड़े बेटे के साथ। तब नई-नई शादी हुई थी उसके बड़कू की। रमेश... यही नाम है उसके बड़कू का, पर लक्ष्मी तो उसे बड्डा भाऊ कहकर बुलाती थी। बड़ा चाव था उसे भाऊ की बहू को देखने का, मगर शहर की रेलम-पेल, शोर-शराबा-घुटन और पढ़ी-लिखी मॉडर्न बहू के नाज-नखरों के बीच बुढ़िया अपने आपको एडजस्ट नहीं कर पाई... वह स्वयं को बेटे के पास नहीं, बल्कि किसी दूसरे लोक में अजनबी लोगों के बीच महसूस करने लगी...। यहाँ तक कि उसे अपना भाऊ भी बदला-बदला-सा लगने लगा था। एकदम खोया-खोया सा... उससे न तो कोई बात करता न उसकी बातें सुनने की उसे फुर्सत थी। लक्ष्मी यहाँ बातें करे तो किससे... सब अपनी-अपनी दुनिया में मस्त हैं। वह यहाँ दीवारों से तो बातें करने नहीं आई है... वापस गाँव लौटने की जिद करने लगी ... आखिरकार बेटे को उसे वापस गाँव छोड़ना पड़ा।

... गाँव लौटकर बड़की ताई ने चैन की साँस ली थी।... अपना गाँव तो स्वर्ग है जी... शहर का जीणा भी कोई जीणा है। पुरोहित जी से लक्ष्मी ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

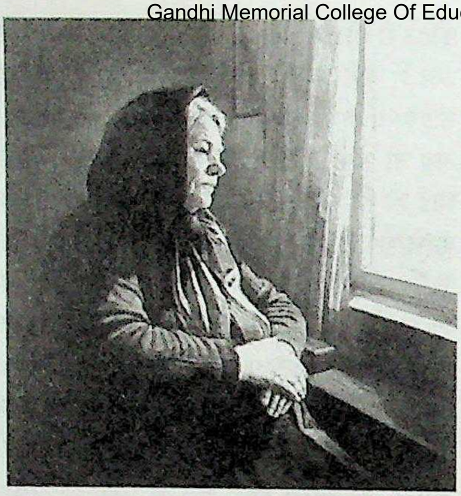

आते ही शहर और बहू की बुराइयों के कच्चे चिट्ठे पढ़ने शुरू कर दिए।

–अपना बड़कू तो बरबाद हो गया है जी। न किसी से ढंग की बात न चीत... बस चुप रहता है बेचारा... उसका तो चेहरा भी पीला पड़ गया है। मुझे तो लगता है कि कहीं बहू ने तो उस पर बसीकरण नहीं कर दिया है। वह उठ बोलती है तो उठ जाता है... बैठ बोलती है तो बैठ जाता है... मर्दों वाला रौब ही नहीं है उसका। बड़की ताई चिन्तित हो उठी हैं– भेड़ू बना दिया है उस फाफाकुट्टणी ने मेरे बेटे को।

...पुरोहित जी उसकी बातों पर खीज उठते हैं –तू भी न लक्ष्मी कैसी बेवकूफों वाली बातें करती है। अरे भाई, शहर की भागदौड़ की जिन्दगी में किसे फुर्सत होती है ऐसी खिल्ली बातें करने की? किसी के पास इतना टाइम नहीं होता है। तेरे बेटे को भी काम से फुर्सत नहीं मिलती होगी। कम्पनी में कितना बड़ा अफसर है वो... पूरे महकमे की जिम्मेदारी है उस पर। पुरोहित जी लक्ष्मी को समझाने की कोशिश करते हैं। मगर उसके दिल में एक बात घर कर गई थी कि बहू ने उसके बेटे को कुछ खिला कर अपने वश में कर रखा है। बहू का वशीकरण बेटे के सिर से उतारना ही होगा।

... इस बात को लेकर अब बड़की ताई परेशान रहने लगी थी। दिन–रात बस यही चिन्ता खाए जा रही थी कि आखिर बेटे के सर से बहू का जादू कैसे उतारा जाए? देवी के मन्दिर से धागा और चरणामृत भी ले आई थी। पुजारी जी ने सरसों के दाने हथेली पर रखकर ही देख लिए थे। उसका वहम पक्का हो गया था... उसके अंग –संग रहने वाले आदमी ने कुछ खिला दिया है, ताकि वह उसकी मुट्ठी में रहे। यदि इलाज वक्त पर नहीं हुआ, तो जीव पर पड़ जाएगा। ऐसी स्थिति में तो वह पागल भी हो सकता है। पुजारी जी ने पक्की थाप लगाई थी। लक्ष्मी के लिए उनका एक–एक शब्द पत्थर की लकीर की तरह था। पुरोहित जी को इन टोणे-टोटकों में विश्वास नहीं है... वे नहीं चाहते थे कि लक्ष्मी के वहम की आग में बेटे की घर गृहस्थी जलकर राख हो जाए। इस बार छुट्टियों में रमेश ने घर आने के लिए लिखा है। बच्चे गाँव आने की जिद्द कर रहे हैं। वे पहाड़ के गाँव देखना चाहते हैं... ताकि वे अपने सहपाठियों को इस बारे में बता सकें कि गाँव कैसा होता है... फिल्मों में देखे गाँव और वास्तविक गाँव में क्या अन्तर होता है। रमेश ने अपने पत्र में इन बातों का भी जिक्र किया था। पुरोहित जी पोते–पोती के आने की खबर सुनकर खुश हो जाते हैं... और लक्ष्मी ने तो इस खबर को खबरिया चैनलों की तरह दिन –रात पूरे गाँव को सुनाना शुरू कर दिया था। कहते हैं मूल से ज्यादा प्यारा ब्याज होता है। कितने प्यारे चुलबुले बच्चे हैं भाऊ के। पुरोहित जी और लक्ष्मी को ग्रेंडपा और ग्रेंड माँ कहते हैं। अँग्रेजी स्कूल में पढ़ते हैं... किसी से भी बेझिझक बतियाते हैं, सभी बड़े चाव से बात करते हैं उनके साथ।

... बड़कू के आने से पहले ही लक्ष्मी सारी तैयारी कर लेना चाहती थी। पाँच–सात दिन तो वह रहेगा ही... न भी चाहेगा, तो भी वह कोई न कोई बहाना बनाकर इलाज के लिए उसे रोक ही लेगी... पुजारी जी के आदेशानुसार लक्ष्मी ने पूजा-पाठ की पूरी तैयारी कर ली थी। यहाँ तक कि बलि के लिए एक बकरे का इन्तजाम भी उसने कर रखा था...। जबकि पुरोहित जी इस सबसे बेखबर थे।

पुरोहित जी एक दिन रमेश का खत लेकर आए।

–लक्ष्मी तेरे भाऊ की चिट्ठी आई है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

–भाऊ की चिट्ठी? लक्ष्मी उत्सुकतावश पूछती है– क्या लिखा है उसने? किस दिन आ रहा है वह? बच्चों को लेने तुम सड़क तक जाना... क्या लिखा है जरा पढ़कर सुनाना जी।

पुरोहित जी चिट्ठी पढ़ने लगते हैं।

पूज्य माता और पूज्य पिता जी!

चरण वंदना!

–चरजिवणा हो बेटा। लक्ष्मी ऐसे कहती है मानों सचमुच उसका बेटा उसके चरण छू रहा हो।

–हाँ... आगे पढ़ो जी।

–लिखा है इस बार छुट्टियों में गाँव आना चाहता था, पर अचानक मुझे कम्पनी के काम से विदेश जाना पड़ रहा है...। बच्चे भी गाँव आने के लिए उत्सुक थे, पर उन्हें भी साथ ले जा रहा हूँ गाँव फिर कभी लाऊँगा। सुना है इस बार पहाड़ में बीमारी फैली है। तुम अपना ख्याल रखना जी। पानी वगैरह उबाल कर पीते रहना। बच्चों और कल्पना की ओर से चरणवंदना। कुछ पैसे मैंने आपके खाते में डाल दिए हैं।... बाकी सब ठीक है, अपनी सेहत का ख्याल रखना।

तुम्हारा बेटा रमेश।

... पत्र पढ़कर पुरोहित जी खामोश हो गए। चशमा उतार कर डिब्बे में रख दिया। लक्ष्मी की तरह उन्हें भी बेटे से मिलने की बहुत इच्छा थी... वर्षों बाद उन्हें लगने लगा था कि बेटों को इतना पढ़–लिखाकार उन्होंने अपने से बहुत दूर कर दिया... उनके पढ़े–लिखे बेटे न तो बुढ़ापे में उनका सहारा बन पाएँगे और न ही खेत–खलियान। केवल पैसों से ही जिन्दगी नहीं चला करती... बुढ़ापे की लाठी तो बच्चे होते हैं जो उनसे बहुत दूर हैं। उनकी हालत भी बंजर खेतों की तरह हो गई है... जिन्हें अब कोई भी सम्भालने वाला नहीं है। चिट्ठी में लिखी बेटे की बातों को सुनकर लक्ष्मी का भी चेहरा उतर गया। वह बहू को कोसने लगी।– कर दिया होगा उस कुलछणी ने मना... मत चलो गाँव, वहाँ क्या रखा है तेरा और वह जोरू का गुलाम रुक गया होगा। विदेश जाने का तो बस बहाना है। घर में बूढ़े मां–बाप मरें चाहे जिएँ, उसे क्या? उसे लगने लगा कि उसकी कोख बेटों के होते हुए भी मानों सूनी ही रह गई। –नौ महीने कोख में इसलिए रखा कि बुढ़ापे का सहारा बनेगा... मगर वो तो जन्म देने वाली माँ को ही भूल गया जी... भूल गया मेरी कोख का जाया मुझे। वह दहाड़े मारकर रोने लगती है। पुरोहित जी उसे सम्भालते हुए... समझाते हैं, चल छोड़ भागवान, नहीं आ रहा, तो फिर आ जाएगा। विदेश जाने के मौके बार–बार नहीं मिलते हैं; वो भी कम्पनी के खर्चे पर...। अपने बच्चों के बारे में ऐसी बातें नहीं करते हैं... जहाँ भी रहें वहाँ सुखी रहें बस, हम तो जी रहे हैं पगली... तेरे गाँव के इन ढेर सारे बच्चों के बीच... देख कितना ख्याल रखते हैं सब लोग हमारा... हमें और क्या चाहिए। हम तो पहाड़ की धूप हैं... न जाने कब उड़ जाएँ। बेटे खुश रहें अपनी दुनिया में, जब तक जिन्दा हैं उनकी सुखशांद आती रहे बस...। पुरोहित जी की आँखें नम हो उठीं।

–शुभ–शुभ बोलो जी... ऐसी अशुभ बात क्यों करते हो जी... वो रहे जहाँ रहना है हम यहाँ जी लेंगे। लक्ष्मी सिसकने लगती है... बाहर बरामदे में आकर वह सामने की पहाड़ी की ओर उदास नजरों से देखने लगती है। पहाड़ की चोटियों पर अलसाती धूप अब धीरे–धीरे हटती जा रही थी...। पुरोहित जी बाहर आकर उसके कंधे पर हाथ रख कर कहते हैं– वह एक दिन जरूर आएगा लक्ष्मी... जब तेरी ममता उसे वापस बुलाएगी। कब तक महानगरों की भीड़ में वो अकेला रहेगा... तेरी ममता की छाँव और ये पहाड़ उसे जब याद आएँगे, तो वह लौट आएगा... जरूर लौटेगा वो...।

133/7, मोतीबाजार, मंडी–175001 (हिमाचल प्रदेश) मो. 09418025190

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनुष्य का मोल

लक्ष्मीनन्दन बोरा

अनुवाद : शर्मिला बोहरा जालान

पिछले कुछ दिनों से मेघना मिष्टान्न भण्डार के मालिक मोहिम मायती कुछ अजीब सा दृश्य देख रहे हैं। वैसे इस दृश्य में ऐसा कुछ नहीं है कि लोगों को अचरज हो। आश्चर्य में पड़ जाएँ। गौहाटी शहर का यह एक आम नजारा है। इसमें अचरज की बात भी हो सकती है जब यह किसी के मन में जिज्ञासा पैदा करे। लेकिन इस दृश्य में ऐसे तत्त्व भी नहीं हैं।

मायती बाबू पहले कभी भी इस समय दुकान नहीं आते थे। पूर्वाह्न के समय वे अक्सर मिठाई की दुकान में काम करने वालों को अपने घर में बुलाकर सुझाव दिया करते थे और जो मदद करनी होती वह करते थे। इसके बाद उनका बेटा सुप्रतिम उनके काम को सँभालता था। सुप्रतिम के अस्वस्थ होने के कारण कुछ दिनों से मोहिम मायती सुबह-सुबह अपने घर काहिली पाड़ा से भानागढ़ की दुकान पर जाते और दस बजे लौट आते। इसी दौरान उनका सामना इस असामान्य दृश्य से हुआ। उन्हें इस बात से और भी ज्यादा अचरज हुआ कि ना तो सुप्रतिम ने उन्हें इस दृश्य के बारे में बताया और ना ही किसी और ने। यह कोई ऐसा-वैसा नजारा नहीं था। यह एक मर्मस्पर्शी दृश्य था।

मुँह अँधेरे ही लोगों का झुण्ड हाथ में लम्बी दाव और कुल्हाड़ी लिये गणेशगुड़ी के गणेश मन्दिर के दक्षिण में स्थित उस रास्ते पर, जो नयनपुर की तरफ जाता था, जुट जाता था। यह दृश्य गणेशगुड़ी चारयाली फ्लाई-ओवर के नीचे से ही देखा जा सकता था और उस रास्ते के दोनों तरफ से भी, जो कि भानागढ़ की तरफ जाता था। कुछ लोग, जो कि साफ-सुथरे नहीं होते, मैले-कुचैले कपड़ों में वहाँ जमा होते। उनमें स्त्री पुरुष ऊर्जावान नवयुवतियाँ और नवयुवक ऊर्जावान होते, तो कुछ युवा होने पर भी अपना यौवन गँवा चुके थे। इस भीड़ में प्रौढ़ और वृद्ध भी होते। स्त्रियों के हाथों में दाव और कुल्हाड़ी नहीं होती थी।

अपने दुनियावी ज्ञान से मायती यह कह सकते थे कि उस भीड़ का हर एक सदस्य रोजगार की तलाश में बाहर निकला है। मकान-फ्लैटों के निर्माण कार्य करने वाले ठेकेदार यदि इन लोगों को काम नहीं देते तो इनके परिवार भूखों मर जाते।

मायती बाबू ने मेघना मिष्टान्न भण्डार के सबसे जिम्मेदार कर्मचारी नीलकमल से यह सूचना प्राप्त की कि वहाँ पर जानवरों की तरह जमा हुए हर सौ लोगों में से बीस लोगों को ही काम पर रखा जाता था। बचे हुए लोग, जिन्हें काम नहीं मिलता था, अपने घर हताश हो लौट जाते। ऐसे घर में, जो नाम मात्र का ही घर होता था, कोई झुग्गी-झोंपड़ी या सुअरों के रहने की जगह जैसा।

मकान बनवाने वाले लोग उन्हीं लोगों को काम पर रखते थे, जो शरीर से सुदृढ़, बलवान और

लक्ष्मीनन्दन बोरा को हाल ही में भारतीय भाषा परिषद के 'रचना समग्र पुरस्कार-2012-2013' से सम्मानित किया गया। बधाई -सं.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

युवा ऊर्जा से युक्त होते थे। वृद्धों को काम नहीं देते थे। कुछ लोग जरूर घरेलू काम करने वाले लोगों को ढूँढ़ते थे। कुछ, उन प्रौढ़ महिलाओं को रखते थे, जो बच्चों की देखभाल और घर की साफ-सफाई का काम कर सकती थीं। नीलकमल ने यह भी बताया कि जिन लोगों को काम नहीं मिलता था वे वहाँ सुबह के नौ बजे तक रुके रहते थे।

इन दिनों मोहिम मायती ने यह महसूस किया था कि जैसे-जैसे खाद्य पदार्थों के दाम बढ़ रहे हैं वैसे-वैसे इन्सानों का मूल्य कम होता जा रहा है। उन्हें मेघना नदी के किनारे स्थित पुराने बाजार की याद आई। वह बाजार अफजल बाजार के नाम से मशहूर था। अफजल अली एक प्रसिद्ध मवेशी व्यापारी था। वह धनी होने के बावजूद मदद करने वाली प्रवृत्ति का व्यक्ति था। इसी अफजल बाजार में मायती ने मवेशी और भैंसों का व्यवसाय देखा। वहाँ होने वाला मोल-भाव उन्हें आश्चर्य में डाल देता था। अब उन्हें यह महसूस हुआ कि उस मोल-भाव में आश्चर्यचकित होने वाली कोई बात नहीं थी। स्वस्थ और मजबूत मवेशी व भैंसे आसानी से बिक जाती थीं। खरीददार पशुओं का निरीक्षण विभिन्न ढंग से किया करते थे। वे भैसों को हाथ से छूते या किसी डंडे से कोंच कर देखते कि वे चुस्त-दुरुस्त हैं या सुस्त व कमजोर। कभी-कभी वे उनकी पूँछों को मरोड़ कर भी उनकी जाँच किया करते थे।

मायती को अब यह महसूस हुआ कि यहाँ पर जो स्त्री-पुरुष जुटे हैं वे अफजल बाजार के उन्हीं मवेशी और भैंसों की तरह हैं। गौहाटी के वे लोग, जो मकान बनवाते थे, उनका चुनाव उनकी शारीरिक क्षमता के अनुसार जाँच-परख कर करते थे। कमजोर और असमय वृद्ध होने वाले लोगों को छोड़ दिया जाता था। पर, पहले ऐसी बात नहीं थी। मनुष्य की कदर मनुष्य के रूप में ही होती थी। समय बदल गया है। एक-दूसरे के प्रति प्रेम और सौहार्द्र कहीं कम तो कहीं खत्म हो गया है। गौहाटी एक निर्मम और क्रूर स्थान हो गया है। यहाँ का हाल यह है कि पड़ोसी न तो दूसरे के बारे में जानते हैं, न ही जानना चाहते हैं। सभी अपने में व्यस्त हैं: अपने बारे में सोचो, अपनी पत्नी की चिन्ता करो, अपने बच्चों के विषय में सोचो, बढ़िया और अच्छा खाओ, उम्दा पहनो, बस यही, इसके आगे कुछ नहीं। क्या फर्क पड़ता है अगर पूरी दुनिया भूखों मरे।

क्या इस तरह की स्वार्थी प्रवृत्ति पहले के लोगों में थी; इन्सान दूसरे इन्सान में ईश्वर के दर्शन करता था। पूर्व बंगाल के इस गाँव में हिन्दू और मुसलमान भाई-भाई की तरह रहते थे। अतिथि भोजन किए बिना लौट नहीं सकता था। दोपहर में आने वाले आगन्तुक को ईश्वर का दूत समझा जाता था। यह नहीं देखा सुना जाता था कि वह हिन्दू है या मुसलमान। नीची जाति का है या बदनाम चोर।

स्वतंत्रता प्राप्ति के एक वर्ष पूर्व से ही मानव मूल्य अस्त-व्यस्त हो गए। कलकत्ता के हिन्दू-मुसलमान दंगे में बहुत लोग मारे गए। यही नोआखली में भी हुआ। पुलिस और नेता इन हत्याओं को रोक पाने में असमर्थ रहे। केवल एक व्यक्ति को ही इस हत्याकाण्ड को रोकने में सफलता प्राप्त हुई। वह इन्सान नहीं थे। वे भगवान थे। इसलिए उन्हें महात्मा कहा जाता है। आजादी की घोषणा हो गई और भारत का विभाजन भी हो गया। खतरा बढ़ गया। तारों तरफ मार-काट मच गई। भारत में मुसलमानों को मारा गया। इसी तरह पाकिस्तान में हिन्दुओं की जान गई। खून की नदियाँ बह गईं। हिन्दुस्तान से मुसलमानों को भगाया गया। इसी तरह पाकिस्तान से हिन्दुओं का पलायन हुआ और वे हिन्दुस्तान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आकर शरणार्थी बन गए। उन दिनों की यादें मोहिम मायती को विचलित कर देती हैं। थर्रा देती हैं। पूर्व बंगाल में उनका अस्तित्व खतरे में था। उन्हें ऐसा महसूस होने लगा कि जिस तरह नोआखाली में हत्याएँ हुईं वे भी हत्यारों की तलवार द्वारा मारे जाएँगे। ये हत्यारे ढाका, माणिकगंज और कुमिल्ला जैसी जगहों से आए थे। इन हत्याओं का कोई कारण और औचित्य नहीं था। उनके लिए हर हिन्दू काफिर था। लेकिन मायती के गाँव में किसी भी हिन्दू की हत्या नहीं हुई; क्योंकि गाँव के ही मुसलमानों ने उन्हें बचाया। इसमें सबसे बड़ा योगदान अकरम हुसैन नामक ग्रामीण का था। वह दो नामों से जाना जाता था। अकरम हुसैन और बारीक अकरम। वह एक धार्मिक व्यक्ति था। वह एक मेहनती किसान था। उसका काम लोगों को धार्मिक अनुष्ठानों में लाना था। इसी कारण उसे उस इलाके में बारीक कहा जाता था। उसका एक हँसता-खेलता परिवार था। उसकी बीवी हसीना कुशल बुनकर थी। मायती के परिवार के बारीक के परिवार के साथ मधुर सम्बन्ध थे। मायती के पास आधा बीघा उपजाऊ जमीन थी जो कि बारीक की दो बीघा जमीन के निकट ही थी। उन दोनों जमीन के बीच किसी बाड़ की जरूरत नहीं थी। दोनों परिवारों के बीच सिंचाई की नहर भी एक थी।

यह सुनने के बाद कि बगल के गाँव में विगत दो दिनों में कई हत्याएँ हुई हैं, अकरम ने अपने गाँव के हिन्दुओं को बचाने के लिए कदम उठाया। एक ही रात में बदमाशों को गाँव से दो बार भगाया गया। उनके बार-बार गाँव में प्रवेश करने के कारण अकरम ने गाँव के हिन्दुओं को मुसलमानों के वेश में पूर्व पाकिस्तान सीमा से पार करवा दिया।

हिन्दुस्तान यानी असम में आने के पूर्व मोहिम मायती के परिवार ने दो रातें अकरम के घर में गुजारीं। मायती के परिवार में उसके माता-पिता और दो छोटे भाई थे। अकरम उससे सिर्फ चार साल बड़ा था। आज भी उसकी आँखों के सामने वह दृश्य आ जाता है जब उनकी माँ और अकरम की माँ, वे लोग एक-दूसरे से अलग हुए थे तब गले लगकर रोने लगी थीं।

उस समय से आजतक मोहिम को अकरम के परिवार की कोई खबर नहीं है। एक दिन गौहाटी में उसका सामना चन्दन घोष नामक उसके पहले के ग्राम के एक आदमी से हुआ था। चन्दन ने पूर्व पाकिस्तान दस वर्ष पहले छोड़ दिया और गौहाटी के लाल गणेश में किराने की एक दुकान खोल ली। उसी दुकान से उसके परिवार का लालन-पोषण हो रहा है।

मोहिम को चन्दन से अकरम के परिवार के बारे में कुछ जानकारियाँ प्राप्त हुईं। अकरम ने विवाह कर लिया था। उसके दो लड़के और दो लड़कियाँ हैं। उसकी माली हालत खराब है। अक्सर मेघना का पानी धान के खेतों में आ जाता है। सरकार खेत में घुसने वाले इस पानी की रोक थाम नहीं कर पा रही। इस तरह लोग गरीब होते जा रहे हैं और जो नेता हैं वे दिन प्रतिदिन समृद्ध होते जा रहे हैं। अभी भी वहाँ कुछ हिन्दू मजबूरी वश रहते हैं। उन्हें कोई भी सुविधाएँ मुहैया नहीं हैं। फिर भी वे जैसे-तैसे इस विषम परिस्थितियों में भी अपना जीवन काट रहे हैं।

मोहिम की जिज्ञासा उस व्यक्ति के प्रति तब जागृत हुई जब उसने उसे उसी जगह पर तीन दिनों तक लगातार घर लौटते हुए देखा। उसने लाल गणेश इलाके के कंट्राक्टर सुबोध मण्डल से इस बारे में पूछा। मण्डल ने कहा, कुछ लोग इन जगहों पर, जहाँ दिहाड़ी मजदूर एकत्रित होते हैं, उन्हें काम देने सुबह-सुबह आते हैं। अगर वे देर से आते हैं तो उन जैसे मरियल लोगों को आधी मजूरी पर रखते हैं। कभी-कभार इस तरह के लोगों की अचानक जरूरत आ जाती है, दुकानों में माल सजाने और रखने के लिए। ऐसे समय ऐसे अकेले व्यक्ति को काम मिल जाता है।

मायती इस मामले में बहुत ज्यादा उलझ गए। एक दिन वे उस व्यक्ति के बहुत नजदीक से गुजरे। उन्होंने उसे ध्यान से निहारा और पाया कि वह एक बूढ़ा और दुर्बल व्यक्ति है। ठीक वैसे ही जैसे कि खपरैल की टूटी-फूटी झोंपड़ी। उसकी अधपकी बढ़ी हुई दाढ़ी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसकी छाती तक पहुँच रही थी। वह एक हरे रंग की लुंगी पहने था और उसने जो कमीज पहन रखी थी वह उसके शरीर के माप से छोटी थी। उसकी आँखें मालूम होती थीं कि अन्दर की तरफ धँस गई हैं। यह देख मायती मेघना नदी के अतीत में खो गया। वह आँखें उसे जानी पहचानी लगीं। आँखों के आस-पास का हिस्सा भी उसे परिचित सा लगा। उसका ललाट भी पहचाना हुआ था। ये तीनों चिन्ह उस आदमी से नहीं मिलने चाहिए, जिसे वह जानता था; लेकिन क्या ऐसा सम्भव है? उसका अजीज दोस्त यहाँ क्यों आएगा? उसने अपना गाँव क्यों छोड़ा होगा? वह तो एक सफल मुसलमान किसान था। जवानी के दिनों में ही उसमें एक समृद्ध किसान बनने के लक्षण दिखाई पड़ते थे। उसी युवा व्यक्ति की बदौलत मायती के परिवार ने कट्टरपंथियों से अपनी जान बचायी थी। मायती का दिमाग बहुत सारी चिन्ताओं के कारण शिथिल पड़ गया। आज उसे अपनी तबीयत खराब लग रही थी। बुखार आ गया। खाने की कोई रुचि नहीं हो रही और कमजोरी भी महसूस हो रही थी। उसकी इच्छा उस व्यक्ति से मिलने की नहीं हुई। तभी उसके मन में एक विचार कौंधा कि कल अगर वह व्यक्ति नहीं आया तो! उसके शरीर की जैसी दशा थी वह मर भी सकता था। वह व्यक्ति आज एक दूसरा दाव लिये था। उसका अर्ध चन्द्राकार दाव कुछ ज्यादा लम्बा था। पकड़ने वाले हत्थे की लम्बाई ब्लेड से ज्यादा थी। मेघना नदी के किनारे रहने वाले लोग ऐसे दाव को नाल काट छुरी कहते थे। 'नाल' का अर्थ नलिया यानी पाट का एक लम्बा पेड़। इन छुरी का व्यवहार पानी के अन्दर की नलिया पाट को काटने में किया जाता है। दाव को देखकर मायती इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह व्यक्ति बांग्लादेशी है। वह व्यक्ति जिसे मायती बाबू जानते थे, हृष्ट-पुष्ट और जीवित था। और यह

लक्ष्मीनन्दन बोरा

1932 में नायगाँव, असम में जन्म। कोलकाता विश्वविद्यालय से 1954 में भौतिकी विज्ञान में एम.एस-सी. करने के बाद देश-विदेश के उत्कृष्ट विश्वविद्यालयों में अध्यापन के बावजूद साहित्य में रुचि। असमिया में अबतक 31 उपन्यास, 27 कहानी-संग्रहग, 2 नाटक, 3 यात्रा-वृत्तान्त एवं 6 विज्ञान की पुस्तकें सहित लगभग 72 पुस्तकें प्रकाशित। दो बार राष्ट्रीय सम्मान से एवं भारतीया भाषा परिषद का रचना-समग्र सम्मान के अलावा सरस्वती सम्मान, साहित्य अकादमी सम्मान आदि से सम्मानित।

व्यक्ति मरियल और भद्दा जान पड़ता था और उस व्यक्ति की छाया मात्र भी नहीं था। क्या उम्र के प्रभाव से कोई इन्सान इतना बदल सकता है। उसी क्षण कई ख्याल उसके मस्तिष्क में कौंधने लगे। अगर वह व्यक्ति आज भी जीवित है, तो 1996 के साल में उसकी उम्र करीबन 70 वर्ष होनी चाहिए। 48 वर्षों का एक लम्बा अन्तराल। उन्हें और भी कुछ याद आया। उसके दाहिने कान की बगल में, जब वह 21 साल का नवयुवक था, दाने के आकार का एक मस्सा था। वह मस्सा बदसूरत व भद्दा नहीं लगता था; क्योंकि सामने से दिखाई नहीं देता था। अचानक मायती के मुख से एक प्रार्थना निकली- माँ दुर्गा मेरी सहायता करो कि इस व्यक्ति के कान की बगल में वैसा कोई मस्सा निकले। मायती ने उस आदमी के करीब जाकर असमिया भाषा में पूछा कि वह क्यों इतनी देर गए यहाँ रुकता है। उस व्यक्ति ने कोई जवाब नहीं दिया, इससे यह साबित होता था कि वह एक बांग्लादेशी है। जब मायती ने मेघना के इलाके में बोली जाने वाली भाषा में उससे बात की, तो वह समझ गया। उसने पूर्व बंगाल की टूटी-फूटी भाषा में गुस्से से कहा- तुम्हें इससे क्या? तुम्हें क्या मतलब है? मुझे इतना अधिकार है कि मैं सड़क पर रह सकता हूँ।

मायती को क्रोध नहीं आया। ऐसा लगा कि नाराज होने का हक सिर्फ इस गरीब आदमी को ही है। उसने एक कदम उस व्यक्ति की तरफ बढ़ाया और

VAGARTH CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाया कि उसके कान के पीछे वह मस्सा है। उसने तुरन्त यह मान लिया कि कोई भी दूसरे व्यक्ति में इस तरह की चार समानताएँ नहीं हो सकतीं। उसने विचलित हो कर पूछा- क्या तुम अकरम हो? और उसे गले से लगा लिया। उस व्यक्ति के मुँह और शरीर से एक अजीब दुर्गन्ध आ रही थी, पर मायती को वह बुरी नहीं लगी। उसे ऐसा लगा कि उसके सामने कोई देवदूत खड़ा है। एक ऐसा देवदूत जो कि इस कठोर और क्रूर दुनिया का नहीं है और जो हमेशा मदद के लिए तत्पर है। उस व्यक्ति का छुरा जमीन पर गिर पड़ा। वह दुर्बल व्यक्ति मोहिम के मजबूत और दृढ़ आलिंगन से अपने को मुक्त करने में असमर्थ हो रहा था। पूर्व बंगाल की भाषा में उसने सिर्फ इतना ही कहा कि - मुझे छोड़ दो। और उसे छोड़ दिया गया। आसपास से गुजरने वाले लोगों को इन दोनों की शारीरिक असमानता विचित्र लगी। उस व्यक्ति ने मायती पर संदेह की निगाह डाली। वह कुछ भी समझ नहीं पा रहा था और उसने पूछा कि तुम कौन हो? मायती ने कहा- उम्र ने मुझे भी अजनबी बना दिया। मेरे सिर पर जो घने बाल हुआ करते थे वे अब नहीं रहे। मैं अब गंजा हो रहा हूँ। मेरा शरीर भारी हो गया है। मधुमेह और रक्तचाप के कारण मैं बूढ़ा हो गया हूँ। अकरम, इस बढ़ती हुई उम्र ने मुझे अपरिचित बना दिया है।

तुम कौन हो? क्यों रो रहे हो? और तुमने मुझे गले से क्यों लगाया? अरे, अकरम मैं हूँ मोहिम। मोहिम मायती। यह सुन अकरम फूट-फूट कर रोने लगा और उसने मायती को गले लगा लिया। उसने काँपती आवाज में पूछा- ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है मोहिम?

मोहिम अकरम का हाथ पकड़ उसे बगल की एक चाय की दुकान में ले गया। अकरम के एक हाथ में छुरा था और दूसरे हाथ में मायती का हाथ। अकरम को चपाती और तरकारी मुँह में ठूँसते देख मायती को दुःख हुआ। अकरम गरम चाय पीते हुए अपनी दुःख भरी कहानी सुनाने लगा। मुक्तिवाहिनी आन्दोलन में उसका बड़ा लड़का मर गया। उसका दूसरा लड़का और परिवार के अन्य लोग असम के विभिन्न इलाकों में रह रहे हैं। लेकिन अकरम, वह देश तो तुम्हारा है, तो यहाँ आ गए यह सोच कि तुमलोग वहाँ खुश रहोगे।

सिर्फ हम ही नहीं और भी लोगों ने पलायन किया क्योंकि हमारे पास और कोई विकल्प नहीं था। इसलिए कि उस देश में गरीबों का कोई अस्तित्व नहीं है।

हमारे पास वहाँ रहने के कोई साधन नहीं थे। वहाँ पर कई तरह के अन्याय हो रहे हैं। मौलवियों की जमात बहुत प्रसन्न है और वे खुश हैं जो सत्ता के नजदीक हैं। सरकारी कर्मचारी और शहर के लोग स्वर्गीय आनन्द में हैं। हम जैसे गरीब बेकार हो गए। हमारे ना रहने से वे ज्यादा प्रसन्न हैं। उन्होंने हमारा भरपूर शोषण किया है। उन्होंने हमें इस देश में आने के लिए सभी सुविधाएँ मुहैय्या करवाई हैं, क्योंकि वे हम जैसे लोगों को अपने ही देश में रहने नहीं देना चाहते। यह सब कहते हुए अकरम मोहिम के हाथ को थामे हुए था और उसकी आँखों में आँसू थे।

मोहिम निःशब्द रह गया और दोनों ने ही कुछ क्षणों तक कुछ नहीं कहा। मोहिम ने वक्त देखा, तो पाया दोपहर के तकरीबन बारह बज रहे थे; लेकिन उसे लगा कि मानों उसके लिए समय रुक सा गया है। मशीन की भाँति वे दोनों सड़क पर चलने लगे। इशारे से एक ऑटो रिक्शा को उन्होंने रोका, मोहिम ने कहा- मेरे घर चलो फिर देखते हैं आगे क्या करना है। अकरम ने अपने आँसुओं को अपनी लुंगी के सिरे से पोंछते हुए कहा- तुम क्यों मेरे लिए तकलीफ मोल ले रहे हो। यहाँ पर भी हम बेकार और नकारा ही हैं। क्या यहाँ की सरकार भी हमें सीमा के पार खदेड़ देगी? क्या हमारी सरकार हमें वापस अपनाएगी? हमें कोई नहीं चाहता। आज मनुष्य का यही मोल है।

लक्ष्मीनन्द बोरा : राजबाड़ी रोड, गणेशगुरी, गुवाहाटी-781005 फोन : 0361-2345690

शर्मिला बोहरा जालान : 6, रिची रोड, कोलकाता-700019 मो. 9433855014

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यिदिश कहानी

अलटेली

आइज़क बेशिविस सिंगर

अनुवाद : इंदुप्रकाश कानूनगो

दस की क्या हुई कि अलटेली यतीम हो गयी। पिता पहले फिर माँ मरी। क़ब्रिस्तान में काम कर रोटी कमाती बेवा नानी – होदेले – ने उसकी परवरिश की। किसी होलीडे के प्रथम दिवस प्रयाण करी किसी स्त्री का शव अगले दिन दफ़नाया जाता। चूँकि होलीडे के दिनों सीना-पिरोना वर्जित होता, होदेले, पेटी में रखी अपनी ही ओढ़नी मृतक को उधार दे देती। इसकी एवज में दफन के व्यवस्थापकों से उसे थोड़ी-सी रकम प्राप्त होती। इसके अतिरिक्त, क़ब्रिस्तान जाकर रोगी के लिए प्रार्थना कर कुछ धन कमाती। किन्हीं लोगों के आग्रह पर किसी पवित्र शख्स की क़ब्र किसी वर्त्तिका से नापती, तत्पश्चात् वर्त्तिका को पिघले मोम में भिगो, मोमबत्तियों में काट सायनागॉग में उन्हें जलाती। धर्मपरिवर्तन से मुकरने पर, किसी ज़मींदार द्वारा कोड़े की पिटाई से जान गँवाये शहीद रेब ज़ालमन की, चैपल में बनी, क़ब्र पर अनवरत जलती मशाल के पात्र में वह समय-समय तेल भी डालती।

होदेले को कितना कुछ चाहिए था? सोमवारों और बृहस्पतवारों उपवास करती। यहूदियों के, वर्षों से बिसराये हुए और सिर्फ़ चर्मपत्र इतिवृत्तों और पुरातन पन्नों ही में उल्लेखित सारे उपवास भी करती। होदेले के पास प्राचीन प्राहा में मुद्रित प्रार्थनाओं की कोई किताब थी। काष्ट जिल्द में कसी उस पुस्तक में घनघोर ताऊन के क्या उसके भी पहले के दिनों से अब तक की समस्त सम्भव हुई विपत्तियों, छात्र विप्लवों, और जन-संहारों के लिए पश्चातापी स्तोत और विलाप गीत थे।

छह वर्षीय बच्ची-सी, नाटी भी, छरहरी भी होदेले बड़ी होते-होते ज़्यादा ही छोटी होती गयी। हमेशा, ग्रीष्मीय तपन में भी ऐसी कँपकँपाती मानों शीत लहर की चपेट में हो, एक पर एक अनेक परिधान पहनती वह ऊपर से किसी शाल में भी लिपटी होती। चालीस पहुँचते उसका चेहरा किसी अंजीर सा हो गया। उपवासी छोड़ अन्य सप्ताही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिवसों में दिनभर में सिर्फ़ एक दफा ही चुकन्दर के शोरबे में सिक्त ब्रेड पपड़ी का आहार करती।

अर्सा पहले सारे दाँत झरा चुकी होदेले की कमर झुकी हुई, भवें उड़ी हुई थीं; उसकी ठुड्डी पर किसी वृद्धा स्त्री की दाढ़ी के छितरे रोयें उग आये थे। उसके विवर्ण ओंठ एक-एक शख्स के और समूचे इज़राइल के लिए भी प्रार्थनाएँ और शुभकामनाएँ बुदबुदाते ही रहते हैं: वे अपने बच्चों और पोते-पोतियों, नाती-नातिनों से धन, आनन्द और सेवा पायें, अपने पुत्रों को वे तोराह की भक्ति में मन लगाने योग्य बनायें, और पुत्रियों को वैवाहिक छत्री की छाया की राह पर ले जायें; **मसीहा** आये, और मृतक जाग उठें।

हर शवयात्रा में रोती विलापती होदेले स्वयं खाली जेब होने पर भी यतीमखाने के मरीजों को खाद्य पदार्थ और शोरबा बाँटती। हर जुम्मे टोकनी उठा यहूदियों के घरों का चक्कर लगा गृहिणियों से गरीबों के लिए जो कुछ बचा-खुचा हो माँग लाती : ब्रेड का टुकड़ा या दलिया, मुर्गी की खोपड़ी या टाँग के टुकड़े, मछली की पूँछ, हेरिंग मछली का सिर : जो मिल जाये ले आती।

धर्मनिष्ठा बाबत अलटेली नानी ही के समान उभरी, जबकि उसने दैहिक खूबसूरती माँ की पायी। उसकी त्वचा मक्खन-सी श्वेत, आँखें नीली, बाल सुनहरे और इतने लम्बे थे कि नानी से चोंटी गुँथवाती। वह नानी की *आराधनाओं की पुस्तक* और *क़ब्रों पर की जातीं प्रार्थनाओं की किताब* क़ब्रिस्तान तक उठा ले जाती। और हाँ, होदेले की अपने कंधों से अक्सर नीचे खिसक जाती शाल को अलटेली पुनः व्यवस्थित करती। नानी द्वारा अलटेली के मन में रोपे गये ईश्वर के श्रद्धालु भय की वजह वह प्रतिदिन तीन बार प्रार्थना करती, पुरुषों की ओर देखना टालती, बल्कि कुत्तों और सूअरों तक से नज़रें दूर रखती। हर महीने के प्रथम और अन्तिम दिनों की पूर्व संध्याओं पर माता और पिता की क़ब्रों को साष्टांग प्रणाम करती।

अलटेली के चौदह पूरे होते नानी ने किसी गुरु के शेब्रेसिन निवासी शिष्य से उसकी सगाई कर दी। असीम सुन्दर अलटेली को आसानी से धनी वर मिल जाता, लेकिन वह शिष्य - ग्रुनम मोत्‌ल -अपने भक्तिभाव की वजह माननीय था। इसके अतिरिक्त, वह भी यतीम तो था ही ज़्यादा मोटा-तगड़ा नहीं था। खूब बड़े सिर, फूला हुआ पेट, छोटे-छोटे पैरों से रचा-बना वह स्हेडेर (cheder) के बच्चों को वर्णमाला, वर्तनी, और गायन सिखाता : स्वयं उनके साथ प्रार्थनाएँ गाता, और उनके लिए चाकू से काट तराश संकेतक बनाता।

हर बृहस्पत गुरु से मिलते चन्द कॉपेक ग्रुनम मोत्‌ल को बसर के लिए पर्याप्त नहीं होते, सो, वह बस्ती के कतिपय निवासियों के घर हफ्ते के भिन्न-भिन्न दिनों खाना खाता। एक दफा शेब्रेशिन में आधी रात बीते आग लगी, ग्रुनम मोत्‌ल अपने शिष्यों -छोटे बच्चों -को बचाने झूम पड़ा। झुलसते घरों में घुस उसने कई जानें बचायी। उसकी वेणियों ने आग पकड़ी और कोई एक कान झुलस गया। उसके भले कामों बाबत सुनकर ही होदेले ने उसे अलटेली के लिए योग्य वर माना।

प्यूरिम की शाम सगाई के अनुबन्ध तैयार किये गये। **ऑब की नौ तारिख के व्रत** के बाद **कम्फर्ट के सैबाथ** का दिन विवाह के लिए तय हुआ। अलटेली के पास कोई दहेज नहीं था। नानी ने उसके लिए सिर्फ़ दो पोशाकें बनवा दी थीं; एक जूता-जोड़ी और एक ब्याहता-की-कैप भी। विवाह की पूर्व संध्या स्नानाघर की परिचारिका ने अलटेली के केश काटे। यों तो वह निर्धन ब्याह होगा, तथापि सब कुछ विधिवत ही सम्पन्न हुआ। जुम्मे की शाम **सायनागॉग** के सामने ब्याह का तम्बू ताना गया। **सैबाथ** के संध्याकाल मिट्टी की फर्श और किसी घुड़साल के अभ्यंतर सी स्याह दीवालों से घिरे होदेले-के-घर पर बाजे बजे। होदेले ने दो-तीन तसले भर बिस्कुट सेंके और गाजर के कुछ टुकड़ों को चाशनी में भिगोया फिर सुखा कर टिकियाएँ बनायीं। मेहमान स्वयं अपने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आइज़क बेशिविस सिंगर

(Isaac Bashevis Singer)

सिंगर का जन्म पोलैंड में हुआ था और मृत्यृ 88 वर्ष की उम्र में अमेरिका में। यिदिश भाषा में 19 उपन्यास, 10 कहानी संग्रह सहित अनेक विधाओं के रचयिता को सन् 1978 में साहित्य का सबसे बड़ा पुरस्कार 'नोबेल पुरस्कार' मिला।

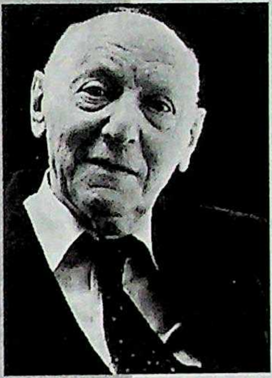

21 नवम्बर 1902 - 24 जुलाई 1991

संग वाइन, ब्रांडी, तथा सेम और मटर के तले हुए दाने लाये। युगल को ब्याह के तोहफे मिले जिनमें- दो-एक बर्तन, एक बाल्टी, एक तसला, एक नूडल बोर्ड और एक नमकदानी -शामिल थे। चूँकि होदेले के घर में एक ही खोली थी, युगल-की-शैय्या का जुगाड़ अटारी में किया गया।

यद्यपि विवाह ग्रीष्मकाल में हुआ तथापि सिर पीले-पीले बालों से और चेहरा अनेक चित्तियों से भरा दूल्हा, ग्रुनम मोत्ल, विवाह मण्डप में कोई मोटी बण्डी, मखमली कनटोप, और चमड़े के भारी भरकम जूते पहन, किसी स्कूली छात्र-सा शरमांता हुआ आया। लड़कियों ने उसका मज़ाक उड़ाती भद्दी हँसी बिखेरी।

विवाह के तत्काल बाद ग्रुनम मोत्ल गुरुवर इचेले क्रास्नोस्तोवर का सहयोगी जा बना। युवा युगल होदेले संग उसकी अकेली खोली ही में रहने लगे। रात के वक्त होदेले की बैंच पर विन्यस्त शैय्या के सामने कोई पर्दा लगा दिया जाता।

अब होदेले अलटेली को गर्भवती देखने की बाट जोहने लगी, लेकिन शरद बीत गयी फिर भी अलटेली का मासिक धर्म जारी रहा। होदेले पवित्र क़ब्रों पर प्रार्थना करने गयी। उसने कोई वन्दना लिखवायी जिसे बलिदानी रेब ज़ालमन की चैपल में जा रखा।

होदेले ने अलटेली के गर्भधारण के उपचार हेतु अनेक जतन किये। ग्रुनम मोत्ल के लिए लहसुन पकाई ताकि उसकी धातु में इजाफा हो। उसने अलटेली को अयन (udder) खिलाया, किसी नींबू फल की नोंक चबाने को कहा जिसे सुक्कोश पर यहूदियों ने वरदान दिया था। नानी ने हर तरह की वन्दनाएँ अलटेली की खोल भरने के जतन सफल करने के लिए गायीं। स्वयं अलटेली भी हर जुम्मे कैंडलों की आरती उतार बच्चे होने की याचना करती, वन्दनाएँ गाती। आनुष्ठानिक स्नान के क्षण, परिचारिका ने अलटेली को -अपनी देह के प्रति पति की कामोत्तेजना उभारने के लिए - नाना करतब सिखाये, और गर्भधारण तथा प्रसव के ख़िलाफ़ सक्रिय दुष्ट ताकतों को झाड़-फूँककर भगाने का मंत्र जपा। तथापि, साल बीते बाद भी अलटेली की खोल नहीं भरी।

होदेले को लगा कि उसकी प्रार्थनाएँ और अलटेली की मिन्नतें पर्याप्त नहीं। ज़ोकेलोव में रेब हरषेले नामक कोई चमत्कारी रहता था। चार-पाँच रोटी, कुछेक प्याज और लहसुन की कतिपय कलियाँ रूमाल में बाँध होदेले अलटेली संग ज़ोकेलोव की जानिब चल दी।

किराये के पैसे थे नहीं सो दोनों स्त्रियाँ पैदल चलीं। अत्यन्त धीमे क्या प्रायः घिसटते चलती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होदेले के कारण सफर में कई हफ्ते लगे। रातों में नानी और नातिन कभी खेतों में तो कभी किसी सराय या किसी किसान के खलिहान में सोये। दयालु लोगों, यहूदी क्या ईसाई भी, ने एक-आध रोटी, शलजम, मूली या सेव उन्हें खाने के लिए दिये। जंगल में तो बेर, फालसे, और मशरूमों की कोई कमी नहीं थी। अलटेली लकड़ी के दो टुकड़ों को परस्पर रगड़ आग जलाना जानती थी। **ऑब** के महीने दिन गरम होते, रात भी तपी होती। इस तरह होदेले और अलटेली ज़ोकेलोव पहुँचे।

चमत्कारी रेब हरषेले प्रतिदिन सिर्फ़ छह स्त्रियों को भेंट का अवसर देता, लेकिन बस्ती में बाँझ और रोगी स्त्रियों की, अभिशापित पत्नियों की, अनवरत हिचकियाँ लेती रहतीं भूताविष्ट लड़कियों की, छोड़ भागे पतियों को खोजतीं पत्नियों की बाढ़ आ जाती।

रेब हरषेले के घर के सामने, दाखिले के इन्तज़ार में कई स्त्रियाँ, अपने-अपने हाथों कोई पुलिन्दा थामे, लकड़ी के ठूँठों पर बैठी रहतीं। स्याह दाढ़ी और आग्नेय नयनधारी कोई बंदा एक के बाद एक स्त्रियों को भीतर भेजता जाता। वह, कतिपय ग्राश्चेन की रिश्वत दी हुई स्त्रियों को अव्वल मौका देता। जवान स्त्रियों संग चुहल करता, वयोवृद्धाओं को धमकाता।

होदेले क्या अलटेली भी खुशामद जानती न घूसखोरी; दो हफ्ते बीत जाने पर भी पीर से मिलने का दाखिला न पा सकीं। अन्ततः किसी की दया के अनन्तर, द्वार पर तैनात बंदे को पटा, उन्हें इजाजत मिली। होदेले से तनिक सा ही छोटा या लम्बा कोई नाटा, पेट तक लम्बी श्वेत दाढ़ी धरा, छितरी हुई सफेद-सफेद भवें, और कंधों तक सफेद चोटियाँ लटकाया हुआ रेब हरषेले खोपड़ी पर भी सफेद ही टोपी पहना था। किसी रस्सी से कसा उसका बाँहें-विहीन चोगा धरती पर घिसटता। हरषेले ने फीस के लिए हथेली आगे फैलायी, तत्क्षण होदेले ने अपनी शाल के सिरे बँधे अट्ठारह ग्राश्चेन उसे थमा दिये।

रेब हरषेले ने अलटेली के सिर पर हाथ रख आशीष दिया। फिर, कोई ताबीज रखा एक छोटा-सा लीनन बैग उसकी झोली में डाला। उसने उससे कहा कि आनुष्ठानिक स्नान की रात जब खाविन्द उसके निकट आये, तब उसके द्वारा अपनी देह में उत्क्षेपित उसके वीर्य में उँगली की पोर भिगो सैबाथ के विदाई समारोह के वक्त वापरे गये वाइनग्लास के सिरे पर उसे पसार दो।

रेब हरषेले ने कहा, ''अब घर जाओ। अगले वर्ष इसी महीने तुम एक पुत्र जन्मोगी।''

अब तक घर लौटने के सफर में बड़ा विलम्ब हो चुका था क्योंकि चमत्कार के सम्मानित दिन -डेज़ ऑव ऑ -का पर्व शुरू होने ही वाला था। होदेले और अलटेली ज़ोकेलोव ही के अनाथालय में सुकोथ के बाद तक बने रहे।

एक वर्ष क्या, पाँच बीत गये, दस, फिर भी अलटेली को बच्चा नहीं हुआ। होदेले मर गयी, श्रद्धेय रेब ज़ालमन की चैपल के निकट दफन हुई। दफनाने के पूर्व देह को तैयार करी स्त्रियों ने हलफ उठा बताया कि किसी चूज़े भर बराबर वजनी शव के ओंठ मुस्करा रहे थे। ग्रुनम मोत्ल ने क्रिया कर्म के अनन्तर कादिश का पाठ किया।

होदेले के मरणोपरान्त, नगरवासियों ने उसका कामकाज मरते व्यक्तियों के लिए प्रार्थना बाँचना, क़ब्रों को नापना -अलटेली के जिम्मे कर दिया। लेकिन अलटेली अपने स्थायी नगर में कम ही रहने लगी; लगातार -कभी किसी पीर के, किसी बाजीगर के, डायनों तक के भी, नजूमी के, जादूटोनाकारों के पास जाती गयी। गर्भधारण के लिए नयी-नयी युक्तियाँ अनवरत आजमाती गयी। उसकी गरदन तावीजों, जंतरों, भेड़ के दाँतों, चन्द्राकार मणियों, वशीभूत सिक्कों, और एम्बर के टुकड़ों से पट गयी और थैली जड़ी-बूटियों तथा जादुई औषधियों और मरहमों से। उसने किसी पीर की क्या किसी अन्य बाँझ स्त्री के भी मशविरे की अवहेलना नहीं की : क्या मालूम किसका उपचार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काम आ जाये?

ग्रुनम मोत्ल सहायक के पद से प्रशिक्षुओं का अध्यापक बन तो गया तथापि उसे भिन्न-भिन्न पड़ोसियों ही के घर पेट भरना पड़ा, क्योंकि अव्वल तो कमाई कम ऊपर से अलटेली यदाकदा ही घर रहती। होली-दिवसों पर ही लौटती, आनुष्ठानिक स्नान कर खाविन्द संग लेटती। होली-दिवसों के बीते बाद तत्क्षण, कोई बेंत थाम, कंधों पर थैला लटका धरती की लम्बाई-चौड़ाई नापती ही नापती सफर करती रहती।

अपना अधिकांश वक्त सिर्फ़ इसीलिए ही भटकने में नहीं बिताती कि कहीं कोई हल निकल आये बल्कि अब उसकी आदत ही में सड़कें नापना शुमार हो गया। दयालु लोग मिल ही जाते -भूखों मरने का सवाल ही नहीं था। प्रायः हर कहीं यतीमखाना मिल जाता, नहीं तो सिर टिकाने के लिए घास-फूस का बण्डल तो होता ही। हर जगह उसे पीर लोगों के नये-नये चमत्कारों की, शैतानी नज़रों को उतारती और पिघला मोम डाल भविष्य बताती टोन्हाइयों की खबरें मिलती; उन लोगों की भी जो ताश-पत्ते फैला मुकद्दर बताते, हस्तरेखाएँ और कपाल रेखाएँ पढ़ते, काले आईनों में झाँकते झँकवाते, मृतकों की अस्थियों से अभिमंत्रित करते।

सारी बस्तियों में सभी रब्बियों ने यहूदी कन्याओं को -नापाक फरिश्तों के आह्वानकर्त्ताओं और जादू टोन्हाइयों की कारीगरियों से दूर रहने के लिए, और शैतानों के अथवा लिलिथ के नाम पुकार-पुकार ऐन्द्रजालिक दाँव-पेंच करते बाजीगरों से सम्पर्क न रखने के लिए -चेतावनियाँ दी हुई थी, फिर भी बाँझ स्त्रियों ने तलाश की जिद बरकरार रखी। अपनी खोल भरने के जतन के अनन्तर वे -चाहे उन्हें जीवनोपरान्त गेहेन्ना (नर्क) में नुकीली कीलों पर ही क्यों न लुढ़काया जाये -कुछ भी करने को तैयार थीं। रब्बियों और बंजारों ने कई बार अपनी चेतावनियाँ और परामर्श दोहराये। फिर भी अलटेली मिथ्या युक्तियों -हाल सुन्नत करवाये किसी लड़के के शिश्नाग्रच्छद, किसी दुल्हन के कौमार्य रक्त, शैतान के गोबर और शुष्क मेंढक, किसी नवजात के बीजान्डासन, किसी बधिया साँड़ की अण्डग्रन्थियों -से उपचार करवाती गयी। मदद की गुजार में खड़ा शख्स भीरू या पाप शंकालु नहीं हो सकता।

किसी अभिचारी के सुझाव पर किसी उथले गर्त्त में उतरी क्या उतरी कि गड्ढे ने उस पर दलदली झाड़ियाँ, सूख पत्ते और सड़ा घास-फूस बिछा दिया। अलटेली उस ज़िन्दा क़ब्र में इसलिए घण्टा भर पड़ी रही ताकि शैतानों को यह सोचने के लिए बहका दे कि मर गयी ताकि वे उस पर नज़र रखना बंद कर दें। तेल की बूँदों से किस्मत गढ़ते किसी बुड्ढे ने उसे भूत-पिशाचों के नाम उच्चार स्वयं को दहशत और जुगुप्सा से भर लेने को कहा।

जगह-जगह जाती अलटेली अकेली नहीं होती, हर बार दुखभरी सगोत्र स्त्रियाँ मिल ही जातीं। अब रजस्वला नहीं रहने पर भी उन स्त्रियों ने उसे नाउम्मीद होने से रोका। **सराह** ने नब्बे की उमर में **आइज़क** को पैदा किया था ना? प्रभु चाहे तो गर्भाशय और अण्डाशय को पुनः उर्वर कर सकता है। इज़बित्ज़ा में किसी पचास वर्षीय वृद्धा ने जुड़वाँ शिशुओं को जन्मा है। क्रासनिस्तोव में दादी और पोती दोनों एक साथ प्रसव-पीड़ित हुई हैं। पिसाक में नब्बे वर्षीय दूल्हे की सत्रह वर्षीय दुल्हन ने आठ बच्चों -सभी लड़कों -को जन्मा।

सुकोथ के पर्व बीते, जड़ी-बूटियों का थैला उठाये यूँ मनमुदित कि इस दफा तो चमत्कार होगा ही, नगर लौटी अलटेली ने घर सूना पाया। ग्रुनम मोत्ल महीनों से जाने कहाँ गया हुआ है। गन्तव्य का कोई सुराग नहीं छोड़ गया। शिष्यों को सत्रावसान के पहले

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही विदा कर गया -उनसे शुल्क तक नहीं लिया। कतिपय पड़ोसी बोले- लिबलिन की ओर गया है। कुछेक अन्यों के अनुसार उसके सान नदी की दिशा गये होने की जानकारी मिली। रसोई के चन्द बर्तन और तश्तरियाँ चोर-उचक्के उठा ले गये; अलटेली की एकमात्र होली-दिवसीय पोशाक भर ही गठरी में बची पड़ी थी। आरम्भ में अलटेली को लगा ग्रुनम मोत्ल शिक्षक के किसी पद की तलाश में या किसी सम्बन्धी से मिलने गया होगा, और थोड़े दिनों बाद लौट आयेगा, नहीं तो खत तो लिखेगा ही, लेकिन हफ्ते क्या महीने बीत गये, ग्रुनम मोत्ल का कोई अता-पता नहीं मिला। अलटेली अब परित्यक्त स्त्री हो गयी। अब बच्चा क्या पैदा हो।

उस जाड़े अलटेली घर ही रही। उसने क़ब्रिस्तान जाने का काम फिर शुरू कर दिया। जाने क्या हुआ कि बस्ती महामारी की चपेट में आ गयी। बच्चे खसरा, चेचक, खाँसी, और लाल बुखार से मरने लगे। बड़ों को पेचिस हुई। **प्यूरिम** के आने तक महामारी खत्म हो गयी, तब अलटेली किसी बेकर के यहाँ मेत्ज़ो (खस्ता) बनाने का आटा गूँथने लगी।

उस जाड़े तक अलटेली अभी भी युवा ही नज़र आयी। उसके गाल किसी किशोरी ही से चिकने और गुलाबी बने रहे। हालाँकि, चेहरा पीला पड़ गया, नाक ज़्यादा ही नुकीली हो गयी, और झुर्रियों का जाल आँखों को घेरने लगा। चूँकि **सेडेर** का पर्व मनाने उसके घर कोई नहीं था, अतः वह धर्मार्थ सेडेर चली गयी जो भिखारियों और अपाहिजों के लिए बिरादरी के द्वारा संचालित होता था।

बस्ती ने सोचा अब अलटेली घर पर ही रहेगी। लेकिन **पास ओवर** बीता न बीता कि परित्यक्ता ने अपना घर बेचने के लिए दलालों से सम्पर्क किया।

जाड़ा बीत गया। आकाश साफ हो चला; सूरज चमकने लगा और पोखर सूखने लगे। वनों से गुनगुनी हवाओं के आरम्भ होते अलटेली ने ग्रुनम मोत्ल को खोजने की कमर कसी। इस दफा वह अपने-अपने खाविन्दों की तलाश में भटक रही अपने ही जैसी अन्य परित्यक्ताओं के झुण्डों में जा मिली। वे बस्ती-बस्ती भटके, सायनागागों और प्रार्थनाघरों में घुस पुरुषों के बीच घूमे, उन्होंने सरायें, यतीमखाने, और हाट-मेले खँगाले, क़ब्रिस्तानों के पत्थरों पर उकेरे नाम पढ़े। कतिपय स्त्रियाँ बिरादरी के बुजुर्गों से मदद के इरादे रब्बियों से दस्तावेज़ लिखवा लायीं कि वे वाकई परित्यक्ताएँ हैं।

हर परित्यक्ता का बयान, पूर्ववर्तियों से भिन्न था। वहाँ अलटेली ने नाना किस्म के विचित्र पुरुषों : आत्म अनुशासनिक ज्ञानियों कि जिन्होंने देहाती अपराधों के लिए पत्नियाँ त्याग दीं; किसी एक से किसी दूसरे रब्बी के दरबार घूमते ही घूमते हासिदें जो घर ही नहीं लौटे; जेरूसलेम के सफर पर, अथवा, सम्बातिआन दरिया के दूसरे किनारे पर **इज़राइल की विलुप्त कौमों** को खोजने निकले पुरुषों के बारे में जाना। उसे दूसरी औरतें ले आये या धर्म परिवर्तन कर अन्य जैंटाइल स्त्रियों को ब्याह लाये लापरवाह जाँबाजों, मद्यपों, और दुराचारियों का भी पता चला। कतिपय ऐसे भी थे जो जाने क्यों घर छोड़ गये।

अलटेली को किसी परित्यक्ता ने बताया **पासओवर** की पूर्व-संध्या आरामकुर्सी पर **सेडेर** के पर्व का चोगा और घरेलू चप्पलें पहना खाविन्द खिड़कियों की झिलमिलियाँ भिड़ाने बाहर क्या निकला कि फिर कभी दिखाई ही नहीं दिया। निस्सन्देह, शैतान उसे **अँधेरे के पर्वतों**, अथवा, **आस्मोड्यूस के क़िले** पर खींच ले गये।

ग्रीष्म बीते, **एल्यूल के महीने** अलटेली लौटी। तथापि, ग्रुनम मोत्ल का कोई सुराग नहीं मिला। होली-दिवसों के लिए अलटेली रुकी रही; **सुकोथ** के बाद के दिन पुनः बाहर चल दी। इस दफा उसके गये पूरा वर्ष बीत गया। अब लौटी तो देखा कि उसकी झोपड़ी जल गयी है। **होली दिवसों** को उसने यतीमखाने में मनाया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्राय: पाँच वर्ष बीत गये। ग्रीष्म के किसी दिन, ग्रेट पोलैण्ड के किसी अनाथालय में कदम रखते अलटेली ने घासफूस के किसी ढेर पर, गाजर चबाते ग्रुनम मोत्ल को देखा; हाँ, वही है हालाँकि दाढ़ी में सफेद बाल उग आये हैं; वही है, बड़ा भारी सिर, फूला पेट, चपटी नाक! उस पर आँखें गड़ा पूछा–

''मेरी नज़रें भरमा तो नहीं गयी हैं?''

''नहीं, मैं ग्रुनम मोत्ल हूँ।''

''मुझे पहचानते हो?''

''हाँ, अलटेली।''

''ओ आह! तुमने इस दुर्दशा में मेरा साथ क्यों छोड़ा?'' अलटेली ने पूछा।

ग्रुनम मोत्ल ने गाजर नीचे रखी, ''मुझे ही नहीं मालूम।''

''तुम ऐसा कैसे कर पाये?''

ग्रुनम मोत्ल ने पल भर लज्जित जम्हाई ली। फिर कंधे ऊँचे उठा सँजीदा हुआ, ''मैं पढ़ाते-पढ़ाते ऊब गया था।''

''पढ़ाने से ऊब कोई आदमी बीवी को क्यों त्यागे?'' अलटेली अड़ी रही।

''ओह!''

''जवाब दो। अब मिल गये हो; आसानी से नहीं छोड़ूँगी।''

''मैं संसार में विलीन होने निकल पड़ा।''

''लेकिन क्यों, क्यों?''

''तुम कब घर में रहती थी?''

''दूसरी बीवी ले आये क्या?''

''हे भगवान! नहीं, नहीं।''

''फिर क्या बात है?...''

''तुम्हें मालूम है ना कि पत्नी का परित्याग महापाप है?''

''हाँ, तुम ठीक कह रही हो।''

अनाथालय के अन्य लोगों ने उन्हें सुन आह भरी। पुरुषों ने ग्रुनम मोत्ल को फटकारा। स्त्रियों ने उसे कोसा। वह चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा।

पल बीते, बोला– ''अब मेरे पास यह गाजर भर है।''

''अभी रबी के घर चलो।''

''सुनो तो...।''

रबी ने बात सुन चेहरा ताना। बेशक, जब पुरुष और स्त्री एक-दूसरे को पहचान लें, और कोई भी उनके युगल बंधन पर सन्देह न करे, तब उनका यकीन किया जाना चाहिए। फिर भी, बस्ती में जाने क्या-क्या होता रहता है। एक दफा किसी परित्यक्ता ने कथित रूप से खाविन्द को पहचान लिया और वो उसे तलाक देने को तैयार हो गया, बाद में पता चला वह उसका पति नहीं था, अतएव पुनर्विवाह से उत्पन्न उसकी सन्तान जायज मानी गयी। दाढ़ी को हाथ से पकड़ रबी ने अलटेली से पूछा, ''खाविन्द के किसी निशान की जानकारी है?''

''कैसे निशान?''

''उसके बदन पर कोई दाग़? ऐसा कुछ कि जिसे सिर्फ़ बीवी ही बता सके?''

''मुझे इसकी कोई याद नहीं।''

''इसमें कहीं कोई तिल, कोई मसा, कोई पैदाइशी निशान है?''

''मैंने कभी नहीं देखा।''

पुरुष की ओर घूमकर पूछा, ''स्त्री के कोई निशान बताओ।''

ग्रुनम मोत्ल ने पीली-पीली भवें तानी, ''नहीं मालूम।''

रबी ग्रुनम मोत्ल को निकटवर्ती कक्ष में ले गया ताकि उससे गोपनीय मशविरा करे। तत्क्षण लौटा।

''इसकी जात क्या है; कोहन या लेवाइट?'' रबी ने अलटेली से पूछा।

''मुझे नहीं मालूम, रबी।''

''इसकी माँ का नाम क्या है?''

''मेरी सास का? जब हमारा ब्याह हुआ ये यतीम था।''

''इसने माँ का कभी ज़िक्र नहीं किया?''

''मुझे याद नहीं।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

‘‘और पिता के बाबत?’’

‘‘मुझे दोनों के बारे में नहीं मालूम।’’

‘‘क्या तुमको पक्का भरोसा है कि यही तुम्हारा खाविन्द है?’’

‘‘हाँ, हाँ, ये ही ग्रुनम मोत्ल है।’’

‘‘ग्रुनम मोत्ल, तुम अपनी बीवी को पहचान रहे हो?’’

ग्रुनम मोत्ल ने आँखें झपकाईं, ‘‘शायद।’’

‘‘तुम इसे पहचान रहे हो, या तुम्हें सन्देह है?’’

‘‘मेरे ख्याल से पहचान रहा हूँ।’’

‘‘अब तुम दोनों क्या चाहते हो? साथ रहना, या तलाक?’’ रबी ने पूछा।

बडी देर तक दोनों मौन रहे। फिर ग्रुनम मोत्ल ने कहा, ‘‘जैसी इसकी मर्जी।’’

‘‘तुम क्या चाहती हो? इसके साथ रहना? या, तुम्हें तलाक चाहिए?’’

‘‘तलाक काहे के लिए? उसने तो मुझे कोई दुख नहीं दिया।’’ अलटेली ने जवाब दिया।

रबी बड़ी देर तक उनसे सवाल पूछता ही पूछता गया। किसी न किसी तरह उसने शिनाख्त के कतिपय सुबूत उगलवा लिये। ग्रुनम मोत्ल को अलटेली की नानी का नाम- होदेले -याद आ गया। अलटेली को याद आया कि ग्रुनम मोत्ल के बायें पैर के खूब बड़े अँगूठे का नाखून काला है। रबी ने ग्रुनम मोत्ल का जूता उतरवा पैर पर लिपटा चिथड़ा उतरवाया, देखा कि नाखून वाकई काला है।

रबी बोला, ‘‘जाओ, तुम साथ रह सकते हो।’’

लेकिन वे कहाँ जाकर रहते? अब ग्रुनम मोत्ल कुछ नहीं कमाता था। वह भिक्षा पर ही निर्भर था।

वे पुनः अनाथालय चले गये। वहाँ के परिचालक ने अलटेली के लिए घास-फूस का नया बिछौना बना दिया। खुशमिजाज़ भिखारियों ने सीटियाँ और तालियाँ बजा-बजा दम्पती का स्वागत किया। अलटेली के पास थैले में कोई बर्तन था जिसमें मुट्ठीभर दलिया और एक प्याज था; उसने अपने और खाविन्द के लिए सिगड़ी पर रख पकाना शुरू किया। ग्रुनम मोत्ल ने बाहर निकल आग के लिए कुछ लकड़ी बटोरी। गुरुवार के दिन, दोनों भीख माँगने बैठे। बस्ती के लोगों को जब ज्ञात हुआ कि ग्रुनम मोत्ल ने पत्नी को छोड़ दिया था तो उन्होंने उसे एक भी ग्रास्चेन नहीं दिया। उन्होंने अलटेली से कहा- ‘‘तुम्हारा तो खाविन्द है, वही भरण-पोषण करेगा।’’ दिन डूब गया, दोनों खाली हाथ लौट आये।

सैकड़ों भिखारियों से अटा पड़ा यतीमखाना धुएँ और दुर्गन्ध से भरा था। बच्चे चीखते हुए रो रहे थे। माएँ गालियाँ बकतीं जुँए खोज रही थीं। यतीमखाने के मसखरे हाल जुड़े दम्पती पर तरह-तरह की अश्लील हरकतें करने लगे।

दो-तीन हफ्ते बीत गये लेकिन ग्रुनम मोत्ल ने अलटेली की ओर जरा रुख नहीं किया; वस्तुतः उसे अब किसी पत्नी की लालसा नहीं थी। देर रात तक जागा हुआ बुदबुदाता रहता। हर आधा घण्टा गंदे पानी से भरे डोबने की ओर पेशाब करने घिसटता जाता। भोर के तारे के उगने के पहले उठ खड़ा हो अध्ययन-घर (स्टडी हाउस) जा संध्या की प्रार्थना बेला तक वहीं रहता। अलटेली ने सुझाया- क्यों न हम सार्वजनिक गुसलखाने में जा सोयें, लेकिन ग्रुनम मोत्ल ने जवाब दिया-

‘‘मुझे पिशाचों का डर लगता है।’’

‘‘खेत में चलें?’’

‘‘यह बिलकुल ठीक नहीं होगा।’’

‘‘तब फिर क्या ठीक होगा?’’

‘‘मैं तुम्हें तलाक दे सकता हूँ।’’

अलटेली सोचने लगी। तलाक से क्या हो सकता है? चूँकि परित्यक्ता स्त्री नहीं मानी जाएगी, उसे किसी नगर में जा बस कोई नौकरी करनी होगी, या कहीं आटा गूँथने का काम लेना होगा, या कपड़े धोना होगा। फिर शादी कर लूँ? लेकिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुझे कोई ब्याहेगा? कोई मिल भी जाए तो भी गृहस्थी सिरे से शुरू करने की अब कोई इच्छा नहीं बची। अलटेली को लम्बी राह पर भटकने की; सड़क किनारे बनी सरायों की; अपनी अनूठी कहानियों, खिन्न बातों, और हमदर्द शब्दों से भरी परित्यक्ता स्त्रियों के बीच घुमड़ने की लालसा उठी। एक रात, ग्रुनम मोत्ल को खर्राटे भरता छोड़, थैला और बेंत उठा अलटेली भगवान भरोसे जाने कहाँ चल दी। ऐसे रास्ते घूम गई जो खेतों की जानिब जा रहा था। गहरी रात का चन्द्रमा गेहूँ के पीले-पीले खेतों पर प्रकाश की जालियाँ बिछा रहा था। झींगुर चिंचिया रहे थे; मेंढक टर्रा रहे थे। ओस गिर रही थी। अदृश्य प्रेतों की छायाएँ आकाश और धरती के बीच भटकती हुई मक्के के खेतों पर आ पसरीं।

पौ फटने के पहले अकेले बाहर घूमने के खतरों से अलटेली खूब वाकिफ थी, इसीलिए उसने रात में भटक रहे नापाक प्रेतों को भगाने के लिए कोई मंत्र उच्चारा। वह फिर कभी अपने जन्म स्थान या उस जगह जहाँ ग्रुनम मोत्ल को छोड़ा, नहीं लौटी। वह दोबारा परित्यक्ता पत्नी जा बनी। फिर से सायनागागों और अध्ययन-शालाओं और मेले-ठेलों में जा अपने खाविन्द को खोजने लगी। अन्य परित्यक्ताओं के साथ क़ब्रों की शिलाओं पर उकेरे नाम पढ़ती, और मृतकों की संस्थाओं में रखे दस्तावेज़ों के पन्ने पलटती। वक्त गुज़रते उस जगह का नाम भूल गई जहाँ ग्रुनम मोत्ल मिला था।

इतना तो अलटेली जानती थी कि मण्डली को धोखा देना पाप है। लेकिन शायद यह धोखा नहीं है -शायद उसे मिला ग्रुनम मोत्ल कोई दानव था। ऐसा प्रायः हुआ है कि शैतानों ने मनुष्यों का रूप धर लिया। ऐसा भी हुआ है कि मृतक क़ब्रों से निकल बाहर आ जीवितों के बीच घुल-मिल गये। अलटेली ने स्वयं को आश्वस्त किया कि किन्हीं अन्य पापों की वह जरा भी गुनहगार नहीं है। यों तो किसी संत को भी एक-आध उल्लंघन की इजाज़त है।

नहीं, अपने निकट घास-फूस पर लेटा बड़बड़ा रहा ग्रुनम मोत्ल उसका वो खाविन्द नहीं जिसको वह तरस रही थी। किसी रबी की पत्नी ने रहस्योद्घाटन किया कि सच्चा विवाह किसी दूसरे संसार ही में होता है, जब हड्डियों का चोला उतारा जाकर सिर्फ़ आत्मा बची हो। स्त्री-पुरुष के दरम्यान प्रेम स्वर्ग में ही आरम्भ होता है, जहाँ पुरुष सुनहरी कुर्सी पर बैठा हो और पत्नी उसके लिए पायदान जैसी सेवा करती हो और दोनों **तोराह** के रहस्यों में दीक्षित हों। जबकि यहाँ, धरती पर, अश्रुओं की घाटी में, स्त्री, चाहे वह अपने खाविन्द के तकिये पर सिर से सिर टिकाये क्यों न लेटी हो, परित्यक्त पत्नी ही है...

इंदुप्रकाश कानूनगो : 282, रोहित नगर (प्रथम), गुलमोहर, भोपाल-462039
मो.09981014157

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खोज : अपनी और अपने समय की

(पुरस्कार वक्तव्य)

काशीनाथ सिंह

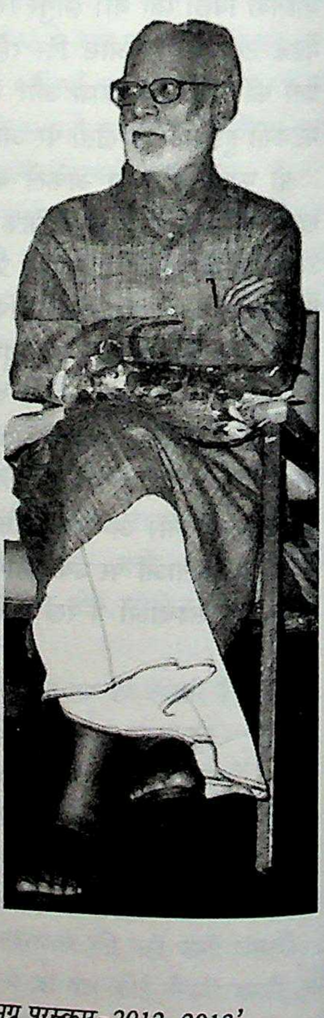

मैंने शुरू किया था कहानियों से। पच्चीस वर्षों तक कहानियाँ लिखी। उसके बाद संस्मरण लिखे। चार उपन्यास लिखे। सब मिला कर एक-आध को छोड़ दिया जाए -तो यही चौदह-पन्द्रह किताबें हैं, जो किताबें हैं -ग्रंथ नहीं हैं, पोथियाँ नहीं हैं। पतली-पतली किताबें हैं और मात्रा कोई ऐसी नहीं जिस पर मैं संतोष कर सकूँ या कोई लेखक गर्व कर सके। लेकिन मेरे दिमाग में यह भी आता है कि मात्रा यदि इतनी महत्त्वपूर्ण होती, तो चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' कहाँ होते? ढेर सारे ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने एक किताब लिखने में जिंदगी गुजार दी और वे उस क्षेत्र में प्रतिमान बने। तो लगा कि कुछ और है जो महत्त्वपूर्ण होता है - 'मात्रा' या 'संख्या' नहीं; तो क्या है महत्त्वपूर्ण? जो महत्त्वपूर्ण है उसे हम 'गुणवत्ता' कहते हैं। गुणवत्ता कौन तय करता है? -आलोचक - शंभुनाथ जी जैसे लोग और आलोचक मेरे घर में था। मेरे आँगन में कुटी छवाने की जरूरत नहीं थी। मेरा बड़ा भाई, मेरा गुरु, हिन्दी का सबसे बड़ा आलोचक। सारे कथाकारों के बारे में बोलता था वह, लेकिन अपने भाई के बारे में चुप रहता था। संकोच या लिहाज कह लीजिए -लेकिन कोई टिप्पणी नहीं करता था। मजबूरी थी उसकी भाई होने की। चूँकि वह नहीं करता था, इसलिए दूसरे भी चुप रहते थे। इसकी वजह मेरे कथाकार की कमियाँ भी रही होंगी, इससे इनकार नहीं।

मेरे दिमाग में बात आई कि प्रेमचन्द के जमाने में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी थे और प्रेमचन्द ने कभी भी आचार्य शुक्ल की

काशीनाथ सिंह को हाल ही में भारतीय भाषा परिषद के 'रचना समग्र पुरस्कार-2012-2013' से सम्मानित किया गया। बधाई -सं.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तरफ नहीं देखा। उनकी जरूरत नहीं महसूस की। फणीश्वरनाथ रेणु के जमाने में हिन्दी कहानी के सबसे बड़े आलोचक नामवर सिंह थे –रेणु ने उनकी तरफ नहीं देखा। मुझे अपने लिए एक दूसरे आलोचक की तलाश करनी चाहिए, जिसे हम 'सामान्य पाठक' कहते हैं –ऐसा मुझे लगा। जिसे आम पाठक कहते हैं, कॉमन रीडर या सामान्य पाठक कहते हैं और जो लेखक उनकी स्मृतियों में और ज़ुबान पर रह जाता है, कोई भी आलोचक उसे अनदेखा न करने के लिए मजबूर होता है। जरूर देखता है- झक मारकर। तो मैंने उस सामान्य पाठक को अपना आलोचक समझा। बाद के दिनों में जो कुछ भी लिखा, मैंने देखा कि उस आम पाठक की दिलचस्पी उसमें हो रही है। आज जब हमारे दौर के या बाद के भी ढेर सारे लोग पाठकों का रोना रोते हैं, मुझे पाठकों के लिए कभी रोने की ज़रूरत नहीं महसूस हुई।

अब दूसरी बात यह है कि ये सारी चीजें शुरू कैसे हुईं ? मैं इसके बारे में भी बात करना चाहता हूँ। जब मैंने लिखना शुरू किया था, तो ढेर सारे लोग लिख रहे थे हमारे साथ के। दिल्ली के लोग, चण्डीगढ़ के लोग, इलाहाबाद के कथाकार- लेखक, जालंधर के कथाकार, पटना में और कलकत्ता में भी। लेकिन ज्यादातर लेखकों की नज़र दिल्ली या इलाहाबाद के उन लेखकों पर रहती थी, जो आधुनिक लेखक कहे जाते थे। मेरी भी कोशिश लगभग वैसी ही थी कि आधुनिक हो सकूँ और आधुनिक लेखन वह था, जो परम्परा से विद्रोह कर के किया जा रहा था, परम्परा को नकार कर किया जा रहा था। हम ऐसा नहीं सोच रहे थे। कहीं न कहीं मेरे भीतर लोक-परम्परा कहिए या प्रेमचन्द की परम्परा –वह थी, लेकिन मैं वैसा दिखना चाह रहा था जैसा वे कर रहे थे, लिख रहे थे।

इसी दौरान संयोग से जाना पड़ा मुझे श्रीनगर – कश्मीर ! 1967 की बात है ये। कुसुम खेमानी जी देख रही हैं- बहुत अच्छा संस्मरण लिखा है इन्होंने- 'कहानियाँ सुनाती यात्राएँ'। तो श्रीनगर गया था मैं और वहाँ के सौंदर्य से बड़ा हरा-भरा हो कर लौटा था। तबियत खुश थी हरियाली और रंग-बिरंगे फूलों को देखकर। इसी बीच क्वार-कार्तिक के महीने में मुझे जाना पड़ा अपने गाँव। आपको ध्यान हो तो 1967 का ही वह वर्ष था जब उत्तरप्रदेश और बिहार में बड़ा भयानक अकाल पड़ा था। '67-'68 के दिन रहे होंगे। उसी अकाल में अमरीका से आटे की बोरियाँ मंगवाई गई थीं और जयप्रकाश नारायण ने बाँटी थी वो बोरियाँ। तो उन्हीं दिनों मैं गया गाँव। रात का वक्त था। टहटह अंजोरिया रात थी। नहर के किनारे जो धान के खेत थे, पीले पड़े थे। मेरी नज़र धान के खेत पर नहीं थी, अंजोरिया रात पर थी। तो बहरहाल घर गया। सुबह मैंने देखा कि मेरे दरवाजे से थोड़ी दूरी पर कुआँ है और कुएँ के बगल में फुलवारी थी –हमारे पिताजी लगाया करते थे। गुलाब के खिले हुए फूल थे उस फुलवारी में। तो मैंने देखा कि पिताजी ने फावड़ा उठाया और उन गुलाब के पौधों को खोद-खोद कर उखाड़ना शुरू किया। मैंने पूछा, 'ये क्या कर रहे हैं? क्यों कर रहे हैं ?' उन्होंने बताया कि यहाँ आलू बोना है। पहली बार मुझे एक लेखक के रूप में एहसास हुआ कि चीजों को दिल्ली से मत देखो, कहीं और से मत देखो; बल्कि अपने पाँव से देखो, पाँव के नीचे की जमीन से देखो –वहाँ से देखो, जहाँ तुम्हारे पाँव अड़े हैं, जमे हैं यानी पैर के नीचे से देखो। जहाँ से मुझमें परिवर्तन आया उसकी बात कर रहा हूँ। आज भी ढेर सारे लोग जड़ों की बातें करते हैं कि जड़ों से कटा हुआ लेखन हो रहा है। तो पहला एहसास कि चीजों को वहाँ से देखो जहाँ तुम्हारे पाँव हों, पाँव के नीचे की जमीन हो। वहीं से अपने भीतर मैंने बदलाव महसूस किया। अब देखो क्या? और कैसे? हम देखते तो यथार्थ हैं। उस यथार्थ को कैसे देखो? कौन सा ठीक है? कौन सा बेठीक है? क्या अच्छा है? क्या बुरा है? क्या सुन्दर है? क्या कुरूप है? इसे कैसे देखो? और इसी क्रम में मैंने महसूस किया कि 'मार्क्सवाद' एक लेखक के लिए 'आँख' है। उससे वह चीजों को देख सकता है। कोई पार्टी नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काशीनाथ सिंह

1 जनवरी 1937 को जीयनपुर, वाराणसी में जन्म। **उपन्यास-** *'अपना मोर्चा', 'काशी का अस्सी', 'रेहन पर रग्घू' और 'महुआ चरित';* **कहानी संग्रह-** *'लोग बिस्तरों पर', 'सुबह का डर', 'कविता की नई तारीख', 'आदमीनामा', 'सदी का सबसे बड़ा आदमी', 'कल की फटेहाल कहानियाँ', 'कहनी उपखान';* **संस्मरण-** *'याद हो कि न याद हो', 'आछे दिन पाछे गए', 'घर का जोगी जोगड़ा';* **निबन्ध संकलन-** *'आलोचना भी रचना है';* **नाटक-** *'घोआस'।*

पुरस्कार/सम्मान : 'शरद जोशी सम्मान', 'साहित्य भूषण', 'कथा सम्मान', 'सृजन संवाद', 'साहित्य अकादमी सम्मान', 'रचना समग्र सम्मान' आदि से सम्मानित।

-न सी.पी.आई., न सी.पी.एम., न एम.एल.। बस एक दर्शन। 'दर्शन' का संबंध ही दृष्टि से है। तो लगा कि यह दर्शन मुझे एक 'आँख' मुहैया कराता है, एक समझ देता है, जिससे मैं समझ सकता हूँ कि क्या ठीक है, क्या ठीक नहीं है, क्या होना चाहिए, क्या नहीं होना चाहिए, क्या लिखना चाहिए, क्या नहीं लिखना चाहिए; यथार्थ में भी क्या। दुनिया भर की चीजें फैली हुई हैं, बिखरी हुई हैं। उस बिखराब के बीच कौन सी चीज है, जिस पर एक लेखक की नज़र टिकनी चाहिए?

और मैं निखालिस यथार्थ चित्रण को रचना नहीं मानता। कोई भी कहानी हो या उपन्यास - वह यथार्थ का अनुवाद नहीं है। यथार्थ का भाषान्तर या रूपान्तर नहीं है वह। जिस तरह से बढ़ई अपने अनुसार लकड़ी लेता है; उसे काटता है, छाँटता है और फिर उसी से नई चीजें तैयार करता है। उसी तरह हमारे पास 'कल्पना' नाम की एक चीज है। इसी की मदद से यथार्थ को नए सिरे से रचते हैं हम -उसका निर्माण करते हैं। हर लेखक ने किया है और महत्त्वपूर्ण लेखक भी करते हैं। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ; क्योंकि आज बहुत सारे लोग यथार्थ के नाम पर ज्यों का त्यों लिखते हुए चले जा रहे हैं -आखिर कोई चीज तो है, जो यथार्थ को रचना बनाती है? देखिए, रचना या साहित्य भी अन्य कलाओं की तरह एक कलारूप है, वैसे ही जैसे- गायन या संगीत, जैसे- पेंटिंग, जैसे- डिजाइनिंग, जैसे- ऐक्टिंग। जैसा कि गले से स्वर या आवाज भर निकाल देना संगीत नहीं है, या कागज पर रंग पोत देना पेंटिंग नहीं है, वैसे ही यथातथ्य कह देना, तथ्यों का वर्णन कर देना साहित्य नहीं है। अगर हम अपनी बातें सिर्फ लोगों को बताना नहीं चाहते, उन्हें उनके दिलों तक पहुँचाना चाहते हैं, तो उसका एक सलीका होता है, कहने का अंदाज़ होता है और यह 'कलावाद' नहीं है। जैसे- ग़ालिब का अपना 'अन्दाज़े बयाँ' है, वैसे ही हर शायर का, कवि का, कथाकार का अपना सलीका होता है और वही उसकी 'पहचान' है। मैं एक उदाहरण दूँ- अपनी नहीं, दूसरे की कहानी से- 'उसने कहा था' कहानी आप जानते हैं, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की लिखी हुई। घर से थोड़ी दूर गली से एक लड़का जाता है, एक लड़की आती है। दोनों एक दुकान पर मिलते हैं। लड़का दुकान से दही लेता है। लड़की भी कुछ लेती है और लड़का पूछता है कि 'तेरी कुड़माई हो गई?' लड़की 'धत्' कहकर भाग जाती है। एक दिन लड़का पूछता है, रोज की तरह, लड़की कहती है -'हाँ, देखते नहीं, यह रेशम से काढ़ा हुआ शालू?' और लड़की शर्माकर भाग गई। अब एक सामान्य सी बात है यह लिखना कि लड़का बड़ा दुखी हुआ और घर लौट आया, लेकिन गुलेरी जी ऐसा नहीं लिखते। क्रिएटिविटी कहाँ होती है हमारी नज़र उस ओर जानी चाहिए, वे लिखते हैं- 'लड़के ने घर की राह ली, एक कुत्ते पर पत्थर मारा, एक बुढ़िया से टकरा कर अंधे की उपाधि पाई, एक छाबड़ीवाले ने दिन भर की कमाई खोई...' और न जाने क्या-क्या किया तब कहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घर लौटा। यानी इस कदर घर लौट रहा है मानो उसे भारतीय भाषा परिषद से हावड़ा तक का रास्ता पैदल तय करना पड़ा हो, होश में न हो जैसे। रेशम का काढ़ा हुआ शालू देखने के बाद लड़के पर क्या गुज़रती है -ये है रचना। तथ्य कथन नहीं। यानी तथ्य या आवरण के भीतर छिपी सच्चाई या मर्म को व्यक्त करने के सलीके की खोज -यह है यथार्थ और कल्पना का सहमेल। चाहता ऐसा ही हूँ करना; कितना कर पाता हूँ, नहीं जानता।

और जैसा मैंने कहा कि एक दौर था जब मैंने - इन बातों को बताते हुए ध्यान आता है कि - कई कहानियाँ ऐसी भी लिखीं, जिन्हें कुछ लोगों ने पसंद किया, बाकी ने नहीं किया। पढ़ने की ज़रूरत ही नहीं समझी उन कहानियों को। जो मेरी विचार केन्द्रित कहानियाँ थीं - ये '70 से '80 के दौरान मैंने कुछ कहानियाँ लिखी थी जिनमें विचार ही ज्यादा थे और इस बात का पता चलता था कि 'मैं क्या सोच रहा हूँ'। यानी पाठ के भीतर खुद को डाल देता था मैं -तो लगा कि ये ठीक नहीं है। स्थिति ऐसी थी कि कहानियाँ उन दिनों मैं ही लिख रहा था, लेकिन हमेशा ऐसा लगता था कि अपनी ही कहानियों से बाहर छूटता जा रहा हूँ। यानी कहीं न कहीं अपने को सामने लाने की बेचैनी थी, खलबली थी कि भई, हमारी पहचान केवल हमारे कैरेक्टर से नहीं है- मैं भी हूँ। और इसी क्रम में मेरी नज़र गई संस्मरणों की तरफ। इतने वर्षों से यही लग रहा था कि बस दाएँ-बाएँ करता चला जा रहा हूँ, लेकिन पाठक नहीं बदल रहे हैं, लोग नहीं बदल रहे हैं। जब हमारी यह क्षमता न रह जाए कि लोगों को बदल सकें, तो कोशिश करें कि खुद को बदलें। शायद अपने को बदलने से इसका असर दूसरों पर पड़े और तब मैंने संस्मरण लिखना शुरू किया था। मेरा खयाल है '87-'88 के आस-पास। एक बात की हमेशा मुझे राहत रही कि मैंने लिखने के लिए कभी नहीं लिखा। मैंने तब लिखा, जब भीतर से दबाव महसूस किया और लगा कि चीजें नहीं बदल रही हैं और चीजें नहीं बदल रही हैं, तो अपने को देखूँ कि मुझमें कमी कहाँ है। आत्मालोचन या आत्मनिरीक्षण जिसे कहते हैं- तो अपने को निरन्तर तराशना और खुद के भीतर अपने को खोजना मैंने जारी रखा। हमेशा इस बात पर ध्यान देता था कि कहाँ कुछ छूट रहा है, उसे पकड़ा जाए। तो संस्मरण जब लिखा मैंने पाया कि पाठकों का वह दायरा, जो हमारी कहानियों के कारण सिमट-सा गया था, वह बढ़ रहा है अब। और जाहिर है मैंने संस्मरण लिखना शुरू किया, तो मेरे पास अपने सारे टूल्स थे, एक कथाकार के- किस्सागोई वगैरह। धीरे-धीरे ये समझ पैदा हुई कि कोशिश ये करनी चाहिए तुम्हें कि लिखो तो ऐसा न हो कि एक पैराग्राफ या एक पृष्ठ पढ़ने के बाद तुम्हें और पढ़ने की ज़रूरत ही महसूस न हो। मजबूर कर दो पाठक को कि वो छोड़ न सके तुम्हें। और ये तब संभव है जब आपकी भाषा में जान हो, ताकत हो। भाषा, पढ़ने वाले को भागने न दे - बाँध ले, रोक ले। जिंदगी से भरी हुई भाषा हो, शुष्क भाषा न हो। आलोचना में तो चल भी सकती है ऐसी भाषा पर रचना में इसकी कोई गुंजाइश नहीं; क्योंकि रचना का संबंध जीवन से होता है, सीधे। और मैंने देखा कि फर्क पड़ा लोगों पर। फर्क यूँ पड़ा कि जिस आदमी को लोग जानते नहीं थे, उसको जानने की उनमें दिलचस्पी पैदा हुई। नामवर के बारे में दिलचस्पी पैदा हुई - 'गरबीली गरीबी वह' पढ़ने के बाद। वो शुद्ध रूप से आलोचक थे, अध्यापक थे, लेकिन उनका अपना एक जीवन भी था और किन परिस्थितियों से निकले थे वो -नहीं जानते थे लोग। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी स्कॉलर थे, विद्वान थे, सब कुछ थे, लेकिन जब रेक्टर हो कर आए, तो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आचार्य द्विवेदी की छवि क्या थी? -यह नया परिचय था। त्रिलोचन इतने वर्षों से कविताएँ लिख रहे थे, लेकिन व्यक्ति रूप में त्रिलोचन में दिलचस्पी 'दंत कथाओं में त्रिलोचन' से पैदा हुई। और चूँकि ये आदमी कवि, लेखक ही नहीं थे, मनुष्य भी थे -साधारण परिवार के, खाते-पीते घर के, हमारे-आपके जैसे घर के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोग थे, तो कहीं न कहीं आम आदमी अपनी जिंदगी का सुख-दुःख, संघर्ष, पीड़ा, आनन्द सारा कुछ उनके माध्यम से देख लेता था। संस्मरणों का रूप क्या बदला इस बारे में हम बात नहीं करेंगे। इन्हीं संस्मरणों से होते हुए अचानक मेरे दिमाग में आया ये कि जब आदमी पर संस्मरण हो सकता है, तो स्थान पर भी संस्मरण हो सकता है भई। तो स्थान पर जब संस्मरण हो सकता है, तो ऐसे स्थान की तलाश मुझे थी, जो ग्लोबलाइजेशन के बाद के हिन्दुस्तान को रिलेक्ट करता हो, बताता हो कि यहाँ है देश। और वो जगह वहाँ मिली, जहाँ सत्ताईस साल मैं रह चुका था, लेकिन इस पर कभी मैं लिख सकता हूँ या लिखना चाहिए-मैंने कभी सोचा नहीं था। अस्सी! अस्सी मुहल्ला, अस्सी चौराहा, वहाँ की दुकानें। यही वह सेंटर था, जहाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से लोग आते थे; अध्यापक भी आते थे, छात्रनेता आते थे, विद्यार्थी आते थे। जहाँ कवि, लेखक, चित्रकार, संगीतकार आते थे। जहाँ रिक्शेवाले, दूधवाले और पत्रकार आदि -यानी समाज के किसी तबके का कोई आदमी ऐसा न था, जो वहाँ आता न हो, थोड़ी देर बैठता न हो और देश में जो हो रहा है -चाहे वह ग्लोबलाइजेशन हो, चाहे आरक्षण हो, चाहे सरकार का बदलना हो, चाहे बाबरी मस्जिद विध्वंस हो -जिनपर वो टिप्पणी न करता हो या लम्बी-चौड़ी बहसें न होती हों, गाली-गलौज न होती हो। वह (अस्सी) एक सेंटर था, जहाँ नगर, कस्बा, गाँव -तीनों मिलते थे। इधर ध्यान नहीं गया था लोगों का -मेरा खुद नहीं गया था। और इसी तरह से अस्सी से होते हुए मैं फिर अपने गाँव -पहाड़पुर पहुँचा, क्योंकि मोहल्ले में ग्लोबलाइजेशन किस शक्ल में आ रहा है यह मैं दिखा चुका था, लेकिन मुझे बार-बार लग रहा था कि एक परिवार बनता है मानवीय संवेदनाओं से -बाप-बेटे का रिश्ता, माँ-बेटी का रिश्ता, पति-पत्नी का रिश्ता -इस तरह इन सम्बन्धों के साथ ग्लोबलाइजेशन कैसा व्यवहार कर रहा है और रिश्ते कैसे बदल रहे हैं, ये दिखाना ज़रूरी लगा। भूमण्डलीकरण विस्थापन की जिंदगी दे रहा है। हमने खुद विस्थापन की जिंदगी जी है। गाँव का रहने वाला आदमी बनारस में आ कर रहता है। हमारा लड़का दिल्ली में जाकर बसा और उसका लड़का कल न्यूयार्क में जाकर बसेगा -ये ग्लोबलाइजेशन के बाद जो लगातार विस्थापन का सिलसिला चल रहा है इस देश में, हम भटकने के लिए बाध्य हो रहे हैं। ये तो रही अपनी बातें, अब ज़माने की...

और ज़माने की क्या कहें? पिछले बीस वर्षों में इतनी तेजी से बदला है ज़माना जिसकी हमने कल्पना नहीं की थी। प्रेमचन्द के समय हम आगे थे, ज़माना पीछे था, आज हालात उलट गए हैं। वह इतना आगे है कि हम भौंचक्क हैं। महानगरों की बात छोड़ें तो, बनारस में ही जितनी संख्या आदमियों की है, उससे कम कारों की नहीं है। मैं सब्जी मण्डी में ही हर ठेलेवाले, खोमचेवाले, बोरी ढोनेवाले, भूँजावाले को देखता हूँ। उनके घर में रोटी है या नहीं, लेकिन मोबाइल हर एक के हाथ में देखता हूँ। हमको भी आपसे मिलने की जरूरत नहीं, हमारे मोबाइल मिल लेते हैं – समझिए मुलाकात हो गई। इस वक्त रसखान की एक पंक्ति याद आ रही है और उसी के साथ अपनी बात खत्म कर रहा हूँ – पंक्ति है :

'मिलि आवो सखी सब भागि चलैं,
अब तो ब्रज में बँसुरी रहिहैं।'

काशीनाथ सिंह : बी-61, ब्रिज एनक्लेव कॉलोनी, सुन्दरपुर, वाराणसी-221005
मो. 09452826562

प्रस्तुति

अभिजीत : डी.ई.-2/ए, देशबंधु नगर, शाहापाड़ा, प्रान्तिक अपार्टमेण्ट, फ्लैट नं.5/5
कोलकाता-700059 मो.9831778147

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचनात्मक अंतरालों का अन्वेषक- रिल्के

राजी सेठ

एक अच्छी कविता लिखने के लिए तुम्हें बहुत से नगर और नागरिक और वस्तुएँ देखनी-जाननी चाहिए। बहुत से पशु और पक्षी... पक्षियों के उड़ने का ढब, नन्हें फूलों के किसी कोरे प्रातः में खिलने की मुद्रा, अज्ञात प्रदेशों... अनजानी सड़कों को पलटकर देखने का स्वाद। अप्रत्याशित-से मिलन। कब से प्रस्तावित बिछोह। बचपन के निपट अनजाने दिनों के अबूझ रहस्य। माता-पिता, जिन्हें आहत करना पड़ा था, क्योंकि उनके जुटाए सुख उस घड़ी आत्मसात नहीं हो पाए थे। आमूल बदल देने वाली छुटपन की रुग्णताएँ। खामोश कमरों में दुबके दिन। समुद्र की सुबह। समुद्र खुद। सब समुद्र। सितारों से होड़ लगाती यात्रा की गतिवान रातें। नहीं, इतना भर ही नहीं। उद्दाम रातों की नेहभरी स्मृतियाँ... प्रसव में छटपटाती औरत की चीखें। पीली रोशनी। निद्रा में उतरती सद्यःप्रसूता। मरणासन्न के सिरहाने ठिठके क्षण। मृतक के साथ खुली खिड़की वाले कमरे में गुजारी रात्रि और बाहर बिखरा शोर।

नहीं, इन सब यादों में तिर जाना काफी नहीं, तुम्हें और भी कुछ चाहिए- इस स्मृति-सम्पदा को भुला देने का बल। इनके लौटने को देखने का अनन्त धीरज।... जानते हुए कि इस बार जब वे आएँगी तो यादें नहीं होंगी। हमारे ही रक्त, मुद्रा और भाव में घुल चुकी अनाम थप-थप होगी। जो अचानक, अनूठे शब्दों में फूटकर किसी घड़ी बोल देना चाहेगी, अपने आप।

यह रिल्के हैं। इन पंक्तियों को जब पढ़ा था, तो यह बात ज्ञात नहीं थी कि इनका लेखक कौन है। किसी पत्रिका में छपे अँग्रेजी के एक लेख में एक उद्धरण की तरह ये पंक्तियाँ पढ़ने में आई थीं। पंक्तियों ने इतना उद्वेलित किया था कि लगभग अभिमंत्रित-सी स्थिति में मैंने इस अनुच्छेद का अनुवाद कर डाला। एक आंतरिक लय जैसी अनुवाद में स्वतः गुँथती चली गई थी। तब यह भी ज्ञात नहीं था कि यह किसी के एकमेव उपन्यास का कोई खण्ड है, कविता नहीं।

उसी समय याद आया -एक बार पहले भी ऐसे अनुभव से गुजरना हो चुका है। रिल्के के शब्दों की टंकार ऐसी ही प्रतिक्रिया जगा चुकी है। वर्षों पहले किसी यात्रा में सहयात्री द्वारा पढ़ी जाती गुजराती की एक पत्रिका और उस लेख में अँग्रेजी में उद्धृत ये पंक्तियाँ जिसका अर्थ कुछ-कुछ ऐसा था कि धीरे-धीरे डूब रहा हूँ अपने ही घाव में जो कभी नहीं भरते इसीलिए खड़ा रहता हूँ अपने ही रक्त में। रक्तस्नात यातना में...

पंक्तियों का क्रम याद नहीं, प्रतिक्रिया याद है। लगा था, संवेदन की सघनता ने आवेग को इतना प्रवाही

VAGARTH CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बना दिया है कि पाठक के मन में प्रवेश की सुविधा और आश्चर्य एक साथ संघट हो गए हैं।

दोनों उद्धरणों को साथ रख कर देखने में एक अजीब विरोधी-सी अनुभूति हुई थी। एक में अनुभव की समावेशिता का इतना निरंकुश आग्रह, दूसरे में अपने ही घावों में डूबे रहने की आत्मरत नियतिबद्ध पीड़ा। कौन सा रिल्के सच है?

तब इस बात पर ध्यान नहीं गया था कि पंक्तियाँ नहीं बाँध रहीं (क्योंकि पंक्तियाँ तो लेखक के पास अनन्त होती हैं और उनमें से 'कुछ' में सारा सत्व समाया नहीं होता), पंक्तियों के पीछे की उत्कटता बाँध रही है जो रिल्के के रचनाकर्म का अकाट्य यथार्थ है। उत्कटता रिल्के के लिए अनिवार्य है। वहीं उसकी सघनता का उत्ताल आयाम है। वह जब भी कुछ करने को उद्यत होता है, उसी मनाग्रता को छूने के लिए लपकता है जहाँ आवेग अपनी सृष्टि का पूरापन स्वयं रच सकें। अपनी ऊर्जा से उसका आदि-अन्त ढूँढ़ ले। उसका बहारी यथार्थ से कोई सम्बन्ध हो या न हो। शायद इसीलिए यथार्थ की वास्तविकता यहाँ अलग किस्म की है।

''अपने यथार्थ की विराटता का भी हमें ज्ञान होना चाहिए। अब तक की अजानी लगभग हर चीज को उस ज्ञान में शामिल होना चाहिए। अन्ततः तो हमें अपने भीतर इसी प्रकार के साहस की जरूरत है- अजनबी, असाधारण, अव्याख्येय अनुभवों का सामना करने का साहस। जीवन को समझने के लिए लोगों की बुज़दिली ज्यादा बाधक होती है।'' ('लेटर्स टु ए यंग पोएट' से उद्धृत)

रिल्के के आंतरिक रूझानों की बात तब ज्यादा स्पष्ट हुई जब गत वर्ष रिलके की एक छोटी-सी पुस्तक पढ़ने का अवसर मिला। पुस्तक का नाम था- लेटर्स टु ए यंग पोएट। इस पुस्तक ने रिल्के की संवेदना के चरित्र को अदबदाकर मेरे सम्मुख खोल दिया।

इस पुस्तक में रिल्के के 10 पत्र संकलित हैं, जो मिलिटरी अकादमी (जहाँ स्वयं रिल्के की दीक्षा हुई थी), में दीक्षारत एक युवक फ्रांज जेवियर काप्पुस को लिखे गए थे। वस्तुतः काप्पुस कवि बनने का आकांक्षी था और अपनी कविताओं पर कवि की राय जानना चाहता था। इस सन्दर्भ में उन दोनों के बीच चार वर्षों (1903-1908) तक का लम्बा पत्राचार चल निकला चाहे उन दोनों की भेंट कभी नहीं हो पाई।

यह बात उल्लेखनीय है कि तब रिल्के की आयु 27 वर्ष और काप्पुस की 22 वर्ष थी। उस आयु में जैसी तीव्र परिपक्व विराटोन्मुख तड़प के दर्शन हुए हैं, वह आसाधारण है। रचनात्मक साहित्य के प्रारूपों में जो समानुभूति रुक-रुक कर व्याख्या करते उद्घाटित होती है, वह यहाँ सीधे प्राप्त हो गई है। इसका एक कारण तो पत्र विधा की हार्दिकता और पाठक की उत्कंठा है दूसरा, इस पुस्तक में काप्पुस के पत्र शामिल नहीं हैं, अतः रिल्के की मानसिकता का शुद्ध रूप पाठक को उपलब्ध हो गया है। यह निर्बाध उद्वेलन उसके निहायत जटिल, दुरूह और उद्दीप्त रचनारूपों से अलग किस्म का नहीं है। इनसे गुजरते समय ऐसा लगता है कि किसी सन्दर्भ का सहारा पाते ही रिल्के अपने आप से बोलने लगते हैं, दिक्-कालों को सम्बोधित करने लगते हैं। प्रश्न का छोटापन उस सम्बोधन में पिचक कर रह जाता है। उत्प्रेरित रचना-रस की एक स्मृति चित्त में रह जाती है, जो अपनी उत्कटता के चलते पवित्र और खरा प्रभाव छोड़ती है।

इन पत्रों में भी रिल्के अपने ही रक्त की रिसती बावड़ी में खड़ा दिखाई देता है; चूँकि सृजनात्मकता का मुद्दा केन्द्र में है इसलिए वह उस आत्यांतिकता तक गया है-

''एक ही काम है जो तुम्हें करना चाहिए- अपने में लौट जाओ। उस केन्द्र को ढूँढ़ो जो तुम्हें लिखने का आदेश देता है। जानने की कोशिश करो कि क्या इस बाध्यता ने तुम्हारे भीतर अपनी जड़ें फैला ली हैं? अपने से पूछो कि यदि तुम्हें लिखने की मनाही हो जाए, तो क्या तुम जीवित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजी सेठ

1935 में नौशेहरा छावनी, पाकिस्तान में जन्म। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए.। 13 कहानी संग्रह और 2 उपन्यास प्रकाशित। साहित्यिक पत्रिका 'युगसाक्षी' लखनऊ का 1987 से आठ वर्षों तक सह-संपादन। अनंत गोपाल शेवड़े पुरस्कार, हिन्दी आकदमी सम्मान, भारतीय भाषा परिषद पुरस्कार, वाग्मणि सम्मान, रचना पुरस्कार, प्रथम टैगोर लिटरेरी अवार्ड से सम्मानित।

रहना चाहोगे?... ये सब बातें तुम अपने से पूछो रात के निचाट एकान्त में। पूछो कि क्या मुझे लिखना चाहिए?... अपने को टटोलो... इस गम्भीरतम ऊहापोह के अन्त में यदि साफ-सुथरी समर्थ 'हाँ' सुनने को मिले, तब तुम्हें अपने जीवन का निर्माण इस अनिवार्यता के मुताबिक करना चाहिए।''

या फिर

''प्रेम कविताएँ मत लिखो। उन सब कला-रूपों से बचो जो सामान्य और सरल है। उन्हें साध पाना कठिनतम काम है। वे सब व्यक्तिगत विवरण जिनमें श्रेष्ठ और भव्यतम परम्पराएँ समायी हैं, बहुत ऊँची और परिपक्व दर्जे की रचना क्षमता माँगते हैं...

या फिर

अगर अपना रोज का जीवन दरिद्र लगे तो जीवन को मत कोसो। अपने को कोसो। स्वीकारो कि तुम उतने अच्छे कवि नहीं हो पाए कि अपनी रिद्धियों-सिद्धियों का आह्वान कर सको। वस्तुतः रचयिता के लिए न दरिद्रता सच है, न ही कोई स्थान निस्संग। अगर तुम्हें जेल की पथरीली दीवारों के अन्दर रख दिया जाए, जो एकदम बहरी होती हैं और बाहर की एक फुसफुसाहट तक भीतर नहीं आने देती, तब भी तुम्हें कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। तुम्हारे पास तुम्हारा बचपन तो होगा... स्मृतियों की अमोल मंजूषा... एकान्त विस्तृत होकर एक ऐसा नीड़ बनाएगा, जहाँ तुम मंद रोशनी में भी रह सकोगे।''

यह सब कहकर रिल्के हर क्रिया के उद्‌गम की जाँच-पड़ताल और शुद्धता की बात करता है। लेखनकर्म से जुड़ी मंशाओं की आत्मालोचक चीरफाड़। यह निर्ममता रिल्के में खूब है। जो कुछ उसने इस पुस्तक के माध्यम से कहा है वह आज से पहले कभी इतना जरूरी नहीं लगा, क्योंकि छपने (सही तरीके से लिखने की नहीं) के माध्यम से यशःकाया होने की बुभुक्षा लेखकों की बड़ी जमात को ग्रस चुकी है। ऐसा लगता है इन पत्रों में रिल्के सृजनकर्म की आध्यात्मिक सरहदों को टटोल रहा है।

'आध्यात्मिक' शब्द का इस्तेमाल आज के बौद्धिक और समूह-सजग समाज में खतरे से खाली नहीं है। हाल ही में एक आलोचक ने साहित्य में आध्यात्मिकता की बात उठाकर सुधी जनसमूह को बर्रे के छत्ते की तरह छेड़ दिया था, पर आध्यात्मिकता भी और सब शब्दों की तरह एक शब्द है- एक निर्मूल्य वाहक। वह हर क्षेत्र को उपलब्ध है। उस की सन्दर्भवत्ता उसके इस्तेमाल में है। साहित्य में इस शब्द के इस्तेमाल से बनी लचीली विराट और निहायत निजी जमीन है। अतिक्रमण द्वारा जिस स्थूल और प्रकट सरहदों को हम लाँघने की बात करते हैं, वह आध्यात्मिकता है। जिस अनुमानीयता से लड़ते रह कर हम नये विधागत या भाषागत प्रयोगों में उतरते हैं, वह भी साहित्य की आध्यात्मिकता है। जिस विवेक से हम वाग्जाल में से वाङ्मय की तलाश करते हैं वह भी साहित्य की आध्यात्मिकता है। यह कोई धार्मिकता नहीं है कि धर्म-निरपेक्षता को परिभाषा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देने के लिए दूसरे छोर की तरह काम आए।

इस पहलू पर विचारणीय मात्र इतना है कि अदृश्य की परिसीमा को महसूस कर पाना क्या सृजनकर्म की अपनी ही कोई अवस्था है या लेखक के अपूर्व संवेदन का कोई असाधारण गुण? रिल्के को लेकर यह प्रश्न हमारे सम्मुख एकदम तीव्रतम हो जाता है।

एकान्त और विराटता रिल्के जैसे रचनाकार के लिए एक ही सीध में खड़े हैं। एकान्त नकारात्मक स्थिति नहीं, विराट और समावेशी आत्मसंसर्ग है। वह अकेलापन या निस्संगता भी नहीं, अपने चैतन्य का गहरा आभास है। अपनी पूर्णता को पाने के लिए अनुपस्थिति का विराट अनुभव।

''एकान्त को अपने भीतर जज्ब होनें दो फिर वह कभी तुम्हारे जीवन से लुप्त नहीं होगा। एक सतत् सुनिश्चित अन्तर्वाह की तरह तुम्हारे भीतर प्रवाहित रहेगा जैसे हमारे रक्त में घुलमिल चुका हमारे पुरखों का रक्त...''

रिल्के का एकान्त एक ऐसे निर्दोष, सक्रिय, शान्त असीम को पाने का है जहाँ उन चीजों का हस्तक्षेप न हो, जो बनते हुए विज़न को छेड़ सकें। उसकी हर चिन्ता, चिन्तन के दौरान दूर जाते हुए, उसी एक अनिवार्यता तक लौटती दिखती है। प्रेम की परिभाषा भी यहाँ इसी रूप में बनी है।

''जहाँ दोनों एकांत सुरक्षित रहते हुए भी एक-दूसरे का अभिनन्दन कर सकते हैं।''

शायद यही कारण रहा कि रिल्के का अपना सम्बन्धात्मक जीवन सदा तनाव में रहा। 1901 में शिल्पी क्लैरा से उसका विवाह दो वर्ष से अधिक नहीं चल पाया। एक निस्संग साधक और उत्कट प्रेमी उसके भीतर विरोधी स्थिति में मौजूद रहे। यों देखा जाए तो रचनाधर्मी के लिए यह प्रश्न आज भी उतना ही अनिर्णीत है।

इतने छोटे से कलेवर में इतनी सघन बातों का सन्दर्भ बार-बार इसी सत्य के निकट ले जाता है कि इन्हें लिखने वाला आत्मसम्बोधन की किसी हार्दिक स्थिति से गुजरता हुआ अपने कर्म की सत्ता और सार्थकता को तलाश रहा है। काप्पुस के पत्र भी उनमें संलग्न होते तो सम्भवतः इसके व्यावहारिक पक्ष पर प्रकाश पड़ता।

रिल्के के अवतरण को प्रकृति की एक अभूतपूर्व घटना की तरह ही मानना पड़ता है जैसा कि जर्मनी में माना जाता है। मात्र 51 वर्ष के जीवन में 30 कविता संग्रह, कहानियाँ, लेख, संस्मरण और एक उपन्यास की रचना। अवसादमय बचपन, आर्थिक कठिनाइयाँ। रोदां जैसे शिल्पी का सान्निध्य, रिश्तों और रचनाओं के बीच लहूलुहान जिन्दगी, उजाले की नोक की तरह जिन्दगी की हर सतह को छेदती रचना-शक्ति और असीम को मनुष्य की भाषा में स्पर्श कर लेने की उत्कटता के बीच रिल्के एक साथ कई जिन्दगियाँ जी रहे थे। एक बेचैन यायावर। जागरूक एकान्त की तलाश में कविताओं और यात्राओं के बीच डोलती जिन्दगी। नये भावबोध की खोज में वह अपने समय की मुख्य धाराओं से तटस्थ ही रहा और अनुभव के आंतरिक उत्कर्ष को पाने के लिए एक पीड़क उत्कटता में से गुजरता रहा। इसी उन्मेष में जगत प्रसिद्ध 'दुइनो शोकगीतों' की रचना हुई जिनका मर्म अभी तक अनुद्घाटित है और हर युग पर आकलन का दबाव डालता है।

एम-16, साकेत, नई दिल्ली-110017 फोन : 011-2956 2232/3256

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खून के महासमन्दर में खड़े तमस को चीरती तीन रौशन मीनारें

प्रकाश परिमल

'मेरा दागिस्तान' रसूल हमजातोव ने अगर सोवियत रूस के टुकड़े-टुकड़े हो जाने के बाद लिखी होती तो वह आधा गाँव जैसी कोई चीज होती! राही मासूम रजा ने अपनी रक्तवाहिकाओं से सींचा है, अपने गाँव, अपने लोगों और अपने ऊँघते शहर की वेदना में आकण्ठ डूबे गाजीपुर कस्बे के चित्र को। वे कहते हैं –

''कलकत्ता, बम्बई, कानपुर और ढाका इस शहर की हदें हैं। दूर तक फैली हुई हदें... यहाँ के रहने वाले यहाँ से जाकर भी यहीं के रहते हैं। गुब्बारे आकाश में चाहे कितनी दूर निकल जाएँ परन्तु अपने केन्द्र से उनका सम्बन्ध नहीं टूटता, जहाँ किसी बच्चे के हाथ में निर्बल धागे का एक सिरा होता है।''

''इधर कुछ दिनों से ऐसा हो गया है कि बहुत से बच्चों के हाथों से यह डोर टूट गयी है। यह कहानी सच पूछिए तो उन्हीं गुब्बारों की है या शायद उन बच्चों की है जिनके हाथों में मरी हुई डोर का एक सिरा है और जो अपने गुब्बारों की तलाश कर रहे हैं और जिन्हें यह नहीं मालूम कि डोर टूट जाने पर उन गुब्बारों का अंजाम क्या हुआ।'' (पृष्ठ 10, ऊँघता शहर-आधा गाँव।)

इस तरह गाजीपुर कस्बे की भौगोलिक सच्चाइयों में क्रमशः सीजती एक बालक की घनीभूत संवेदनाएँ विकास पाकर एक ऐसे देश की भावभूमि की तलाश करने लग जाती हैं जहाँ जाति-बिरादरी, धर्म-मजहब की दीवारें नहीं हैं, और अगर हैं भी तो सिर्फ एक झूठे-सच की शक्ल भर में। कथानायक कहता है :-

''... यह कहानी न कुछ लोगों की है और न कुछ परिवारों की। यह उस गाँव की कहानी भी नहीं है जिसमें इस कहानी के भले-बुरे पात्र अपने आपको पूर्ण बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह कहानी न धार्मिक है, न राजनीतिक, क्योंकि समय न धार्मिक होता है, न राजनीतिक... और यह कहानी है समय की ही। यह गंगोली में गुजरने वाले समय की कहानी है। कई बूढ़े मर गए, कई जवान बूढ़े हो गए, कई बच्चे जवान हो गए और कई बच्चे पैदा हो गए। यह उम्रों के इस हेरफेर में फँसे हुए सपनों और हौसलों की कहानी है। यह कहानी है, उन खण्डहरों की, जहाँ कभी मकान थे, और यह कहानी है उन मकानों की जो खण्डहरों पर बनाए गए हैं।''

''और यह कहानी जितनी सच्ची है, उतनी ही झूठी भी।'' (पृष्ठ 11-92)

यशपाल ने पार्टीशन के मरहले पर जब अपना उपन्यास 'झूठा-सच' लिखा तो उस किताब के शुरुआती एक पन्ने में उन्होंने लिखा था :- *सच को कल्पना से रँगकर उसी जनसमुदाय को सौंप रहा हूँ जो सदा झूठ से ठगा जाकर भी सच के लिए अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढ़ने का*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहस नहीं छोड़ता।

–यशपाल

देश के विभाजन को सही न मानने वालों पर यशपाल के 'झूठा-सच' का गहरा प्रभाव रहा और इस प्रभाव के चलते ही, सही मासूम रजा का 'आधा-गाँव' और भीष्म साहनी का 'तमस' तथा शानी का 'काला जल' जैसी बड़ी सोच की कृतियाँ प्रकाश में आईं। इन सभी रचनाओं में अपने पहले वाली रचना का कितना प्रभाव प्रत्यक्ष-परोक्ष में रहा होगा, यह कहना मुश्किल है पर यह भी झूठे सच की तरह सही है।

प्रेमचन्द, सुदर्शन और जैनेन्द्र के बाद हिन्दी उपन्यास के विकास की सुध ली जाय तो लगेगा कि देश के तीन टुकड़े होकर मिली आजादी और उसके साथ ही बड़े पैमाने पर हुए खून-खराबे और साम्प्रदायिक वैमनस्य का पैदा हुआ माहौल कितना खौफनाक रहा होगा, इसकी आज तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। 'झूठा सच' में अपने लोगों का पता लगाने की चिन्ता में, सूद जी की मदद से जब जयदेवपुरी एक स्टेशन वैगन में अमृतसर जा रहा होता है तो वह देखता है :

''अमृतसर की ओर से शरणार्थियों से भरी बसें और ट्रक अनवरत चले जा रहे थे। लाहौर की ओर पुलिस से सुरक्षित बसें और अत्यन्त दयनीय अवस्था में अपनी गठरी, मुठों में लदे मुसलमानों के पैदल काफिले जा रहे थे। गाड़ी के लिए मोटर की साधारण चाल से चल सकना सम्भव ही न था। सड़क के दोनों ओर टूटी हुई बैलगाड़ियाँ, जली हुई बसें और ट्रक, टूटे हुए बक्शे, टूटे हुए ताँगे, टमटम- लाशों के ढेर या कहीं एक-दो लाशें और मनुष्य के शरीर के छिन्न-भिन्न अंग, जहाँ-तहाँ दिखाई दे जाते थे।''

''पिछले दो दिनों में पुरी के इधर-उधर घूमने पर तीन-चार पुराने परिचित मिल गये। उनमें एक था मेहरचन्द, उसके घर की सब सम्पत्ति और सब स्त्रियाँ भी छीन ली गयी थीं। मुल्तान जेल के दूसरे साथी टेक सिंह ने अपने परिवार और मुहल्ले पर हुए अत्याचार सुनाए तो पुरी का खून खौल उठा था। एक रूढ़सिंह था जिसका सब कुछ लुट चुका था - वह वापस लौट जाने की जिद में था। वह बदले में दस को मारकर मर जाना चाहता था।... अब पुरी यहाँ भी सड़क के दोनों ओर बिखरी लाशों को जिनमें नंगी स्त्रियों की अपमानित लाशें, उनके कटे-टूटे अंग देख रहा था। काफिले में जाते हिन्दू-मुसलमानों का मनुष्यत्व ही समाप्त हो गया था।''

''धरती पर एक लकीर बना दी गयी थी। लकीर के दूसरी तरफ वही वहशीपना जारी था। पुरी यह सोचकर सिहर उठता था... कि उसके परिवार की क्या दशा हुई होगी।''

(झूठा-सच, पृष्ठ)

क्या इस आँखों देखे सच्चे विवरण में आपको सहादत हसन मण्टो की कहानी- 'टोबा टेक सिंह' याद नहीं आ जाती? सियासतदानों द्वारा धरती पर क्या एक लकीर खींच देने से एक रात में ही इधर का इलाका हिन्दुस्तान और उधर का इलाका पाकिस्तान हो जाता है, क्या सिर्फ इस लकीर के खिंच जाने भर से कल तक भाई-भाई रहे, हिन्दु-मुसलमानों के दिलों के भी टुकड़े हो सकते हैं? कोई

प्रकाश परिमल

26 नवम्बर, 1936 को बीकानेर में जन्म। राजस्थान विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में एम.ए.।

प्रकाशित ग्रंथ : छूटी हुई एक स्मृतिगंध (काव्य); फिर उपस्थित रंग (काव्य); लोकसंस्कृति रूप और दर्शन; भारतीय संस्कृति की रूपरेखा; आळेखाण (राजस्थानी कविताएँ); अनीता (उपन्यास); Avant Garde Artists of Rajasthan, पत्र-पत्रिकाओं में 200 से अधिक रचनाएँ प्रकाशित।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और चाहे कुछ भी मान ले, पर टोबा टेक सिंह का जमीर यह मानने को ही तैयार नहीं होता और वह अपना मानसिक संतुलन खो देता है – पागलों की तरह सिर्फ इस लाइन के इर्द–गिर्द घूमकर 'वाहे गुरु दी फतह, गुड–गुड दी फतह' और भी पता नहीं क्या–क्या बड़बड़ाता रहता है, पर वह पगलाया टोबा क्या हमें, हजारों लाखों इधर–उधर के सयानों से ज्यादा सयाना और अपना नहीं लगता? वहशीपन के विरुद्ध इसी सयानेपन के दृष्टान्त आजादी के बाद के लिखे जाने वाले लिटरेचर में उस समय तक बरकरार रखने होंगे जब तक साम्प्रदायिकता के विष–बीज नए–नए चेहरे लेकर हमारी धरती पर जहरीली बेल बनकर बढ़ते जा रहे होंगे। हमें उन पाठों को भी लगातार हमारी याददाश्तों में जीवित रखना होगा जो इस वहशीपन के खिलाफ टोबा टेक सिंह, सूदजी, पुरी जयदेव और अधूरे गाँव के बालक से युवा होते नायक के रूप में सच्चे सच के रूप में टँक गये हैं।

''गंगा इस नगर के सिर पर और गालों पर हाथ फेरती रहती है, जैसे कोई माँ अपने बीमार बच्चे को प्यार कर रही हो, परन्तु जब इस प्यार की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, तो गंगा बिलख- बिलखकर रोने लगती है और यह नगर उसके आँसुओं में डूब जाता है। लोग कहते हैं कि बाढ़ आ गयी। मुसलमान अजान देने लगते हैं। हिन्दू गंगा पर चढ़ावे चढ़ाने लगते हैं कि रूठी हुई गंगा मैया मान जाय। अपने प्यार की इस हतक पर गंगा झल्ला जाती है और किले की दीवार से अपना सर टकराने लगती है और उसके उजले सफेद बाल उलझकर दूर–दूर तक फैल जाते हैं। हम उन्हें झाग कहते हैं। गंगा जब यह देखती है कि उसके दुःख को कोई नहीं समझता, तो वह आँसू पोंछ डालती है; तब हम कहते हैं कि पानी उतर गया। मुसलमान कहते हैं कि अजान का वार खाली नहीं जाता, हिन्दू कहते हैं कि गंगा ने उनकी भेंट स्वीकार कर ली।...

(ऊँघता शहर आधा गाँव, पृष्ठ 90–99)

एक और ऐसा ही पाठ–

''कहते हैं कि आषाढ़ की एक काली रात में तुगलक के एक सरदार सय्यद मसऊद गाजी ने बाढ़ पर आयी गंगा को पार करके गादिपुरी पर हमला किया। चुनांचे यह शहर गादिपुरी से गाजीपुर हो गया। रास्ते वही रहे, गलियाँ भी वही रही, मकान भी वही रहे, नाम बदल गया। नाम शायद एक ऊपरी खोल होता है जिसे बदला जा सकता है।... ये नाम हैं बड़े दिलचस्प। अरबी का 'फतह', हिन्दी में 'गढ़' में घुलकर एक इकाई बन जाता है (फतहगढ़)। इसलिए तो पाकिस्तान बन जाने के बाद भी पाकिस्तान की हकीकत मेरी समझ में नहीं आती। (पृष्ठ 12–आधा गाँव)

पर तमस के इस पाठ में तो हमारी जान गले में अटक जाती है। कितने भीषण और लाइलाज संकट में आ पड़ी है, मानवता पर विश्वास करने वाली– रब पर आस्था रखने वाली, हरनाम सिंह के भोले-भाले घर की यह छोटी सी इकाई- हिन्दू–मुस्लिम बलवाइयों की बदहवास और उन्मत्त दरिन्दगी के आगे। हरनाम सिंह न चाहते हुए भी अपनी दुकान छोड़कर अपनी पत्नी के साथ बच निकलने की तैयारी में हैं, उस घर में उन्होंने मैना भी पाल रखी है, इस माहौल में उसे कहाँ ले जाएँगे- उसे पिंजरा खोलकर उड़ा ही क्यों न दे? सभी के अस्तित्व पर गहरे मंडरा रहे इस संकट का 'तमस' का यह पाठ क्या कोई भूल सकेगा?

''तभी हरनाम सिंह की नज़र कोठरी की छत से लटकते मैना के पिंजरे पर पड़ी।''

'बन्तो, पिंजरा कोठरी के पीछे ले जा और उसे खोलकर मैना को उड़ा दे।''

कुछ ही देर पहले बन्तो ने मैना के पिंजरे में रखीं कटोरियों में पानी और दाना डाल दिया था। अतः जब वह पिंजरे को उतारकर बाहर ले चली तो मैना ने रोज की रटी रटायी गरदान बोल दी, 'बन्तो, रब्ब राखा, सरबद्ध दा रब्ब राखा।' सुनते ही बन्तो का गला भर आया और जवाब में बन्तो भी बुदबुदा दी, 'हाँ, मैना रब्ब राखा, सरबद्ध दा रब्ब राखा'। ये शब्द मैना ने हरनाम सिंह से सीख लिए थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अक्सर हरनाम सिंह दुकान के [illegible] पर बैठा होता और उसकी पत्नी पीछे कोठरी में बैठी होती और जब दुकान पर कोई ग्राहक नहीं होता तो हरनाम सिंह अन्दर बैठा बन्तो के साथ गुरुवाणी और धर्म की बातें किया करता था, तभी उठते-बैठते वह कहा करता था, 'रब्ब राखा, सरबद्ध दा रब्ब राखा।' और मैना इन शब्दों को घर में दोहराने लगी थी।

''मैना के मुँह से ये शब्द सुनकर बन्तो को बड़ी ताकत मिली। उसमें साहस और स्थिरता आ गई। मानों नन्हा सा पक्षी उन्हें सीख दे रहा था।''

पिछवाड़े जमीन के छोटे से टुकड़े में हरनाम सिंह ने सब्जी रोप दी थी, एक आम का पेड़ उगा रखा था। आँगन के बीचोंबीच पहुँचकर बन्तो ने पिंजरे का दरवाजा खोल दिया और धीमे से बोली,

''जा मैना, तेरा रब्ब राखा, सरबद्ध दा रब्ब राखा।''

पर मैना ज्यों की त्यों पिंजरे में बैठी रही।

''उड़ जा, उड़ा जा मैना, उड़ जा माँ सदके।''

और बन्तो का कहते-कहते फिर गला भर आया और वह पिंजरे को वहीं जमीन पर छोड़कर लौट आई।

''... उधर जब हरनाम सिंह और उसकी पत्नी नाले की ओर उतर रहे थे तब ऊपर कहीं से झीणी सी आवाज आयी-

''बन्तो तेरा रब्ब राखा... सर्बद्ध दा रब्ब राखा।''

''मैना उन्हीं के पीछे उड़कर चली आई थी और पेड़ पर बैठ गयी थी।''

(भीष्म साहनी-तमस पृष्ठ)

ये कुछ ऐसे पाठ हैं, जो समयावधि में 1947 से लेकर 1972 तक फैले हैं, पर ये साम्प्रदायिक उन्माद और वहशीपन के 'तमस' को चीर कर हर दिल में, मानवता का उल्लास भर देने वाले हैं, इन पाठों की [illegible] कभी नहीं रहेगी। जब जब मानवता की हानि होगी, तब तब ये पंक्तियाँ दरिन्दगी से पीड़ित प्रभावित लोगों के बीच उजली किरण की तरह अवतरित होंगी।

पर हिन्दी की समालोचना की पूर्वाग्रहित नजर इन पाठों की तरफ नहीं गयी- वह अपनी प्रभुता की रोटी, कभी एक किताब को पछाड़ कर तो कभी नकारा किताब को गद्दी-नशीन कर सेंकती रही है। साहित्य में संवेदना के प्रभाव को सम्प्रेषित करने की ऐसी अन्तर्निहित क्षमता है, वह समालोचकों के दिखाए जाने पर 80 प्रतिशत निर्भर हैं, सामान्य और प्रबुद्ध पाठक तो उसे अपने स्तर पर ग्रहण करता ही रहता है फिर इस साहित्य के अन्तर्निहित मोटो को समय रहते लोगों तक पहुँचाने की अपनी जिम्मेदारी से आप इम कब तक किनारा करते रहेंगे। आखिर कब तक?

और यह पाठ-

सितारा को पाकिस्तान के बनने या न बनने में कोई दिलचस्पी न थी, वह तो बस अब्बास की आवाज सुना करती थी। तले जाते हुए अंडे की सौंधी महक की तरह अब्बास की आवाज सितारा पर छा जाया करती थी। मगर पाकिस्तान का नाम उसे जरूर याद हो गया और उसे यह भी यकीन हो गया कि पाकिस्तान जरूर कोई अच्छी चीज है। इसीलिए जब मोहर्रम में दक्खिन पट्टी के दोनों फाटक आवाजों से छलकने लगते और वही अब्बास वाले तमाम नाम हिर-फिर कर जबानों पर आते तो कभी-कभार सितारा दरवाजे की ओट में खड़ी हो जाती और यह सुनकर बड़ा आश्चर्य होता कि वजीर मियां के अलावा दक्खिन पट्टी का कोई आदमी पाकिस्तान को अच्छा नहीं कहता। (उद्गम-पृष्ठ, आधा गाँव)

202, पद्मावती कॉलोनी, गली नं.4, किंगस् रोड, अजमेर मार्ग, जयपुर
मो.09460407928

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

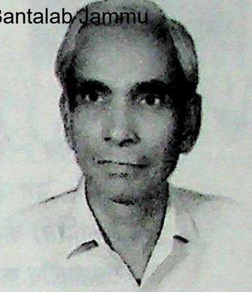

शिवकुटी लाल वर्मा

वरिष्ठ कवि। प्रकाशित रचनाएँ :
नसीब लोक तंत्र का, संवेदना के
सीमान्तों में।

अब चलता हूँ

सूख गए पात पात
छूट गए साथ
छूट गई बात
चलता हूँ बंधु अब
चलता हूँ
गुज़र गई रात
छूट गए पंथ-गीत
छूट गए जीत मात
चलता हूँ बंधु
अब चलता हूँ
कहाँ गई वह डगर
जानी पहचानी सी
खिले-खिले फूलों सी
कजरी के झूलों सी
गड़ती हैं शूलों सी
हँसी की ठिठोली की बात
ठहर नहीं पाऊँगा
कहर कहीं बरपा हो
झेल नहीं पाऊँगा
अनुमति दो जाने की
बातें पुरानी हैं
रूठने मनाने की
कुछ थी सहूलियत नाचने नचाने की
मंचों से जाने की
घर से अब बेघर को
दो अनुमति जाने की
चलता हूँ बंधु
अब चलता हूँ।

बाण बना दे

प्रभु तू मुझको अग्नि-पुरुष का बाण बना दे
चक्रवात बन जाऊँ धरा का
इसका भी कुछ ज्ञान करा दे
इन्द्रधनुष मुझको न चाहिए
धन यश गरिमा नहीं चाहिए
क्रान्ति तड़ित चमका दे।
अग्नि-पुरुष का बाण बना दे।

एक मुक्तक

चिटका हुआ घड़ा है कभी भर सकेगा क्या
रिसता हुआ नासूर कभी भर सकेगा क्या
वीरान घर का ढूह कभी भर सकेगा क्या
सुनसान सा इक चश्म कभी झर सकेगा क्या।

158 आर, पो.राजरूपपुर, ओमप्रकाश सभासद नगर, इलाहाबाद-211011
मो. 09305102933

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रयाग शुक्ल

28 मई 1940 को कोलकाता में जन्म।
'कविता संभव', 'यह एक दिन है', 'रात का पेड़', 'अधूरी चीज़ें तमाम', 'यह जो हरा है' 'सुनयना फिर यह न कहना' पुस्तकें प्रकाशित। कल्पना, दिनमान, नवभारत टाइम्स, रंगप्रसंग एवं समकालीन कला के सम्पादकीय विभाग से जुड़े रहे। द्विजदेव सम्मान सहित अनेक प्रतिष्ठित सम्मान और पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति 'संगना' के सम्पादक।

मिलन व्यथा कथा

सर्र से बाहर आता है कोई लिफ्ट से कोई एक और लिफ्ट की प्रतीक्षा में रह जाता भीतर। चढ़ता जाता ऊपर। बगल के गुजरते किसी वाहन से बस टैक्सी ट्राम कार से झलक कर कोई चेहरा हो जाता ओझल। ट्रेन की खिड़की से दूर चली जाती कोई साइकिल पगडंडी पर। खेत की मेड़ का कोई वृक्ष पत्ते हिलाता। कई मंजिलों वाली इमारत से किसी दूसरी इमारत में खिड़की या बालकनी में आकर फिर कहीं चला जाता भीतर कोई मुख। बाजार हाट होटल रेस्तराँ में बिना देखे एक-दूसरे को गुजर जाते लोग। लोग हवाई अड्डे प्लेटफॉर्म पर बहुत पास सोये अधसोये होकर भी बेसुध बेखबर रहते बाँह भर की दूरी पर सीढ़ियों एस्कैलेटरों पर पाँव लगभग अनजान एक दूसरे से।

मिलने बिछुड़ने के अनेक पड़ावों से गुजर कर जब दो जन मिलते हैं देश या विदेश में अपरिचय को तब्दील करते परिचय में लेकर आये होते हैं सैकड़ों दृश्य जो बसे होते हैं कहीं उनके भीतर गुजर कर आये कितने ही बाज़ारों कस्बों से खेतों पहाड़ों नदियों समुद्रों से दिनों रातों से आकाश के कई-कई रंगों से वन वनस्पतियों से बिजुरियों आँधियों से पक्षी उड़ानों से पशु-गतियों से किलों दुकानों से। मिलने बिछुड़ने का अनवरत सिलसिला दो जनों के मिलने-बिछुड़ने के कारण कभी होता नहीं अकेला तो भी रहती है विरह व्यथा/बिछुड़न मिलन कथा सबकी अपनी अपनी हर मिलन कथा में।

प्रिय एकांत जी,

जैसी कि आपसे फोन पर चर्चा हुई थी अपनी तीन गद्य कविताएँ 'वागर्थ' के लिए भेज रहा हूँ। इनके लिखे जाने की शुरुआत अचानक हुई। और मैंने पाया कि कई भाव-अनुभाव-प्रतीतियाँ-अनुभव इसी 'विधि' में आना चाह रहे हैं, अपने सी एक प्रवाह में। आप जानते ही हैं ऐसी किसी शृंखला या विधि को एक विराम लगता ही है। वह लगेगा। पर, जो दस-पन्द्रह चीज़ें निकली हैं, वे पत्र-पत्रिकाओं में भेजनी शुरू की है-सुधी पाठकों से साझा करने के लिए। तीन कविताएँ 'वागर्थ' के लिए भेज रहा हूँ। उम्मीद है पसन्द आएँगी।

आपका
प्रयाग शुक्ल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

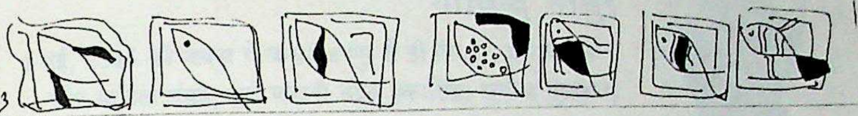

जब दिखती है मोह लेती है

जिसे देखा है छूकर बैठकर चलकर जिस पर देखीं तितलियाँ चिड़ियाँ सूर्य किरणें पानी पर जब जा रही होती है सिझाई वह और पानी उस पर चलता हुआ आता है ऐसे जैसे उसके पास शब्द हों कुछ मीठे से गुनगुनाने की घास के कानों में। एक दुर्लभ तरलता जहाँ रंगहीन पानी भी तब्दील हो जाता हो मानों हरे में। देखी हैं उस पर झरती हुईं वर्षा की बूँदें। देखा यह भी जैसे दूर से ही वह करती हो मनाही अपने कोमल हरे संकेतों से कोई न आये पास उसके आये भी तो दबे पाँव आये इस तरह जैसे आती है धूप या चिड़िया की परछाईं उससे कुछ कहने सुनने को नि:शब्द। वह छुई जाये बस आँखों से उसके पास बैठकर उसे निहारने का जो सुख है वह है सचमुच वर्णनातीत। केवल हरी नहीं कभी-कभी सुनहरी हरी-भूरी ललछौंह हो जाती वह। इंच दो इंच की उसकी ऊँचाई हो या इतनी ऊँची भी कि ढक ले दृश्य पीछे का घास जब दिखती है वह मोह लेती है। कम नहीं उसकी सुवास भी कम नहीं किसी फूल से। और फूल भी उसमें उग ही आते हैं। छायाओं को जितना पहचानती वह भला और कोई पहचानता। प्रहरों को प्रात: या संध्या मध्यान्ह के भिन्न-भिन्न प्रहरों को करुणा से धीरज से प्रेम से तकती वह। हवा जब गुजरती है प्रेम से चिपटा ही लेती उसे छाती से। तपती वह। ठंड से सिहरती वह धारण कर ओस-बिंदु खुद भी दमकती वह। अनायास घास दृष्टि अपनी घुमाती है उस ओर कोई जब बिना लिये विदा उठ जाता पास से। पसन्द यही उसे जब कोई जाये तो देखे उसकी ओर पलट कर सिर्फ़ इसीलिए नहीं कि कुछ छोड़े तो नहीं जा रहा घड़ी रुमाल मोबाइल, देखे उसे इस तरह कि उसके तिनकों का संसार बसा है उसकी आँखों में, फिर फिर लौट आने का भीतर एक आश्वासन देता हुआ अपने को घास को।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

झर झर झरता वह बहता

वह जल विकराल समुद्र ज्वार चंचल गति नदियाँ वे लहरें लहरियाँ वह वर्षा जल दूर से चमकता सूर्य किरणों में वह अँजुरी में वह प्रपात झरने में झर झर झरता वह बहता वह तय करता रास्ता तोड़ हटा पत्थर वह रेत में समाया। वह धरती के नीचे वह मेड़ खेत सरसाता आता वह ठहरा वह नावें लहराता वह पाल फहराता वह बहा चला आता वह अनायास मिलता वह दूर कहीं रस्ता वह मरुथल तरसाता। वह तट से टकराता। वह आँखों में आता वह सुख-दुःख बताता वह नीर वह पयोधि वह नील वनराजि के। पानी वह बाढ़ का उद्दाम अर्राकर आता। वह माटी मरुकाता। वह अपने ही कितने भी रूपों को सजाकर सँवार कर रहता छितराता वह फिर से सज जाता। वह दर्पण एक अपना बनाता। वह जल कठोर निर्मल वह बर्फ़ बन जाता वह कंठ को बिगोता वह चोंच में उतरता वह लहरों में रह रह उछलता वह रुकता वह चलता। वह स्मृति में अटका वह राह छोड़ भटका वह जड़ों में निचुड़ता वह कहीं पर बिछुड़ता वह देह से लिपटता। वह घट पनघट नदी तीर मेला लगाता। वह काला वह नीला वह रंगहीन बुदबुद वह कभी बुदबुदाकर वह कभी चिल्लाकर कुछ कहता वह गर्जन वह तर्जन वह बादल वह बिजली वह संग वह अकेला वह कौंधा वह सोया वह जागा वह खोया वह धीरे से किसी सुर शब्द-सा पास चला आया। वह अद्भुत। वह अद्भुत वह किसी छाँह छाया में डोलता। तपता वह खुले में जल वह जल वह जीवन की यात्रा में कम या अधिक मात्रा में साथ-साथ रमता चला आया... वह सावधान करता वह पीछे को हटता वह कितने ही मर्मों को कितने ही तटों तक खींचकर लाता... वह कितनी स्मृतियों के पुलों बीच बहता वह देश-देश जल वह सदा जल-सा ही आया। वह कभी किसी स्मृति की चंचल लहरियाँ बन बड़ी देर ठहरा वह जल वह लहराया...।

एच-416, पार्श्वनाथ प्रेस्टीज, सेक्टर 93ए, नोएडा-201304
मो. 09810973590

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोविन्द माथुर

4 मई, 1945 को जयपुर में जन्म। जयपुर से ही एम.ए., एल.एल.बी.। पाँच कविता संग्रह, एक कहानी संग्रह प्रकाशित। सुधीन्द्र पुरस्कार, आचार्य निरंजननाथ सम्मान, सोमदत्त सम्मान, सर्जनात्मक पुरस्कार, प्रकाश जैन सम्मान आदि से सम्मानित। सम्प्रति लेखन एवं स्वतंत्र पत्रकारिता।

कौवे : तीन कविताएँ

(एक)

इन दिनों शहर से
कहीं बहुत दूर
निकल गए हैं कौवे
अब किसी घर की
मुंडेर पर नहीं सुनाई देती
काँव... काँव...

कौवे की काँव काँव
सन्देशा लाती थी
विरहणियों के लिए
मेरे मुंडेरे कागा बोले
कोई आ रहा...

पिया का सन्देशा लाने पर
कौवे को लालच देती थीं
सोने की चोंच मढ़ाने का

विरहणियाँ कौवे से
व्यक्त करती थीं व्यथा
कागा सब तन खाइयो
चुन चुन खाइयो मांस
दो नैना मत खाइयो
पिया मिलन की आस

कौवे विरहणियों की
व्यथा से व्यापित
मुंडेर से उड़ कर
चले जाते थे सन्देशा लाने।

(दो)

कौवे की कर्कश आवाज
बदसूरत रूप रंग भी
मोहक लगता था बच्चों को

कौवे जब छीन कर
ले जाते थे बच्चों के
हाथ से रोटी, तो बुरा लगता था

कौवे की चतुराई से
चकित थे बच्चे
कौवे की बुद्धिमता की
कहानी पढ़ कर
किस तरह बर्तन के
पैंदे में पड़े पानी को
कंकड़ डाल-डाल कर
सतह पर ले आया था
प्यासा कौवा

पौराणिक पक्षी कौवे की
काग दृष्टि के कायल थे सभी
कौवे की काँव-काँव से
परेशान होने के बावजूद
कौवे का बोलना
अपशगुन का सूचक नहीं था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(तीन)

पता नहीं शहर से
दूर क्यों चले गए कौवे
अब सिर्फ श्मशान में
दिखाई देते हैं कौवे

एक दिन किसी निकट के
रिश्तेदार की मृत्यु के बाद
तीए की क्रिया हेतु गया था श्मशान

पंडित जी ने
राख के ढेर से हड्डियाँ चुनने के बाद
आग जला कर टिकटी के ऊपर
चावल से भरा मिट्टी का कलश
रखा था चावल पकाने के लिए

पके हुए चावल एक दौने में
कलश के मुँह पर रख कर
हम प्रतीक्षा कर रहे थे
कौवे के आने की

दूर दूर तक कहीं नहीं थे कौवे
पंडित जी के आह्वान करने पर
दस-पन्द्रह मिनट बाद
कहीं से उड़ कर आए तीन-चार कौवे

ठिठकते हुए कलश पर बैठ कर
चोंच में चावल दबा कर
उड़ गए कौवे
तीए की क्रिया पूरी हो गई

मृतात्मा के परलोक में
पहुँच जाने का संकेत
दे गए थे कौवे

मैं सोच रहा था
कितना जरूरी है
हमारे जीवन में
कौवे का होना

अब जबकि
शहर से बहुत दूर
चले गए हैं
कितने दिन नजर आएँगें
श्मशान में कौवे

श्मशान शहर के बीच
आ गया है
कौवे चले गए हैं
शहर से दूर।

'क्षितिज', 82/115, नीलगिरी मार्ग,
मानसरोवर, जयपुर-302020
मो. 09828885028

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नरेश चंद्रकर

जीवन की सिम्त

रातभर भीगे हुए कपड़े
मूँग मोठ दालें राजमा चना
पानी पीते हुए दिखते हैं चुपचाप

यह कहने से हँसते हैं लोग

लोग कवि शमशेर की इस पंक्ति पर भी हँसते हैं :

शिला का खून पीती थी वह (जड़)

हँसते हैं लोग इस बात पर भी :

बीमार है नारंगी उन्हीं वजहों से
जिन वजहों से बीमार पड़ता है आदमी

सूख जाता है कटहल उन्हीं वजहों से
जिन वजहों से सूखता है कंठ

लोग हँसते हैं इस बात पर भी :

जिन अलगावों से टूट कर गिरता है फूल
उन्हीं अलगावों से टूटती हैं स्त्रियाँ
अपने ही घर में

पर, लोग हँसते हैं

जीवन की हर सिम्त पर।

बातचीत

कोने में हृदय के
प्रकाश के गोल-गोल घेरे-सा

वह जो दाग-भर था अँधेरा

वह जो तासीर था
वह जो धार था
वह जो तेज था
वह जो चुभ जाता था
वह जो खूब जाता था नींद में

वह गुल है आज तुझसे बात करके

पहली बार लगा :

बातचीत भी ठहर जाती है
खिलाफ अँधेरे के !

क्या नाम दूँ क्या उपमा दूँ

एक आदमी को साइकल या कभी बाइक पर
धीमी गति से चलते देखा है

एक छोटा-सा
ऐंठा हुआ
कसकर बटा हुआ रस्से का टुकड़ा हाथ में

जैसे वह ज़ंजीर या
सांकल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

या चाबुक का काम लेता हुआ
उस सोटे से
मुहल्ले में इधर-उधर
गलियों में
घर के मुहानों पर
जूठन अबेरती
पगुराती
घास-फूस कचरे से अटे
मैदाननुमा
रिक्त पड़े ज़मीन के
खुले टुकड़ों में बैठी गायों को
सुबह शाम हड़काते देखा

यह भी देखा
टूटी सड़क वाली
संकरी गली में
गोबर से सनी राह पर

वे राहें जो बनी हैं
गोबर सोसायटी में
जैसे प्रतीक कहता है

गोबर से सनी उन राहों पर
होता है उन गायों का ठीया
या कहें :

ऊपर जिस बाइक
या सायकिल सवार का जिक्र है, उसका घर
या कहें :
देसी दूध की डेयरी

और विशेष बात यह
बछिया पर भी होती है
उस आदमी की आँख
और
बछिया की पीठ पर हवा में घूमता
उस आदमी के हाथ का
चलता है सटाक से
रस्से का सोटा

यह भी देखा
दुहने के बाद
चारा ढूँढ़ने
सानी-पानी स्वयं करने
स्वयं अपना उदर भरने छोड़ी जाती हैं वे गायें

आसपास के मुहल्लों गल्लों-ठेलों
होटलों घरों में
दूध मुहैया करती
भटकती
घिसटती चलती
खुद्दार
स्वावलम्बी भरे स्तनों वाली गायों को

क्या नाम दूँ क्या उपमा दूँ

जैसे ही
दूध दूहने डेयरी के पास ले जाने
सोटे से पिटती दिखती हैं वे गायें

शब्द सड़क पर चिपट जाते हैं।

केदार जी ने सही कहा है

पेड़ की एक फुनगी भी ऐसे नहीं दिखती है
जैसे पेड़ का हिस्सा नहीं है

नदी की एक बूँद भी ऐसे नहीं बहती है
जैसे नदी नहीं बहती है

बादलों को कब किसने देखा और कहा :
ये बादल नहीं कीचड़ है

कवियों ने तो बादल को
पतलून पहने हुए देखा है

घिरते हुए भी देखा है

दूत बने हुए भी देखा है

फिर, लोग ही क्यों दिखाई देते हैं बड़ी संख्या में
हमारे समय में

जो लोग नज़र नहीं आते,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

केदार जी ने सही कहा है जिन्हें लेटे देखकर :

मन्दी उजियारी के नीचे
घण्टों आल्हा सुनते-सुनते

सो जाते हैं मुरदा जैसे!

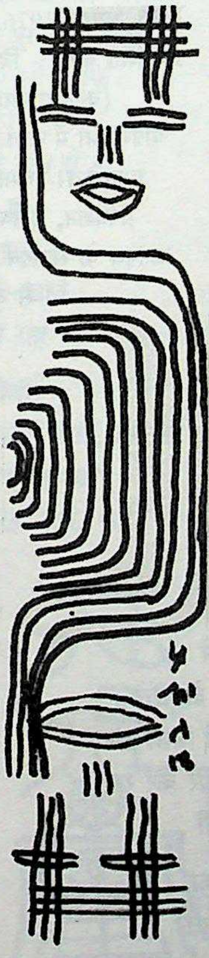

एंबुलेंस

एंबुलेंस को रास्ता नहीं मिलता है जब
सुनते नहीं लोग जब
उसके हॉर्न की चीख
गाड़ी की घर्र-घर्र

रेंग कर चलती है भीड़ में जब
देरी से पहुँचने के उस पर लगते है आरोप जब

और टूटती है उसमें साँसों की आवाज़ जब

इलाज न करा पाने का दर्ज होता है उस पर गुनाह जब

तब रेत की बोरियाँ चलती हुईं दिखाई देती हैं हर तरफ
तब पानी की सूखी हुई लकीरें दिखाई देती हैं हर तरफ
तब पत्रहीन गाछ दिखाई देते हैं शहर में हर तरफ

तब लगता है :

कहीं निरापद रहने का ईनाम तो नहीं पा रहे हैं लोग

हमारे इस सूखे समय में।

205, नंदेश्वर फ्लैट, सुंदरवन सोसाइटी के पास, न्यू समा रोड, पो.समा, बड़ौदा-390008 गुजरात

VAGARTH-3 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुमार वीरेन्द्र

15 अगस्त 1976 को जन्म। प्रकाशित कृति : 'विलाप नहीं' (कविता संग्रह)। पत्र-पत्रिकाओं में लगातार रचनाएँ प्रकाशित। नवभारत, वाणी प्रकाशन, दैनिक भास्कर, जनपथ के संपादकीय विभाग से जुड़े रहे हैं।

तब तक

जब थोड़ी रात हुई
शीशा पोंछा और जलाई
फिर बीच खेत गड़े मचान की
एक ऊपरी खूँटी पर
उसने लालटेन टाँग दी
और एक बार दम लगा के
हो-होऽऽऽ हो, लियो- लियो ऽऽऽ लियो किया
और लाठी उठा चल दिया

कि खाने का बेर बीत रहा
और नयनी भी सोच रही होगी
दीए का तेल ओरा रहा
और अभी तक...

आज देर हो भी गई
पर वह तो गया, खाया कि आया
क्या करे, ढीठ हो गए हैं और चतुर भी
नीलगाय-घोड़पड़ास कि देर तक रुक जाना पड़ा
अगर एक ने भी की होती मकई की खेती
अकेले न पड़ता वह इस बघार में रखवारी में

यूँ तो होता ही रहता उसके साथ ऐसा
कभी आधा पेट, कभी भरपेट, कभी एक दाना भी नहीं
पर ख़ैर, कोई बात नहीं कि जब तक
वह खाकर आ नहीं जाता, तब तक
जहाँ तक हो सकता है
उसके खेत की रखवाली
एक लालटेन करती है!

रखवारी

दुपहर हुई
भइया गए खाने
मैं एक गम्हार के नीचे
छाया में गमछी बिछा लेटा
आज पहली बार कर रहा
बूँट की रखवारी

कि जोगी काका
राह पकड़ गुज़रते
अपने नहीं, मेरे खेत से
दो थान उखाड़
कचरी खाते चल दिए घर
मैं पंडुक-सा देखता रहा
टुकुर...टुकुर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खेत नीचे नदी किनारे
जब घास गढ़ना हो गया
लहरी ने घर जाते-जाते
दो-चार थान उखाड़ लिया
कचरी का बजका खाने का
कर रहा मन कई दिन से
मुँहलगी सद्धुआइन जो ठहरी

सोमारू पुराने हरवाह
आज कल ईंट ढोआई करते
एक चिमनी पर गाँव बाहर
काम पर जा रहे थे कि
दो-चार थान वे भी
उखाड़ लिये गाँव से
कि बबुआ हो;
बड़ा कड़ा घाम
कचरी खाते-खाते
कट जाएगी रहा

झोलारी भौजी
आई पास खैनी खाई, खिलाई
फिर दुमुट्ठी होरहा को
ललक चू रही लार, कह
एक कछोटे से काँछ बाँध
अधपक्के थान ले
चलते बनी कटनी करने

कि इतने में
कब खाना खाकर
आए भइया, पता नहीं
मैं तो 'पूर्वी' गाने में
उड़-उतरा रहा, उतरा-उड़ रहा
पर बूँट का दस कट्ठे का खेत
चारों कोन घूम, आए भइया
और बैठे तो गया ध्यान

कहे भइया, का रे मरदे!
'पूर्वी' गाने आए हो कि रखवारी करने
थोड़ी देर हटा क्या क़ि ऊ कोन...
छेंहर-छेंहर लग रहा
मैं टुकुर-टुकुर ताक रहा
ताक रहा और कहे जा रहे भइया
कहे जा रहे कि

बबुआ रे, तोहसे रखवारी करवा घर नाहीं बिलवाना
हमारा खाना ही दुपहर को इंहे लाना
फिर तुम दिनभर 'पूर्वी' गाना
चाहे रातभर 'बिदेसिया', 'चैता'!

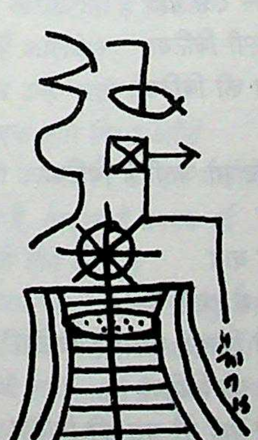

छाया

हर पेड़ छाया देता है
चाहे वह हरा हो
या सूखा

बस उसे ज़मीन पर
खड़ा होना चाहिए!

ग्राम-भकुरा, पो. लौहर फरना, ज़िला-भोजपुर, आरा-802315 (बिहार)
मो. 09199148586

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भास्कर चौधुरी

27 अगस्त 1969 को सरगुजा, छत्तीसगढ़ में जन्म। एम.ए. अँग्रेजी एवं हिन्दी में भी। एक कविता पुस्तक 'कुछ हिस्सा तो उनका भी है' प्रकाशित। पत्रिका 'संकेत-6' इनकी कविताओं पर केन्द्रित। सम्प्रति डी.पी.एस. बालको में शिक्षक।

रंग

काला था उसकी कुर्ती का रंग
चेहरा धुंधला
गाड़ी पर शीशा काला था
बलात्कारियों को पहचानना मुश्किल था...
रात काली थी
हाथों में हजारों
मोमबत्तियाँ थीं
उजाला था
उजला था विरोध का रंग?

मृत्यु

मृत्यु आवाज़ नहीं देती
पुकारती भी नहीं आहिस्ते से
चीखने का तो सवाल ही नहीं
मुत्यु दबे पाँव चली आती है
झूठा नहीं कह सकते हम मृत्यु को लेकिन।

दस की बिटिया

हो गई है दस की बिटिया
लगता है अब नहीं मेरे बस की बिटिया
कहते हैं लोग
नये ज़माने की बिटिया
लगता है मेरी नहीं
'करीना' की बिटिया
हो गई है दस की बिटिया
लगता है अब नहीं मेरे बस की बिटिया
बात सुनती नहीं
करती बहाने
कहती उसकी माँ हारकर
लगती नहीं हमारी बिटिया
हो गई है दस की बिटिया
झाड़ू लगाना आता नहीं
न मांजना बर्तन
माँ चाय बनाने देती नहीं
कि जल जाएगी बिटिया
हो गई है दस की बिटिया
रात देर
जब गहरी नींद सो जाती है बिटिया
करते तय हम
प्यार से करेंगे बात
अगली सुबह से डाटेंगे नहीं
लग रही देखो कितनी भोली है बिटिया
हो गई है दस की बिटिया
लगता है अब नहीं मेरे बस की बिटिया...

डी.पी.एस., बी/83/1, बालको टाउनशिप, बालको (कौरबा), पिन-495684 (छ.ग.)
मो. 09098400682

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सतीश कुमार सिंह

5 जून 1971 को जांजगीर, छत्तीसगढ़ में जन्म। हिन्दी साहित्य में एम.ए.। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। सम्प्रति जांजगीर में सहायक जिला परियोजना अधिकारी।

औरत

वे जिनके हाथों में थीं कन्दीलें
उन्होंने भी
उसे क़तरा भर रोशनी देने से
इंकार किया
वे घुटती रहीं
सीलन भरे स्याह बंद कोठरियों में
खिड़कियों से झाँकती रही
उनकी पीड़ाएँ।
कई कुलों की लाज को ढोने के नाम पर
उन्हें मिली पीठ पर कोड़े की असह्य मार।
अब जबकि जगमग रोशनी से
नहाया हुआ है यह समय
वे जींस-टॉप पहनकर
घर की आमदनी में इजाफा करने
निकलती हैं सेल्स गर्ल बनकर
द्वार-द्वार खटखटाती हैं साँकल
बजाती हैं कॉलबेल
एक साथ उन्हें घूरती हैं
कई कामुक और विधुर आँखें
आज भी उजालों से भरे इस माहौल में
अनसुना है, अदृश्य है उनका दर्द
जबकि वे होने लगी हैं
प्रतिभा पाटिल, सोनिया गाँधी, कल्पना चावला
सुनीता विलियम्स, सानिया मिर्जा।
वे अब भी फैली-पसरी हैं बाजार की वस्तुओं के साथ
विज्ञापन की मेज पर
औरत की नंगी टांग बेच रहे हैं कई उत्पाद
और पास के देवी मंदिर में
चल रहा है जगराता
जबकि दिल्ली में एक मासूम चिड़िया को
गिद्धों ने नोचकर
फेंक दिया है चलती बस से बाहर।

लिखो कवि...

लिखो कवि
समय की सूखी स्याही पर
अपनी आँख का पानी उड़ेलकर
अपने युग की अंतरगाथा।
लिखो कवि
ज़िबह होने से पहले
कत्लगाह और क़ातिल के
चेहरे की हक़ीकत
भूखे भेड़ियों के पंजों का पैनापन
पस्त होती मनुष्यता की दास्तान।
इस समय तुम्हारे लिखने से
कुछ हो न हो
सर्द हो रहे ज़ेहन की
कुछ बर्फ तो पिघलेगी
लिखो कवि...।

पुराना कॉलेज के पीछे, बाजारपारा, जांजगीर, जिला-जांजगीर, चाम्पा (छत्तीसगढ़)
पिन-495668 मो.09425231110

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

i Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दुर्गा शंकर राय

बलिया, उत्तरप्रदेश में जन्म। एम.ए., बी.एड.। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। सम्प्रति गाजीपुर में कार्यरत।

पार्लर में लड़की

पार्लर के दूधिया प्रकाश में
झक सफेद चेहरे पर
कई परत नीचे
मासूमियत दफन कर
खुश है लड़की
अपने उम्मीदी हाथों से छूती
उस स्याह रोशनी को, जो
उभर आए हैं
गर्दन से कानों के पीछे तक
गुदे
अबूझ ज्यामिति आकृतियों में
कुछ
विकल्प के चयनित मधुवेश
उद्ग्रीव आकांक्षा
है, आज
सूरज के सातवें घोड़े पर
सवार
इच्छित रास्तों पर सरपट।

तुम्हारे भीतर

हर साँस के साथ हो लेता हूँ
तुम्हारे भीतर
तुम्हारे साथ
और भीतर
एक मुकम्मल बेहतर स्थिति में
समेट लेता हूँ
अपने भागते कदमों को
तुम्हारे भीतर
गूँजते जज्बातों को
उन मैसूरी सन्दली अहसासों को
छूना
उन सपनों के सच होने जैसा था
जहाँ
विश्वास की खुशबू
दूर तक
देर तक
यूँ ही फैली हो।

जैसे किला

सीने में
उठ खड़ा होता है
लाल पत्थरोंवाला
चुनार का किला
जिसकी पूरब की उठी बुर्जियों पर
रोज चढ़ता है
लाल सूरज
पश्चिम की बुर्जियों में समाने से पहले
रोशनी में उबल जाती हैं
ढेरों महत्त्वाकांक्षाएँ।

बी031/40 एम-1 उपाध्याय नगर कॉलोनी, भोगाबीर, लंका, वाराणसी मो. 09918796948

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ओ मेरे बचपन

तुम्हारे जाने के बाद,
ओ मेरे बचपन!
वो खिड़की, वो बंधन,
पक्षियों और मेरा
ठोस, ज्वलंत बंधन
भाजीत, टूटा, विभाजित।

तुम्हारे जाने के बाद,
ओ मेरे बचपन!
मूक और शुष्क,
मिट्टी की गुड़िया,
धुंध में गुड़िया,
आँखों में किरकिरी,
डूबता पानी, डूबता पानी।

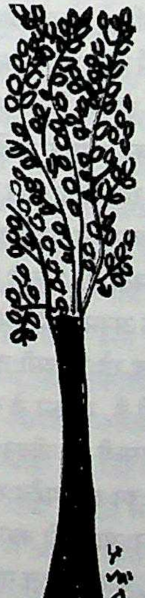

सौम्या शर्मा

सौम्या शर्मा रचनात्मक लेखिका और वृत्तचित्र निर्माता हैं। कविताएँ और लघुकथाएँ इनका पसन्दीदा क्षेत्र है। कला सम्बन्धी विषयों पर अब तक दो वृत्तचित्र बना चुकी हैं।

राख से निकलता पेड़

मैं बन रही थी राख,
वास्तव में
आग की लपटें
मुझे घेरे हुए थीं
मैं बुरी थी
दुष्ट नहीं थी
शायद लाचार
सारी दुनिया जुट गयी
मुझे शाप देने में
फिर तुम मिले
शब्द बनके आत्मा से
और मेरे देह में
कविता सी बहने लगी
मैंने पूछा
'मिलोगे अगले बसंत?'
तुम मुस्कुराए
और मैं खिला हुआ पेड़ बन गयी।

द्वारा - ब्रिगे.आर. एम. शर्मा, हाउस नं.3270,
सेक्टर-23, पालम विहार, गुड़गाँव-122001,
हरियाणा मो.07838861671

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब्दुल बिस्मिल्लाह से बिजय कुमार रबिदास की बातचीत

साहित्य का आधार साहित्य होना चाहिए

बिजय कुमार रबिदास : आपको साहित्य लेखन की प्रेरणा कहाँ से मिली?

अब्दुल बिस्मिल्लाह : साहित्य लेखन की प्रेरणा मुझे अपने जीवन से मिली, आस-पास के वातावरण से मिली, क्योंकि मेरा जो बचपन है और किशोरावस्था, ये ऐसे वातावरण में बीता, जहाँ कोई साहित्यिक वातावरण नहीं था। मैं तो साहित्य को जानता भी नहीं था, साहित्य क्या है? स्कूल में जो किताबें पढ़ता था, हिन्दी की कविता या कहानी की होती थीं, उन्हें शिक्षा का माध्यम मानता था, लेकिन जिस प्रकार का जीवन मैंने जीया, उस जीवन में इतनी जटिलता थी कि मुझे लगने लगा इस जीवन की जटिलता को अभिव्यक्त करना चाहिए।

आपकी पहली कहानी कौन सी है और वह किस पत्रिका में छपी थी?

मेरी पहली कहानी 'सोने की अँगूठी' है जो 'युवक' नामक मासिक पत्रिका में छपी थी। यह पत्रिका आगरा से निकलती थी। तब मैं बी.ए. का विद्यार्थी था।

वर्त्तमान समय में दलित-विमर्श और स्त्री-विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है, इन दोनों विमर्शों को आप किस रूप में देखते हैं?

अच्छी बात है, ये विमर्श चल रहे हैं। दलितों को, महिलाओं को, आदिवासियों को जो अवसर मिल रहा है अपनी बात करने का, वह एक अच्छी बात है, क्योंकि एक लम्बे अर्से से उनको ये अवसर नहीं मिल रहा था। आज उनको यह अवसर सुलभ हुआ है, इन विमर्शों के चलते। लेकिन मैं ये मानता हूँ कि साहित्य में जाति, लिंग, नस्ल का आधार नहीं होना चाहिए। साहित्य का आधार साहित्य होना चाहिए। चाहे वह ब्राह्मण रचनाकार लिख रहा हो या दलित रचनाकार लिख रहा हो या चाहे मुसलमान रचनाकार लिख रहा हो। रचना का महत्त्व होता है और रचना से ही रचनाकार की पहचान होती है। रचनाकार की पहचान जाति, धर्म, लिंग से नहीं बनी होती, वह रचना से बनती है। अच्छी बात है - ये विमर्श चल रहे हैं। उनके अपने अनुभव आ रहे हैं। पहले ये था कि दलितों के अनुभव को सवर्ण लेखक लिख रहे थे। आज, जो दलितों को स्वयं का जो अनुभव है, वह स्वयं लिख रहे हैं। इसी तरह से जो स्त्रियों की वेदना थी, पीड़ा थी वह पुरुष लिख रहे थे, अब स्त्रियाँ लिख रही हैं, लेकिन ये कौन लोग हैं? ये पढ़े-लिखे लोग हैं नगरों में, महानगरों में रहने वाले लोग हैं, लेकिन असली जो जीवन है दलितों का, स्त्रियों का, वह तो गाँव में है। वो जो अनुभव कर रहे हैं, वो कहाँ तक इन तक पहुँच रहा है -ये एक प्रश्न है, जिस पर सोचना चाहिए। इनके पास अपने अनुभव तो हैं, लेकिन आज की क्या स्थितियाँ हैं क्या वो भी ये जानते हैं? आज का गाँव बदल गया है, समाज बदल गया है, जीवन बदल गया है। हम नगरों में रहते हुए उस बदले हुए समाज को कितना जानते हैं? सवाल ये उठता है। और यदि हम उस बदले हुए समाज को अभिव्यक्त कर रहे हैं, तब तो उसकी सार्थकता है, लेकिन अगर यदि हम अपने पुराने अनुभव को ही लिखते रहेंगे, तो मैं समझता हूँ कि उसकी उतनी ज्यादा सार्थकता नहीं है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब्दुल बिस्मिल्लाह

5 जुलाई 1949 को इलाहाबाद में जन्म। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए.। प्रकाशित कृतियों में 8 उपन्यास, 6 कहानी संग्रह, 4 कविता संग्रह, 1 नाटक और आलोचना की 1 पुस्तक। सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार, अखिल भारतीय देव पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, हिन्दी अकादमी सम्मानों से सम्मानित। सम्प्रति जामिया मिलिया विश्वविद्यालय, दिल्ली के हिन्दी विभाग में प्रवक्ता।

आप एक लम्बे अर्से से लेखन कार्य करते आ रहे हैं, आज के दौर में हिन्दी कहानी को किस रूप में देखते हैं?

हिन्दी में बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी जा रही हैं और जो नई पीढ़ी के लेखक हैं वह बहुत समझदार लेखक हैं, जागरूक लेखक हैं, लेकिन दो बातें ऐसी हैं, जो मैं कहना चाहूँगा, आज के लेखन को लेकर। देखिए, हमलोगों ने जब लिखना शुरू किया तो एक तरह से अपना पाठक तैयार करते थे कि पाठकों में साहित्य पढ़ने की रुचि पैदा हो। आज स्थिति यह है कि पाठकों की रुचि के अनुसार साहित्य लिखने की एक तरह से परम्परा बन रही है। पाठकों की भी नहीं, जो जिन पत्रिकाओं में कहानियाँ छप रही हैं उन पत्रिकाओं के सम्पादकों की क्या रुचि है? इसको देखते हुए लोग लेखन कार्य कर रहे हैं या प्रकाशक की रुचि किसमें है कि क्या वह छापे कि बिके, उसी रुचि को ध्यान में रखकर लेखन कार्य हो रहा है। यह बहुत ही अजीब स्थिति है, यह बड़ी ही खराब स्थिति है। यानी हम अपनी शर्तों पर नहीं लिख रहे, बल्कि दूसरे की शर्तों पर लिख रहे हैं। देखिए, जो साहित्यकर्म है, जो रचनाकर्म है वह अलग चीज है और जो विचार-विमर्श है, वो अलग चीज है, लेकिन आज आप देख रहे हैं कि तरह-तरह के विमर्श चल रहे हैं- दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, अल्पसंख्यक-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, इन विमर्शों को ध्यान में रखकर कहानियाँ लिखी जा रही हैं -यह मेरे ख्याल से साहित्य के लिए अच्छी स्थिति नहीं है।

साहित्य में आज स्थिति यह है कि जो पाठक है या जो सम्पादक है या जो प्रकाशक है, वह चाह रहा है कि हमें ऐसा चाहिए, तो क्या हमको वैसा ही देना चाहिए? नहीं। हम तो समाज को बेहतर बनाने के लिए लिख रहे हैं, जीवन को बेहतर बनाने के लिए लिख रहे हैं। संसार को बेहतर बनाने के लिए साहित्य कर्म होता है, तो हमें लेखक को यह सोचना चाहिए कि समाज की बेहतरी किसमें है? दुनिया की बेहतरी किसमें है? क्योंकि ये एक कमी आ गई है आज के लेखन में।

अगर पत्रिकाओं में लेखकों की रचनाएँ आसानी से छप जा रहे हैं, तो इसमें समस्या क्या है?

हमलोगों के जमाने में संघर्ष बहुत था। पत्रिकाएँ कम थीं और वो पत्रिकाएँ बहुत मुश्किल से रचनाएँ छापती थीं। बहुत सारी रचना वापस आ जाती थी- सौजन्यवाद वापस। आज क्या है? इतनी पत्र-पत्रिकायें आ गई हैं, इतने अखबार निकल रहे हैं कि एक बहुत बड़ा पाठक वर्ग तैयार हो रहा है। यह बहुत सुखद है कि अनेकानेक पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं, समाचार पत्र निकल रहे हैं, कलकत्ता से हिन्दी के इतने अखबार निकलेंगे ये मैंने कभी सोचा भी नहीं था- यहाँ से प्रभात खबर भी निकल रहा है, दैनिक जागरण भी निकल रहा है, लेकिन इतनी भरमार होने का एक जो नुकसान हो रहा है- लेखकों को संकटों का सामना नहीं करना पड़ रहा है। एक जगह नहीं छप रही, दूसरी जगह छप जा रही है; इसलिए लेखक जो है उसे अपने लेखन के बारे में आत्ममंथन करने का मौका नहीं मिलता, क्योंकि उसे मालूम है कि जो मैं लिख रहा हूँ वह कहीं न कहीं छप जाएगा। यहाँ नहीं तो वहाँ छप जाएगा। हमारे यहाँ स्थिति यह थी- मान लीजिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक रचना चार जगह से वापस लौटती थी तो आत्ममंथन करते थे कि चार जगह से लौट गयी है, चार सम्पादकों ने इसे नापसंद किया है, क्यों नहीं पसंद किया? जरूर कुछ गड़बड़ी होगी। तो हम उस गड़बड़ी की खोज करते थे, उसे सुधारने का प्रयत्न करते थे। आज स्थिति भिन्न है। आज आत्ममंथन करने का समय नहीं है, एक जगह नहीं छपी, दूसरी जगह छप जाएगी। ये स्थिति आज है जो मैं महसूस करता हूँ। यह मेरा निजी विचार है। कोई भी इससे असहमत हो सकता है, लेकिन मैं इसको इस रूप में सोचता हूँ तो लगता है कि स्थितियाँ बहुत अजीब हैं।

समकालीन कहानी की दशा और दिशा क्या है?

देखिए, समकालीन कहानी की जो दशा है, वह मैं बता चुका हूँ और दिशा क्या? इसी दशा से दिशा निर्धारित होती है। मैं यह समझ रहा हूँ कि कुछ अर्से तक ये सब चलेगा, उसके बाद ये खतम हो जाएगा। जब ये खतम हो जाएगा यानी कि तरह-तरह के आज जो आन्दोलन हैं, तरह-तरह के विमर्श जो चल रहे हैं यह कब तक चलेगा? एक समय आएगा जब ये विमर्श समाप्त हो जाएँगे। सही अर्थों में साहित्य या कहानी या उपन्यास, ये विमर्श जब नहीं रहेंगे न तब जो साहित्य लिखा जाएगा वह सही अर्थों में समाज के लिए, दुनिया के लिए लाभदायक सिद्ध होगा, क्योंकि तब रचनाकार फिर स्वतंत्र होकर लिखेगा। आज स्वतंत्रता नहीं है, आज बंधन है। रुचियों का बंधन है, रुचियों के अनुसार और दूसरों की रुचियों के अनुसार लिखा जा रहा है। ये बड़ी खतरनाक स्थिति है। जब लेखक अपनी रुचि से लिखेगा तब नई दिशा ग्रहण करेगा साहित्य।

मुस्लिम-समाज की अभी कौन-कौन सी समस्याएँ हैं, जो आप अपनी आगे की रचनाओं में दिखाना चाहेंगे?

मुस्लिम समाज की जहाँ तक समस्याओं की बात है, इस सम्बन्ध में मेरा सीधा विचार है, जो मैं कहता रहता हूँ। जब मैं जर्मनी गया था, तो वहाँ भी लोगों ने मुझसे इस तरह के सवाल पूछे, तो मैं हमेशा कहता हूँ कि मुस्लिम-समाज की समस्या कोई अलग नहीं है। भारतीय समाज की जो भी समस्या है वह मुसलमानों की समस्या है। इसमें हिन्दू-मुसलमान का सवाल नहीं उठता, जैसे मान लीजिए गाँव में किसान है, तो हिन्दू भी खेती कर रहा है, मुसलमान भी खेती कर रहा है। कृषि से जुड़ी समस्या है, तो क्या हिन्दुओं की अलग होगी? और मुसलमानों की अलग होगी? नहीं, समस्या तो एक जैसी होगी। अगर वर्षा नहीं हुई, अकाल पड़ेगा तो दोनों खेतों में पड़ेगा- हिन्दू के खेतों में भी और मुसलमानों के खेतों में भी पड़ेगा। तो अलग कहाँ से हो गई समस्या। इसी तरह से जैसे गरीब मुसलमान अपने बच्चे को अच्छे स्कूल में नहीं पढ़ा पाता, तो गरीब हिन्दू भी तो नहीं पढ़ा पाता। तो समस्या एक ही है, समस्या अलग कहाँ हो गई है? क्योंकि जीवन हमारा एक जैसा है, सिर्फ धर्म के लेवल पर अलग-अलग हैं और वह भी अलग-अलग नहीं है। वो ईश्वर की अराधना है। हिन्दू अपनी अराधना अपने ढंग से करता है, मुसलमान अपने ढंग से करता है। दोनों तो अराधना है ना?

हिन्दू समाज कई जातियों में विभाजित है। क्या उसी प्रकार मुस्लिम-समाज में भी जातियों का विभाजन है?

कुछ चीजें जरूर ऐसी हैं जिसके बारे में लोगों को पता नहीं है कि जिस प्रकार जातिवाद हिन्दू समाज में है उसी प्रकार जातिवाद मुस्लिम-समाज में भी है, ये बहुत कम लोग जानते हैं। लोग ये सोचते हैं कि मुसलमान तो मुसलमान है, लेकिन ऐसा नहीं है। जितनी जातियाँ हिन्दू समाज में हैं, लगभग वो सारी की सारी जाति समानान्तर रूप से मुस्लिम-समाज में भी हैं। अगर बाल काटने वाला एक व्यक्ति जो कि नाई कहलाता है, वह हिन्दू होता है, तो क्या मुस्लिम समाज में नाई नहीं है? हिन्दू-समाज में अगर कोई धोबी है, तो मुस्लिम-समाज में भी है। हमारे यहाँ धर्म परिवर्तन जो हुआ, मध्यकाल में। हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म ग्रहण किया तो धर्म तो बदल गया, जातियाँ नहीं बदलीं, क्योंकि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जातियों का संबंध पेशे से है। पढ़े-लिखे लोग तो थे नहीं, तो पेशा करते थे, उसे तो उन्होंने छोड़ा नहीं। जो कपड़ा धोने वाला है कपड़ा धो रहा है, बाल काटनेवाला बाल काट रहा है। पहले उसका नाम रामचन्द्र था अब उसका नाम रहीम हो गया बस इतना फर्क है। बाकी जाति नहीं बदली। लोग समझते हैं कि मुसलमानों में अछूत नहीं होते। बिल्कुल होते हैं, क्योंकि जो हिन्दू समाज में भंगी है, जो मनुष्य का मल-मूत्र साफ करते हैं, तो मुस्लिम समाज में भी तो हैं भंगी है, हलालखोर कहलाते हैं। मान लीजिए, मुसलमान खाँ साहब हैं या शेख साहब हैं या शैयद साहब हैं, वो भंगी का छुआ खाना खाएँगे? नहीं खाते। इसका मतलब अछूत मुस्लिम-समाज में भी है। कम है, दिखाई कम पड़ते हैं, तो लोग ये समझते हैं कि सारे मुसलमान एक जैसे हैं। 'इकबाल' एक बहुत मशहूर शायर थे उर्दू के, उनका एक शेर है-

एक ही सफ़ में खड़े हो गये महमूदो हयात
न कोई बन्दा रहा न कोई बन्दानवाज़

महमूद बादशाह था, हयात उसका गुलाम। इस्लाम दोनों को बराबर कर रखा है, बादशाह हो या दास। वो एक साथ खड़े होकर नवाज पढ़ेंगे, लेकिन यथार्थ में ऐसा है नहीं। मस्जिद में आज भी जाइये, गाँव की मस्जिद में खाँ साहब, शेख साहब आगे की लाइन में खड़े होते हैं नमाज में और जो नाई, धोबी इस तरह की जातियों में है वो सबसे पीछे खड़े होते हैं। मान लीजिए मस्जिद में खड़े हो भी गये एक साथ, उससे क्या होता है? बाहर निकलकर क्या खाँ साहब, मान लीजिए चारपाई पर बैठे हैं और एक नाई या धोबी, मनीहार ये सब आ जाए, तो क्या चारपाई पर बैठ जाएँगे वो? नहीं बैठ सकते, जैसे हिन्दुओं के यहाँ ठाकुर साहब की चारपाई पर कोई तथाकथित निम्न जाति का व्यक्ति बैठ सकता है क्या? नहीं बैठ सकता। ये स्थिति मुस्लिम समाज में भी है। मेरा अगला उपन्यास इसी विषय पर है। मैं इसी विषय पर लिख रहा हूँ।

आपकी आनेवाली रचना कौन सी है? आप उसके बारे में बताएँगे?

मेरा जो अगला उपन्यास है उसका थीम है- मुस्लिम समाज में जातियाँ, मुस्लिम समाज में जातिवाद। इसी विषय पर मेरा अगला उपन्यास आएगा। वो मैंने लिखना शुरू कर दिया है। मैं बहुत धीरे-धीरे लिखता हूँ। मेरे लेखन की गति बहुत धीमी है। अब कब आएगा ये मैं नहीं कह सकता, क्योंकि मेरे उपन्यास लिखने में 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' लिखने में दस साल लग गए, दस साल बाद वो उपन्यास छपा। उसके दस साल बाद मेरा अगला उपन्यास छपा 'मुखड़ा क्या देखते हो?' सिर्फ दो उपन्यास हैं जो जल्दी-जल्दी छपे हैं। 'अपवित्र आख्यान' -2008 में छपा और 'रावी लिखता है' उपन्यास -2010 में। दो साल का अन्तर है, लेकिन ये जल्दी-जल्दी इसलिए छपा कि दोनों उपन्यास एक साथ लिखता था। कभी ये लिखता था कभी वो लिखता। एक साथ दो उपन्यास लिख रहा था मैं, फिर भी छपने में दो साल लग गये, क्योंकि 'अपवित्र आख्यान' जब छप गया और 'रावी लिखता है' वो लिखा जा चुका था, लेकिन उसको दो साल तक मैं रखे रहा। उसमें फेर बदल करता रहा, उसमें संशोधन, परिवर्तन करता रहा, तब जाकर वो 2010 में छपा। मैं अपने लिखे हुए को बार-बार काटता हूँ, कई बार मैं खारिज़ कर देता हूँ। पूरा का पूरा अध्याय काट देता हूँ, लेकिन जो अगली कृति है और कब आएगी यह मैं नहीं कह सकता।

प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह : हिन्दी विभाग, मानविकी एवं भाषा संकाय, जामिआ मिलिआ इस्लामिया, नई दिल्ली, मो.09811306331

बिजय कुमार रबिदास : 16 वेस्ट कासपेपाड़ा रोड, पो.आतपुर-743128, ज़िला : उत्तर 24 परगाना, पश्चिम बंगाल मो. 9339869912

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनूप अशेष

7 अप्रैल 1945 को सतना, म.प्र. में जन्म। आठ नवगीत संग्रह, एक खण्ड काव्य, एक काव्य नाटक एवं स्थानीय बोली- बघेली में तीन नवगीत संग्रह प्रकाशित। सम्प्रति लेखन में सक्रिय।

उँगलियों में छोह लेपे

रात चकरी सुबह जाँता
बीच में
हमको बचाने
देखिए अब कौन आता।
श्मशानी रात का संगीत
सुनतीं लालटेनें,
एक अंधा आइना ले
लोग आते
रहे देने।
गाय के सूखे थनों में
कौन बछड़ा
मुँह लगाता।
धूप की बरसात है
ये दिन बड़े हैं।
काम, हाथी पाँव
लेकर
रहे दरवाजों खड़े हैं।
घरों के गमछे फटे हैं
छाँह का
छिद गया छाता।
दरे थे फिर गए पीसे
और आगे राम जानें,
स्वप्न आने
नहीं पाए
गए जीने के बहाने।
उँगलियों में छोह लेपे
बघनखा
हमको डराता।

खूँटियों पर टँगे

खूँटियों पर टँगे दिन
फटती कमीजों-से रहे।
धूल पीती साँस
टूटे घरों का संत्रास,
आँवे के नीचे
रहे ज्यों
किसी का रहवास।
मोटे लिबासों बीच
पतली समीजों-से रहे।
बड़े घर की ओट, आधे
बसे थे सपने,
पहाड़ों-सी पीर
बाँधे हाथ
खून में अपने सने।
साँस लेते हुए भी हम
यहाँ चीजों-से रहे।
चिटकते-से रहे आँखों
आग के दानें
अकेले की
आँच का
कोई नहीं माने।
आँधियों के बीच उड़ते
पके बीजों-से रहे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चेहरे आते

चेहरे आते शीशे आते
फिर हो जाते गुम
सूखे पेड़ हुए दरवाजे
पहचानें खोकर
घर जानें क्यों
घर रह जाते
यादों के होकर
कुड़ में जैसे बीज गड़े हों
ऐसे ही हम-तुम।

सपने पहन रहे होते जब
पुरखों की पोशाक,
आज हमारा
टुकड़ों होता
हम होते दो फाँक।

फटे माथ पर भर जाता
कोई सूखा कुमकुम।
हम अपना खालीपन खुद में
कितना गोड़ रहे,
अपनेपन की राख
चुटकियों
जैसे छोड़ रहे
दिन के जाते बरसों जाते
बिन आहट गुमसुम।

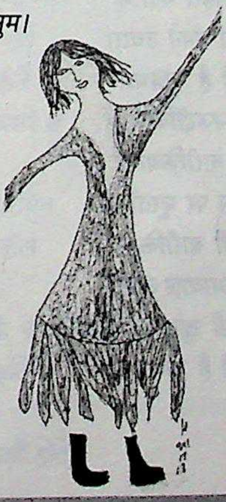

जले हुए पेड़ नहीं

दिन पाँवों से चलते
मील थे
जले हुए पेड़ नहीं
हम काले
भील थे
ऋतुएँ थीं बहनें
माँ-पिता जैसे महुए
डोंगे के
रस-से
हम सब रहे चुए।
धूप भरे गमछे थे
पसीने में
झील थे।
मादल से सुख-दुःख
बातें थीं थाप में
हम आदिम
शापित हम
रहे अपने आप में।
पर्वत की देह में छिपे
तीर-बिंधे
एक अबाबील थे।
भीतर पाले अपने
बाघ हिरन
सूखे पातों सेया
पुरखों से
मंगल-मन
कालीनों के नीचे
दबी हुई
कील थे।

अतुल मेडिकल स्टोर, हास्पिटल रोड
सतना-485001 (म.प्र.)
मो. 09424934472

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यश मालवीय

18 जुलाई 1962 को कानपुर में जन्म। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी में स्नातक। प्रकाशित कृतियाँ : 'कहो सदाशिव', 'उड़ान से पहले', 'एक चिड़िया अलगनी पर एक मन में', 'बुद्ध मुस्कुराए' (चारों ही नवगीत संग्रह); तीन व्यंग्य संग्रह, बाल गीतों के दो संग्रह। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से दो बार 'निराला सम्मान' एवं 'उमाकान्त मालवीय सर्जना सम्मान', 'मोदी कला भारतीय सम्मान', 'परम्परा ऋतुराज सम्मान से सम्मानित।

सम्प्रति इलाहाबाद के महालेखाकार कार्यालय में कार्यरत।

दुःख कि अर्जन है हमारा

सुख सभी वंशानुगत हैं
दुःख कि अर्जन है हमारा
चल रही है भावधारा
सुबह साँसों में सजी है
घाव पर पट्टी बँधी है
इस तरह से आज अपनी
ज़िन्दगी कुछ सुर सधी है
बेसुरा कुछ भी नहीं है
हो हँसी या नीर खारा
चल रही है भावधारा
बैर ख़ुद से ठानते हैं
लोग अपना मानते हैं
हम कि अपने दर्द को भी
चाय जैसा छानते हैं
डूबकर गहरी नदी में
स्वयं को हमने उबारा
चल रही है भावधारा
दूरियाँ, नज़दीकियाँ हैं
बोलती तारीक़ियाँ हैं
हर कदम पर घूरती सी
कुछ नयी बारीकियाँ हैं
धुंध से आवाज़ लौटी
जब कभी ख़ुद को पुकारा
चल रही है भावधारा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक प्रतिनिधि चीख जैसे

दुःख पुराने नहीं होते
दिन बिताने नहीं होते
बीतकर भी कभी
बीते से ज़माने नहीं होते
हर घड़ी ताज़ा रहें
टपकें किसी फोड़े सरीखे
वक़्त की उफनी नदी में
अलग इनकी लहर दीखे
दुःख पुराने नहीं होते
किसी बच्चे से बिफरते हैं
सयाने नहीं होते
फड़फड़ाते कैलेण्डर में
हैं रुकी तारीख़ जैसे
बोलने के नाम पर हैं
एक प्रतिनिधि चीख जैसे
दुःख पुराने नहीं होते
ठौर पर रहते हमेशा
बेठिकाने नहीं होते
नहीं सोते, कभी आधी रात में भी
नहीं सोते
आँसुओं की गुनगुनी सी
आग में आँखें भिगोते
दुःख पुराने नहीं होते
कभी भूले और बिसरे से
तराने नहीं होते
आसमानों से अपरिमित
अपरिभाषित दर्द नीले
हैं हरे, क्या फ़र्क
कागज़ चिट्ठियों के पेड़ पीले
दुःख पुराने नहीं होते
लहलहाते स्वयं
सरसों से उगाने नहीं होते
ये ख़ज़ाने हैं
कि इनसे अनुभवों की खान ले लो
आइने हैं, भीड़ में
गुम हो गयी पहचान ले लो
दुःख पुराने नहीं होते
कभी भी 'शोकेस' में
सुख से सजाने नहीं होते

कबिरा ने तो चादर बीनी

हम सीखे बस नुक्ताचीनी
कबिरा ने तो चादर बीनी
झीनी-झीनी, झीनी-झीनी
हमने अपनी परम्परा का
रक्त पिया, बस हँसे ठठाए
कक्षाओं से, सबद-रमैनी
साखी वाले पाठ हटाए
हम सीखे बस नुक्ताचीनी
निर्गुन की आँखों में अब भी
ख़ुशबू सी है भीनी-भीनी

कबिरा जैसा कौन पढ़ा है
कबिरा सा कोई क्या ज्ञानी?
ऐसे ही वो नहीं कह रहा
बरसे कम्बल, भीजे पानी
हम सीखे बस नुक्ताचीनी
'मसि कागद' ना छूने वाले,
मुहावरे ने आँखें छीनी

घट-घट, अन्तर्घट को खुलकर
दुलहिन मंगलचार सुनावे
देखो वो आगाह कर रहा
'माया महाठगिनि' झमकावे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हम सीखे बस नुक्ताचीनी
कड़ुवा है समाज, क्योंकर हो
बोली-बानी में, गुड़-चीनी?

चल पड़ें, चलो पैदल-पैदल

चल पड़ें चलो पैदल-पैदल
अपनी गुपचुप सी बातों से
पी जाएँ सारा कोलाहल
वो देखो घने कुहासे से
कोई सूरज उगने को है
चहकी है भूरी सी चिड़िया
दाना-दाना चुगने को है
चल पड़ें चलो पैदल-पैदल
अँगड़ाई लेकर जागा है
सोते पानी में नीलकमल
टहनी टहनी से बात करें
शाखों से हालचाल पूछें
आखिर कितने में मोल लिया
फूलों से कढ़ा शॉल पूछें
चल पड़ें चलो पैदल-पैदल
मुश्किल है, समा न पाती है
पश्मीने में दिल की हलचल
गाड़ी फिर बड़े सवेरे की
ऊँघे पुल पर आने को मैं
चल पड़ी गोमती को गंगा
सरयू भी बतियाने को है
चल पड़ें चलो पैदल-पैदल
फिर गतिमय है पहिया-पहिया,
पटरी-पटरी पर, पल-प्रतिपल
मोड़ों गलियों ने पहने हैं
कुहरों के मफलर-दस्ताने
होठों पर नये सवेरों के,
हैं भूले बिसरे से गाने
चल पड़ें चलो पैदल-पैदल
आँखों भर लें, पर्वत-पर्वत,
घाटी-घाटी, जंगल-जंगल

फिर घाट-घाट पर
ठंडे पानी से, मुँह धोता है जीवन
फिर कुछ प्रयाग से कहता है
कानों पर झुककर वृन्दावन
चल पड़ें चलो पैदल-पैदल
रस्तों पर तीर्थ सरीखे हैं
अपने काशी, अपने कनखल

ए-111 मेंहदौरी कॉलोनी, इलाहाबाद-211004 (उ.प्र.) मो. 09839792402

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अहद प्रकाश

17 जून 1951 को देवास, में जन्म।
आज के दौर के प्रमुख ग़ज़लकार।

ख़मोश दिल

यह दिल ख़मोश अकेला हवा से काँपता है
समुन्दरों में जज़ीरा हवा से काँपता है

अकेलेपन की सज़ा झेलता है हर बच्चा
शजर पे नन्हा परिन्दा हवा से काँपता है

हम अपने दोस्त की बातें बयान तो कर दें
मगर ये ज़र्फ़ हमारा हवा से काँपता है

सभी तो अपने हिसारों में क़ैद लगते हैं
सभी का उभरा सितारा हवा से काँपता है

हमारे ख़्वाब तुम्हारी नशीली आँखों में
पुराना भूला सा क़िस्सा हवा से काँपता है

उल्टा ज़माना

शहर वालों से पूछा जा रहा है
अँधेरा गाँव तक क्यों आ रहा है

सुनो! मुद्दत से बिछुड़ा मिल गया है
मगर वह बाप से कतरा रहा है

फ़रिश्तो, ऐशो-इशरत भूल जाओ
बहुत उल्टा ज़माना आ रहा है

न बदलोगे तो रोओगे यक़ीनन
ज़मीं से आसमाँ थर्रा रहा है

हवाओं बादलों की ले उड़ो बस
लहू इनसे टपकता जा रहा है

मिट्टी की ख़ुशबू

तुम्हारा चाहना अच्छा नहीं है
यहाँ आशिक़ कोई सच्चा नहीं है

अरे मिट्टी की ख़शबू कैसे आए
हमारा घर भी अब कच्चा नहीं है

वे अच्छे थे जो रुख़सत हो गए हैं
हमारा जागना अच्छा नहीं है

इबादत को बहुत जी चाहता है
हमारे सामने बच्चा नहीं है

सभी ऊँचाइयों को छू रहे हैं
परिन्दा अब कोई बैठा नहीं है

कोई आकर हवा से पूछ ही ले
ठहरने की यहाँ इच्छा नहीं है

मैं थककर इस सुबह को देखता हूँ
कि जिसकी कोई भी मंशा नहीं है

अहद प्रकाश तुम कैसे हो भाई
यहाँ तो कोई भी अच्छा नहीं है

एम.आई.जी. 304, पुष्पम अपार्टमेन्ट, भारत टाकिज़ के पास, भोपाल (म.प्र.) मो.
09329412531

VAGARTH-6
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः

दादूराम शर्मा

प्राची के श्याम फलक पर अदृश्य चित्रकार अपनी तूलिका से अरुण-स्वर्णिम रंग भर रहा है। शीतल मंद पवन से ईषत्संचालित तरु-पल्लव करतल ध्वनी-सी कर रहे हैं और पक्षियों का कलरव श्रुतिमधुर श्रुतिगान की भांति प्राणों को आप्यायित करता हुआ मौन प्रकृति को मुखर बना रहा है। प्रकृति के विस्तीर्ण परदे पर नदी-निर्झरों, पर्वत-उपत्यकाओं, पुष्पित विटप-वल्लरियों, शस्य श्यामलशाद्वल धरित्री और दुर्गम वनों के एक के बाद एक दृश्यों को नयन-गोचर करती हमारी रेलगाड़ी द्रुतगति से बढ़ी जा रही है। अहा! हरी-भरी इस पहाड़ी के पाद प्रदेश पर दूर तक फैले पीले-पीले फूलों से भरे जगनी के खेत ऐसे जान पड़ रहे हैं, मानों प्रकृति नायिका ने पीली किनार वाली हरी साड़ी पहन रखी हो और उन खेतों के नीचे बराबरी से कल-कल कर बहता हुआ घुमावदार नाला उस नटी के निनादित (रुनझुनाते) नूपुरों-सा लग रहा है।

कितने दिनों बाद मैंने प्रकृति की इस सुषमा को नेत्रपुटों से जी भर कर पिया है। मेरा हृदय अत्यधिक अधीर और उत्कंठित हो रहा है, क्योंकि बहुत दिनों बाद मैं दूर तक फैले हरे-भरे खेतों से घिरे हुए अपने गाँव की ओर लौट रहा हूँ। प्रत्येक पेड़ दूर से ही मेरा अभिनंदन करता और पवन-चालित कर-पल्लवों के संकेत से मुझे बुलाता-सा लग रहा है। सरसराती गाड़ी उसके बाजू से गुजर जाती है और वह मुझे दूर दिखायी पड़ने वाले गन्तव्य की ओर द्रुत गति से पहुँचने का संकेत देने लगता है।

पूर्वी क्षितिज को फोड़कर निकलने वाला लाल-लाल सूरज का गोला अजीब आकर्षक लग रहा है। यह मेरा प्रभात है, मेरी धरती का प्रभात है- उस धरती का जो मेरे मन-प्राणों में मेरी साँस-साँस में समायी हुई है। देश-विदेश की मानस-यात्रा करने वाला मेरा मन सौर जगत् और सुदूरस्थ ग्रहपिण्डों की सूक्ष्म जानकारियों को सँजोने के लिए लालायित रहने वाली मेरी बुद्धि और सच्चे स्नेह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की खोज में भटकने वाला मेरा व्यग्र हृदय- सभी इस धरती की खुली-फैली गोद में ही शांति प्राप्त करते हैं।

आज के इस वैज्ञानिक युग में, जबकि धरती सिकुड़ कर छोटी हो गयी है, विभिन्न द्रुतगामी साधनों और संचार-यंत्रों ने दूरी को मानों मिटा ही दिया है और राष्ट्रीयता का विकास अन्तर्राष्ट्रीयता में हो रहा है। अपनी जन्मभूमि इस छोटे से गाँव के प्रति मेरा लगाव, मेरी ममता सचमुच मेरी संकीर्ण मनोवृत्ति की परिचायक ही कही जायेगी। कहाँ विश्वबन्धुत्व की भावना और व्यापक दृष्टिकोण वाला विश्व मानव और कहाँ मैं लघुता के पाश में जकड़ा क्षुद्र मानव!

आज मेरा अहंकार गल गया है, बुद्धि-विलास लुप्त हो गया है और चिन्तन की व्यापकता सिमटकर इस धरती की नयनाभिराम गोद में बैठकर खो जाने के लिए मुझे बार-बार आतुर कर रही है। मैं क्षुद्र ही सही, किन्तु मेरी क्षुद्रता प्रकृति की इस विराटता में विलीन हो जाना चाहती है। उनकी व्यापक दृष्टि मेरी समझ में नहीं आती, जो इस विस्तीर्ण प्रकृति में व्याप्त सत्य को खंड-खंड करके देखते हैं या उसे संकीर्णता में समेट लेते हैं। इसके प्रत्येक रज-कण में मेरे शैशव की सुखद स्मृतियाँ सनी हुई हैं, जो मेरे अहम् को, मेरी स्वकेन्द्रित सत्ता को, मेरे अन्यों से वैशिष्ट्य की भावना को, मेरे पद के मिथ्याभिमान को धोकर मिटा देती है और मैं शिशु-सा सरल, सहज और निर्विकार हो जाता हूँ। आह! आधुनिक शिक्षा ने आज मनुष्य-मनुष्य के बीच विभेद की कितनी गहरी खाई खोद दी है। मानव आज चाहे अपने अजय पौरुष, दुर्धर्ष साहस और प्रखर तेज से देवोपम किंवा देवताओं को भी अभिभूत करने वाला बन जाय, किन्तु उसे इस धरती माता से ऊपर- बहुत ऊपर उठाने वाली, इसके रज:कणों से अस्पृष्ट (अछूती) उसकी उपलब्धियों में क्या हमें मानवता के दर्शन हो पाते हैं? इसी धरती को अपने श्रम-सीकरों से सींच कर मातृत्व से मण्डित करने वाले उन धूल-धूसरित अन्नदाता प्रत्यक्ष देवताओं के प्रति क्या उनके मन में थोड़ी भी सहानुभूति शेष रह जाती है? वस्तुत: ये हमारी सहानुभूति के नहीं, श्रद्धा के पात्र हैं और श्रद्धा ही नहीं; हमें तो इनसे अंतरंग स्नेह का सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये।

यहाँ आकर बुद्धिजीवियों में श्रम की प्रतिष्ठा करने वाले कार्ल मार्क्स के नामोच्चार की आवश्यकता नहीं है। यहाँ थोपा गया सिद्धान्त नहीं, सहज आदर्श और सहजात स्नेहिल व्यवहार पलता है, जिसकी शिक्षा किसी स्कूल-कॉलेज के बन्द कमरे में नहीं, कागज की लिपिबद्ध पोथियों में नहीं, प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में अपने-आप मिलती है और इस शिक्षा पर मुझे गर्व है। यहाँ आते समय मैं अपने सारे किताबी ज्ञान को अपने कार्यक्षेत्र के तंग कमरे में रखी अलमारी में बन्द कर आता हूँ, पद के मिथ्याभिमान को कुर्सी पर छोड़ आता हूँ और बन जाता हूँ प्राध्यापक से एक साधारण ग्रामीण- वैसी ही बोली, वैसा ही व्यवहार, वैसे ही विचार! और ईमानदारी से कहूँ तो यही मेरी असलियत है, यही मेरे अंतरंग व्यक्तित्व का अनावृत्त यथार्थ और मेरे-'दादूराम' का सहज-अनलंकृत सौन्दर्य है। अपने कार्यक्षेत्र में पहुँचकर तो मैं बनावटीपन का लबादा ओढ़ लेता हूँ। मेरा बाह्य कृत्रिम व्यक्तित्व यहाँ प्रधान हो जाता है, तब आप मुझे गजटेड ऑफिसर (राजपत्रित अधिकारी) कह लें, किसी दूसरे की तुलना में मुझे श्रेष्ठ कह लें अथवा हीन मान लें, किन्तु मैं जो हूँ, वह रह नहीं जाता।

किंबहुना 'मैं मनुष्य भी हूँ' इस दृष्टि से न तो कोई मुझे देखने की चेष्टा करता है और न ही मैं स्वयं को उस दृष्टि से देख पाता हूँ। कितनी बड़ी विडम्बना है यह!

मैं रेलगाड़ी से उतरकर अपने गाँव की ओर जाने वाली पगडंडी पर चल रहा हूँ। दूर तक फैले हरे-भरे खेत, स्वच्छन्द बहते नदी-नाले, उन्मुक्त उड़ान भरते पक्षी- सभी मेरे मन में एक नया उल्लास, एक नवीन चेतना और अभिनव स्फूर्ति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

का संचार कर रहे हैं। एक जकड़े हुए शहरी वातावरण से मुक्त होकर मैं अपनी मातृभूमि में विचर रहा हूँ। शहर? जहाँ हजारों की भीड़ में भी कोई अपना कहलाने वाला नहीं, कोई कुशल-क्षेम पूछने वाला नहीं। यहाँ आपको यही मिलेगा -मात्र औपचारिक शिष्टाचार और स्वार्थमय

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दादूराम शर्मा

23 जुलाई 1944 को शिवनी, म.प्र. में जन्म। संस्कृत, हिन्दी में एम.ए.। प्रकाशित कृतियाँ : रसाल और पलाश (निबंध संग्रह), अर्चना (काव्य संकलन), ईश्वरीय न्याय (एकांकी संकलन), चक्कर काली मुंडी वाले का (व्यंग्य संकलन), सिंदूर की रेखा (कहानी एवं लघुकथा संकलन)। म.प्र.शासन का युवा साहित्य सृजन प्रतियोगिता पुरस्कार, कालिदास संस्कृत उज्जैन द्वारा भोज पुरस्कार।

व्यवहार! नगरजनों के नेत्रों में आपको स्वार्थ की चंचलता थिरकती मिलेगी या संदेह की वक्रभंगिमा! यदि आप किसी का कुछ बना-बिगाड़ सकने में नितान्त अक्षम हैं, तो आपकी ओर कोई ताकने वाला नहीं, आपके पास कोई फटकने वाला नहीं! बिल्कुल निकट रहकर भी परस्पर कितनी दूरी है यहाँ! सतत् सम्पर्क में रहकर कार्य करने वाले सहकर्मी और उनके मन उन समान्तर रेखाओं की तरह हैं, जो कभी मिलती ही नहीं। तनों की समीपता मनों की दूरी को यहाँ कम नहीं करती। अपने तंग दायरे में जकड़ा यांत्रिक मानव! न तो उसके प्राणों में प्यास है, न हृदय में उल्लास! मैं एक बाड़े में कमरा नं. 04 में रहता हूँ। मेरी सारी दुनिया मानों यहीं सिमट गयी है। मेरे चार बच्चे और पत्नी-बस, यही है मेरा संसार। पड़ोसी मुझे नहीं जानते कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, और क्या करता हूँ? और न ही मुझे उनके विषय में कुछ जानने की जरूरत है। यदि मैं स्वयं को कैदी कमरा नं. 04 समझूँ तो इसमें गलत क्या है?

दूर और पास के ज्वार के खेतों से 'लाहो-लाहो', 'झर्रा-झर्रा' करके पक्षियों को उड़ाने के लिये किया जाने वाला कृषक-बालकों का शब्द वेद-मंत्रों की तरह मेरे कानों को सुख पहुँचा रहा है। और अब मैं ग्योंड़ें पर पहुँच गया हूँ। हलवाहे मुझसे मिल रहे हैं, 'पालागे' करके कुशल-क्षेम पूछ रहे हैं और मैं उन्हें 'आशीर्वाद' देकर उनकी कुशल-क्षेम पूछ रहा हूँ। कितनी आत्मीयता है यहाँ? सभी के हृदय एक अकृत्रिम अनुराग से जुड़े हैं। यह सामने आ रहा व्यक्ति मामा है मेरा। मैं ब्राह्मण हूँ, यह चमार है। मैं बचपन में इसकी गोद में खेला हूँ। यहाँ रिश्ते जाति से नहीं, जन्म से नहीं, प्रेम से, स्नेह से, अनुराग से अंकुरित और पल्लवित होते हैं। रोटी-बेटी तक ही जाति का प्रभाव मैं जानता हूँ। जातियों ने सामाजिक एकता को विखण्डित किया है, लोगों में ऊँच-नीच का भाव पैदा कर मनोमालिन्य और छुआछूत को प्रोत्साहित किया है आदि आरोप मेरी समझ में नहीं आते। यहाँ तो सभी नाते धरती से निकले, धरती से जुड़े हैं धरती पर पले हैं। सभी यहाँ 'पृथ्वी-पुत्र हैं', फिर उनमें अलगाव कैसा?

'दादू पालागे'; सामने लाठी का सहारा लेकर खड़े दो वृद्ध समवेत स्वर में मुस्कराते हुए मेरा पारम्परिक अभिवादन कर रहे हैं। इनमें से एक तो हमारे 'चौधरी मामा' हैं और दूसरे हैं 'भाई काका'। दोनों के बाल सफेद हो गये हैं, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं। कमर झुक गयी है। उम्र ने इन्हें तोड़ दिया है; फिर भी ये टूटे नहीं हैं। मन में वही उमंग, आँखों में वही चमक और मुख में वैसी ही मंद मुस्कान। दो वर्षों से लगातार वर्षा और इल्लियों के प्रकोप से फसलें चौपट हो रही हैं फिर भी ईश्वर की करुणा के प्रति इनकी आस्था डिगी नहीं, इनकी जिजीविषा का अविरल स्रोत- सूखा नहीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आस्था और आस्तिकता मानों इनकी रग-रग में दौड़ रही है। इनके जूते फटे हुए हैं, कपड़े मैले और फटे हुए हैं, किन्तु इनके मन कहाँ फटे हैं वे मैले भी कहाँ हुए हैं? कृत्रिम जड़वाद, आरोपित अभाव और अंतर्व्यापी असंतोष ने शहरी जीवन को खोखला कर डाला है। गाँव अभी इससे कुछ-कुछ अछूते हैं। किन्तु अब शहरी सभ्यता के संक्रामक रोग के कीटाणु हम जैसे पढ़े-लिखे लोगों के साथ गाँव में भी फैलने लगे हैं। हम जब-तब उन्हें एहसास करा देते हैं कि वे अशिक्षित हैं, अभिशप्त हैं, अभावग्रस्त हैं। यहाँ से जो भी शिक्षा पाने के लिए शहर गया, वह फिर यहाँ की मेहनतकश जिन्दगी बसर करने के लिए लौटा नहीं। जीवन की जो आशा-आकांक्षा इन निस्तेज बूढ़ी आँखों में मैं देख रहा हूँ, क्या वह उसी परिमाण में मुझमें है? हमारा बसन्त सचमुच कहीं खो गया है और इनके जीवन का निदाध (ग्रीष्म ऋतु) अभी कोसों दूर है। ये बूढ़े होकर भी बूढ़े होना नहीं जानते, हारकर भी हार नहीं मानते और मौत इन पर केवल एक बार हमला करेगी। किन्तु, हम तो बूढ़े ही पैदा हुए हैं। जीवन का कोई आकर्षण और उत्साह हम में नहीं। हमारी विजय भी हमें दूसरों की तुलना में पराजय ही जान पड़ती है और मौत के शिकार तो हम कदम-कदम पर हो रहे हैं। पराजय और पलायन, असंतोष और आशंका, अविश्वास और अनास्था, ईर्ष्या और अलभ्य ऐषणा! क्या मौत इनसे भी त्रासद और भयावह हो सकती है?

मैं गाँव में आकर आबाल-वृद्ध सभी से मिल रहा हूँ। कोई मेरे चरण छू रहा है, तो मेरा मस्तक किसी के पद-तल पर विनत है। अंतरंग स्नेह के इस सरस-शीतल प्रवाह में मैंने स्वयं को यानी अपनी घुटन और संत्रास को विसर्जित कर दिया है, अन्यों से तोड़ने वाला मेरा अहंभाव आज पूर्णत: गल गया है। मानव-जीवन का सच्चा सुख यही है।

यह मेरी जन्म-भूमि ही नहीं, कर्मभूमि और साधना भूमि भी रही है। 16 वर्ष पूर्व प्राथमिक शिक्षक के रूप में मैंने अपने इसी गाँव में पदार्पण किया था। तब मैं केवल मैट्रिक पास था। सिर पर से पिताजी की छत्र-छाया उठ जाने और घर-गृहस्थी का बोझ आ पड़ने के कारण मैं नियमित रूप से उच्च शिक्षा पाने से वंचित रह गया था, जिसका पछतावा मन से निकाले न निकलता था। किन्तु, इसी धरती ने मुझे धीरज बँधाया, मेरी प्रसुप्त प्रतिभा को जगाया और मुझमें आत्मविश्वास भरा। कौन कल्पना कर सकता था कि कभी कॉलेज का मुँह तक न देखने वाला स्वाध्यायी अध्यापक लालटेन के मन्द प्रकाश में विश्वविद्यालय में शीर्ष स्थान पाने की साधना में सफल हो सकेगा? फिर मैं हाईस्कूल का व्याख्याता बना। शहरी जीवन मिला, बिजली की उजली रोशनी मिली। कॉलेज तक पहुँचने की लालसा थी। संस्कृत के माध्यम से उसकी संभावना कम दिखी। इसलिए हिन्दी में भी एम.ए. किया। किन्तु चौथा स्थान ही ले पाया और अंक भी केवल 62.5 प्रतिशत। आज मैं कॉलेज में हिन्दी का प्राध्यापक हूँ, किन्तु मैं इस बात को कैसे स्वीकार न करूँ कि संस्कृत के 75 प्रतिशत अंकों और सर्वोच्च स्थान वाले एम.ए. ने ही मुझे यहाँ तक पहुँचने में सशक्त सम्बल दिया है।

फिर भी एक हृदय विदारक परिवर्तन मैं आज यहाँ देख रहा हूँ। अब पहले जैसी रामायण-मंडलियाँ और भजन-मंडलियाँ यहाँ नहीं रहीं, जिनकी श्रुतिमधुर ध्वनि से वातावरण सरस, सस्फूर्त और सप्राण हो उठता था। चौपालों पर स्वच्छन्द बतियाते लोगों के कहकहे अब सुनने को नहीं मिलते। सब मानों अपने में मस्त, अपने में व्यस्त अपने ही खोल में सिमटते जा रहे हैं। बहुत कुछ बदल गया है, केवल जीवन की विषमताओं से अछूते क्रीड़ारत बालकों की किलकारियाँ यहाँ भी अपरिवर्तित हैं। काश, मानव समाज इस बाल-वृत्ति को न खो पाता! प्रात:काल पौ फटने के साथ ही शय्या-त्याग के लिए प्रसन्नता के साथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विवश कर देने वाले कार्तिक स्नान करने वाली किशोरियों के सरस प्रभाती गान अब हमारे हृदयों को विभोर नहीं करते, प्राणों को नहीं झकझोरते। पहली बार कार्तिक की ऐसी मनहूस सुबह मैंने यहाँ देखी है। भौतिकवाद का दुर्दान्त दानव क्या यहाँ भी आकर अध्यात्म के देवताओं को पराभूत कर खदेड़ते जा रहा है? धीरे-धीरे यदि सब कुछ मिट गया, तो मेरा भारत मुझे कहाँ मिलेगा?

और वह हरी-भरी दूबों से ढँकी शस्य-श्यामल खेतों की मेड़ और उसके बीच पड़ी हुई यह शिला, जो कभी मेरी ध्यान-शिला अथवा साधना-शिला थी। अवकाश के क्षणों में इसी पर बैठ कर तो मैंने स्वाध्याय किया था। विद्वान आचार्यों के सान्निध्य में रहने वाले शिष्य भी जिस निपुणता को नहीं पा सकते, वह मैंने इसी पर बैठ कर प्राप्त कर ली थी। एकलव्य की एकान्त अरण्य में स्थापित मृण्मयी गुरु प्रतिमा से, सिंहासन-द्वात्रिंशिका में वर्णित भोजराज द्वारा प्राप्त विक्रमादित्य के चमत्कारिक सिंहासन और स्वामी विवेकानन्द की विवेक-शिला से मेरे लिए इसका महत्त्व कुछ कम नहीं-

अति् अगाध, अति ओथरो, नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहाँ, जाकी प्यास बुझाय।।

कौन कहता है कि प्रकृति जड़ है, पाषाण निर्जीव है? उन तथाकथित बुद्धिवादियों की बात मैं नहीं मान सकता, जो आज चेतनता में भी जड़ता और सजीवता में भी निर्जीवता देख रहे हैं। शुष्क-शून्य मस्तिष्क की आँखों से नहीं, सरस हृदय की आँखों से प्रकृति के प्राणवान सस्फूर्त प्रेरणाप्रद विग्रह को देखिए। यहाँ परत्व नहीं, तिरस्कार नहीं, ईर्ष्या-द्वेष नहीं, कलह नहीं, निराशा नहीं, हतवीर्यता नहीं, केवल अपनत्व है, प्यार है, मैत्री है, आशा है, और है अपराजेय पौरुष।

प्रथम मिलन की बेला में भी एक संस्कृत कवयित्री का हृदय बार-बार उत्कंठित हो रहा है। लगता है कुछ खो गया है। नहीं तो, कहीं भी तो कोई कमी नहीं दिखाई दे रही है। पति भी तो वही अनन्य सहचर है, वही माधवी निशा है, मालती पुष्पों और कदंब कुसुमों की वैसी ही कामोद्दीपक सुगंधि को लेकर मादक पवन बह रहा है, फिर भी प्रियतम के प्रगाढ़ आलिंगन में वैसा सुख, वैसी तन्मयता क्यों नहीं है? हाँ, याद आया- एक कमी हो गयी है, बहुत बड़ी कमी। अब उनके उन्मुक्त विहार के लिए नर्मदा का तटवर्ती फैला हुआ प्रकृतिक प्रांगण कहाँ-

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते,
चोन्मीलित-मालती-सुरभयो प्रौढा कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरत-व्यापार-लीलाविधौ,
रेवा-रोधसि वेतसी-तरुतले चेतः समुत्कंठते।।

इसीलिए आज कॉलेज का प्राध्यापक हो जाने पर भी मुझे वह सुख कहाँ, वैसी मनःशांति कहाँ? गंदी गलियों, बदबूदार नालियों और ऊँची-ऊँची इमारतों से घिरे शहर। अपने जीवन के भौतिक स्तर को येन-केन प्रकारेण ऊँचा उठाने में व्यस्त लोगों का जमावड़ा। भागमभाग, धकापेल, छीना-झपटी, छल-फरेब, कृत्रिम अभावों और अनेकानेक आरोपित आवश्यकताओं से निर्मित घुटन भरा वातावरण और हमारे हृदयों, प्राणों तथा आत्माओं को पीस देने वाली यांत्रिकता! इनमें मैं कहाँ हूँ? कहाँ है मेरा क्षुद्र अस्तित्व? किन्तु प्रकृति की विराटता में विलीन होकर भी मैं स्वात्मबोध से वंचित नहीं होता।

बाह्य और आभ्यंतर वसुओं (धनों) का स्रोत है यही धरती, तभी तो कवियों ने वसुधा, वसुन्धरा, वसुधानी आदि कहकर इसका यशोगान किया है। हीरे आदि रत्नों में जगमगाहट और स्वर्ण आदि धातुओं में चमक कहाँ से आई? दूर्वा का मार्दव, वर्णचित्रित सुमनों का मनोहर सौन्दर्य और मोहक सुगंधि, शस्यों की हरीतिमा और क्षुधा शांत करने की क्षमता सभी तो इसी की कोख से निकली हैं। गगनचुम्बी पर्वत शृंखलाएँ इसकी उच्चता और दुर्धर्षता की, अगाध सागर गंभीरता और रत्नमयता की, शिलाएँ दृढ़ता की, मिट्टी मृदुता की, कुसुम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कोमलता की और काँटे चुभन भरे यथार्थ की अभिव्यक्ति कर रहे हैं। धरा पर हम जो कुछ देख-सुन रहे हैं, भोग रहे हैं, वह सब इसी से निकला है। ये विभिन्न वस्तुएँ अपने विविध रूपों में इसी के प्रच्छन्न गुणों को प्रकट कर रही हैं। इनका कोई निज का अस्तित्व नहीं। जो कुछ भी है वह इसी मिट्टी से निकला है। स्वर्ग की कोटि-कोटि विभूतियाँ इसके श्रीचरणों में लोटती हैं। इसीलिए कवि-कुल-गुरु कालिदास कहते हैं- दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रम: पितु: प्रदेशास्तव देवभूमय:।

इस मिट्टी से मूल्यवान कुछ भी नहीं। यह स्वयं तो महान् है ही, अपने संस्पर्श से औरों को भी महान् बना देती है। रत्न-सिंहासन से उतरकर इसकी गोद में इसका पारस संस्पर्श पाकर ही हरिश्चन्द्र महान् बने थे। राजा से चरवाहा बनकर और धरती की सूनी गोद को रत्नगर्भा बना देने वाले बछड़े को जन्म देने वाली पय: प्रसविनी गौ की प्राणरक्षा के लिए सिंह के आगे अपने शरीर को मांस के लोथड़े की तरह डालकर ही दिलीप राजर्षि बनकर कवि कुलगुरु की प्रशस्ति के पात्र बने थे। वे जन-जीवन के सच्चे भोक्ता थे, द्रष्टा मात्र नहीं। रघु ने मिट्टी के पात्र में अर्घ्य लेकर कौत्स का स्वागत करने में जो गौरव पाया, वह उन्हें चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ देकर भी नहीं मिला। वह मृत्तिका पात्र ही उनके दानवीरत्व का प्रमाण-पत्र था। राम की भगवत्ता और महत्ता, सीता का त्यागमय स्त्रीत्व, पातिव्रत और वात्सल्य, लक्ष्मण का अनन्य भ्रातृप्रेम, भरत का त्याग सभी तो इसकी गोद से फूटे-फैले और फूले-फले। मोहन की मोहिनी छवि गोकुल की गलियों और वृन्दावन की वनस्थली की धूल में निखरी थी; द्वारका के रत्न-जड़ित सिंहासन और आकाशचुम्बी अट्टालिकाओं में नहीं। धरती से ऊपर उठने वाला ऐश्वर्य हमें अभिभूत कर सकता है, चकित और आतंकित कर सकता है, किन्तु वन्दनीय और अभिनंदनीय नहीं हो सकता। सोने की लंका ने त्रिलोकी को त्रस्त कर डाला था और स्वयं हल चलाने वाले मिथिलेश जनक ने सीता जैसी परम साध्वी पुत्री को धरती की भेंट के रूप में पाया था।

धूलिधूसरित और श्रम-सीकरों से क्लिन्न व्यक्तित्व ही हमारे हृदय में स्थान पाने योग्य है, वही हमारे लिए शत-शत वन्दनीय है। जब तक हम धरती की गोद में पले, धरती से जुड़े श्रम के देवता की अभ्यर्थना करना नहीं सीखेंगे और धरती से कटे निर्मूल ऐश्वर्यों और झूठी चमक-दमक वाले विलास-साधनों के पीछे भटकते रहेंगे, हमें सच्चा सुख और स्थायी शांति नहीं मिलेगी।

मैं इस धरती की गोद में खो जाना चाहता हूँ, इसकी मोहक छवि को हमेशा के लिए अपने हृदय में अंकित कर लेना चाहता हूँ, प्राणों में इसकी सोंधी गन्ध को बसा लेना चाहता हूँ। हे मातृभूमि! तू स्वर्ग से भी महान है। तेरा वात्सल्य ही हमें सच्चा सुख दे सकता है। तेरे स्नेहिल मातृत्व की यथार्थ अनुभूति ही हममें भ्रातृभाव जगा सकती है, एकता स्थापित कर सकती है। एक ही समष्टिगत स्वर आज मेरे प्राणों में रह-रहकर पुलक पैदा कर रहा है-

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः,
माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी-480661 (म.प्र.) मो. 08878980467

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निर्मल वर्मा का उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख'

चिथड़े में लिपटा सुख

परेश

अपने उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' का शीर्षक निर्मल ने इस उपन्यास में वर्णित इलाहाबाद में लगी एक प्रदर्शनी के स्टाल से उठाया है। यह एक कठिन उपन्यास है। भाषा तो नहीं, किन्तु अभिव्यक्ति अत्यंत रुक-रुक कर कोष्ठबद्धता की सी हालत में होती है।

निर्मल वर्मा

बहुत व्याकुल छटपटाहट है कि जो कुछ मन में रुका है, निकल जाए। बुखार या अन्य देह पीड़ाओं से जूझते व्यक्ति की यंत्रणा को कौन शब्दों में बाँध पाया है क्या निर्मल ने जानबूझकर ऐसा कथानक उठाया है? नहीं, जानबूझकर कथावस्तु ढूँढ़ने वाला लेखक, लेखक नहीं हो पाता है। निर्मल लेखक तो हैं, पूरा जीवन साहित्य को ही समर्पित किया है। जीविका इत्यादि का संशय सर्वदा ही इन्हें घेरे रहा है, किन्तु नौकरी जैसी अपमानजनक स्थिति से तो ताउम्र अपने को इन्होंने दूर रखा है।

'वे दिन' उनका प्रथम उपन्यास है। वह संप्रेषण के स्तर पर बाधित नहीं है, रोमांस का अनुभव लेखक ने किया है। यह एक रोमेंटिक और उत्फुल्ल सहज लेखन का प्रमाण है। युवा पीढ़ी और साहित्यकारों की किंचित् अग्रज पीढ़ी ने इस उपन्यास को हाथों हाथ ऊपर उठाया। कहानियाँ तब तक निर्मल की अनेक प्रकाशित हो चुकी थीं। अनुमानतः 'परिन्दे' का प्रकाशन भी इस उपन्यास से पहले हुआ है। नामवर सिंह जैसे तब तक घबराए आलोचक एक नयी कृति की तलाश में थे, जिससे उनके पाँव किसी ठोस धरातल पर टिके। उन्होंने तत्काल परिन्दे पर 'नई कहानी' का ठप्पा लगा दिया। यह छठे दशक का चमत्कार है।

निर्मल ने दूसरे उपन्यास पर काम किया 'लाल टीन की छत'। यह उनकी अपनी जमीन थी। शिमला और उसका परिवेश, जहाँ वे पैदा हुए, शिशुवत आँखें खोलकर पहाड़ों, बर्फ और लाल टीन की छतों को देखा। एक शिशु और एक किंचित् बड़ी बहन, उपन्यास के दो ही प्रमुख पात्र हैं, जो पहाड़ की सर्दियों, माँ के निरन्तर बड़े होते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पेट, नौकर, अँग्रेज बुढ़िया मिस जोसुआ के शाल-स्वेटरों जैसे लपेटने वाले वातावरण को चित्रित करने का माध्यम बनते हैं। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में बच्चों के एक चाचा भी हैं जो आर्मी से रिटायर होकर अपने अकेले बंगले में रातदिन मदिरापान करते हैं, सायंकाल नियमपूर्वक सर्वेन्ट क्वार्टर में रखी हुई एक पहाड़ी आश्रिता के पास देह-सुख के लिए जाते हैं। निर्मल ने यहाँ संयम से काम लिया है। अधिक से अधिक वह पहाड़ी औरत ही इस शिशु की तेरह वर्षीय बहिन से अपने क्वार्टर में पूछती है, 'तुम्हें खून आता है?'

वह पंत की कोमल कविता-सी बालिका तब तक इस अनुभव से अनभिज्ञ थी, किन्तु लेखक इस उपन्यास का अंत उसके प्रथम और कष्टदायक रक्त-स्राव से करता है। कुछ पात्र हैं, जो अँग्रेजी जानते हैं और जर्मन नाटककार स्ट्रिंनवर्ग के नाटक का अँग्रेजी अनुवाद हिन्दी में स्टेज करने की सोच रहे हैं, रिहर्सल करते हैं। यह सारा कार्य व्यापार देखने वाला चौदह वर्ष की उम्र का एक लड़का है जो अपनी युवा कज़िन के साथ इलाहाबाद से दिल्ली आता है। कज़िन एक बोहेमियन है और स्वतंत्र जीवन बिताने को स्वतंत्र। लिहाजा आँख मूँदकर नाटक के डायरेक्टर, जिसको उपन्यास में सभी डैरी कहते हैं, के प्रेम पाश में बँध जाती है। बम्बइया फिल्मों की तरह नहीं। बहुत दूरी रखते हुए भी चुम्बन, सेक्स, बीयर, रात भर जागना, दोस्तों के साथ निजामुद्दीन की किराए की बरसाती में रिहर्सल के बाद समय गुजारना, नहाना, कपड़े धोना, काफी पीना, बुखार में तपते अब चौदह वर्षीय कज़िन मुन्नू के माथे पर हाथ रखना, बड़ों का यह खुला सेक्स लेखक ने बुखार में तपते इस छोटे बालक की चेतना पर लाद दिया है। सचमुच पाठक को लगता है यह उसके साथ अन्याय है, क्रूर, क्रूरता से कम अभियोग इस रचना पर नहीं लगाया जा सकता।

सीधे ही इस बात का प्रमाण दिया जाए, रिहर्सल के अन्य पात्र निती भाई की गृहस्थी है, किन्तु वे रिहर्सल के बहाने अधिक समय अभिनेत्री इरा के साथ बिताते हैं। इरा का एक पत्र जो इस उपन्यास के किशोर नायक 'मुन्नू' के हाथ निती भाई को मिलता है, उनसे आत्महत्या करवा देता है।

समीक्षक को पता है ग्यारहवें अध्याय में यह हादसा होता है। 12वें अध्याय में तीन पृष्ठों में यह उपन्यास समाप्त हो जाता है। नाटक का प्रीमियर देखने की बजाय वह इलाहाबाद चला जाता है। उसकी सबसे बड़ी उत्तेजना, जब सब उसको थिएटर की अगली सीट पर बैठा देखना चाहते हैं, उसकी खाली सीट देखेंगे, इस पर पीड़न का सुख वह भोग रहा है।

क्या इतने से चिथड़े के लिए इस सम्पूर्ण उपन्यास की रचना हुई है। इलाहाबाद में प्रदर्शनी के एक खाली स्टाल में वे दोनों घुस जाते हैं। अन्दर सिंहासन बनाकर एक रानीनुमा औरत का सिर उस पर टिका है, शेष भाग छुपा है। सीढ़ियों के नीचे फटे चिथड़ों में बौना बैठा है, कहता है 'एक सवाल की एक चवन्नी' 'डरो नहीं जो चाहे पूछ लो'। वह सिंहासनासीन औरत कहती है, 'बौना ग्राहकों को खोना नहीं चाहता, एक चवन्नी की बोहनी उसे करनी है' 'तुम बहुत दुःखी दिखाई देती हो बिटिया।'

'सुख क्या होता है?' जाने कैसे उसने पूछ लिया।

बौने ने जवाब के लिए सिंहासन की तरफ देखा, बुढ़िया रामलीला की ताड़का की तरह खिलखिलाई, 'दिखाओ, मुन्नी को दिखाओ सुख क्या होता है।'

इसके बाद एक भयानक नाटक होता है, जनवरी की माघ महीने की ठंडी हवा तम्बू का रोशनदान खोल उसके ढक्कन को फड़फड़ाने लगती है। बौना अपने चिथड़ों में इस सर्द हवा का सामना करता है, किन्तु सभी ओर से नाकाफी पड़तीं ये थिगलियाँ हवा के सामने घुटने टेक देती हैं। बौना पूरी तरह नंगा हो गया है। सर्दी से कँपकँपा रहा है, शायद सुख का प्रतीक एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छोटा सा चिथड़ा लंगोट की जगह बचा था, उसने वह भी उतार दिया। क्या पीड़ा के सामने बिल्कुल नग्न होना सुख है? या इस नाम मात्र के सुख को भी फेंक देना पूरा सुख है?

उपन्यास का आकर्षण इन विचित्रताओं और फिलासफी में भी नहीं है, न बुखार की तकलीफ में भाषा और गद्य की अनेकानेक उपमाओं में भी हैं। निर्मल का कोई क्लोन बनाना असम्भव। इस बुखार का ही एक चित्र देखें, 'वे लम्बी दुपहरें थीं। मकबरे के बाग में लेट जाता। ऊपर चीलें उड़ती रहतीं। नीचे पत्ते सिर धुनते। सारा शहर एक अदृश्य काली सूई सा घूमता। मार्च से उतर कर अप्रैल की चढ़ाई चढ़ने लगता, तब उसे लगता जैसे समय कोई ऊँचा पहाड़ है, सब लोग अपनी-अपनी पोटलियों के साथ ऊपर चढ़ रहे हैं, हाँफ रहे हैं, बिना यह जाने कि ऊपर चोटी पर वे सब हवा में गायब हो जाएँगें और धूल में लदी-फंदी पोटलियाँ पता नहीं उनमें क्या भरा है, प्रेम, घृणा, निराशा, दुःख, नीचे लुढ़का दी जाती है, जिन्हें दूसरे लोग पकड़ लेंगे और फिर उन्हें पीठ पर ढोते हुए ऊपर चढ़ने लगेंगे।'

प्रत्येक लेखक का एक छुपा हुआ स्थल होता है, समीक्षक का भी, जिसे वह चालाकी से अंत तक अपने पाठक से छुपाए रहता है। अब इस टिप्पणी का अंत ही है सो पाठक को बताए बिना भी चैन नहीं, फिर इतनी देर तक डमरू क्यों बजाया, तमाशा क्यों खड़ा किया, मजमा क्यों इकट्ठा किया। वह दस या चौदह वर्षीय 'मुन्नू' के लिए डैरी की एक 15 वर्षीय बहन भी है, केवल चड्ढी में, जो शाम के अँधेरे में इसे बिना रुके चूमने लगती है फिर धक्का देकर बाहर कर देती है यह कहकर, 'डैरी मेरे भाई नहीं, तुम्हारी बिट्टी के लवर हैं।'

मुन्नू ने दोनों को प्रत्येक रातों में अभिसार करते, चूमते देखा है। कितनी भयानक घृणा होती है एक असहाय छोटे भाई को, जब वह देखता है एक दूसरा पुरुष उसकी बहन को निरंतर चूमता है। लवर के चले जाने के बाद यह चचिया बहन उसी बिस्तर पर सोती है जिस पर मुन्नू है। कामोत्तेजना से तपती एक युवा देह, जिसका भोग नहीं हुआ, गरम करके जिसे छोड़ दिया गया है, उम्र में सैक्स के अयोग्य चाचा के लड़के का वह क्या करे! यही वह पैंथर है जो मुन्नू को मिशनरियों की कहानी से निकाल कर यहाँ दिल्ली की बुखार में अपनी पीली आँखों से घूरता रहता है। यहाँ रातों में जब एक भूखी युवती बीच में मूढ़ों की दीवार बनाकर गर्म साँसे छोड़ती है।

यह अतृप्ति ही बुखार है, (यह उपन्यास incest के आसपास घूमता है) स्थूल रूप में मुन्नू का किन्तु प्रतीक रूप में सारे पात्रों का, किसी को भी सुकून नहीं है, नाटक में वे केवल अपनी शर्म छुपाते हैं। अपना असली दुःख, हाँ एक सुख का क्षण आता है, पाठक के लिए, जो यह पुस्तक 125 रुपये में खरीदकर एक-एक पंक्ति की झाड़ी से उलझता हुआ, उन सारे कांटेदार ब्यौरों से लहूलुहान होता हुआ, जिनसे उसका साधारणीकरण नहीं होता।

इरा ने मुन्नू से फोन पर अमरीकी लाइब्रेरी में मिलने को कहा, 'बिट्टी को नहीं बताना।' यहीं से उस रहस्यमयी आद्या का छुपा-छुपी का खेल शुरू होता है, 'उसके बाल खुले थे, होंठों पर हल्की से लिपस्टिक थी, वह साड़ी पहने थी, कंधे पर काली शाल...'

दिल्ली की एक गर्म दुपहरी में एक युवती का इससे सुन्दर कोई पहनावा नहीं हो सकता। वे सारे उबड़-खाबड़ वर्णन, चमगादड़, मकबरे, मिसेज पंत के कुत्ते, मुन्नू के तपते बुखार के क्षण, सब इस रूप के आलोक में एक शीतलता बनकर झरने लगते हैं। लाइब्रेरी में बूढ़े लोगों ने भी इनकी तरफ देखा, दोनों बाहर आए।

जींस पहनकर बेहूदा बनी रहने वाली नारी का यह दिव्य रूपान्तरण है। साड़ी, कंधे पर काला शाल, खुले बाल, होंठों पर किसी हल्के रंग का लिपस्टिक, (शायद पतले होंठ), माथे पर बिन्दी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(बड़ी या छोटी) ...पाठक को यहाँ मुक्ति मिलती है। नाम भी सुन्दर है 'इरा' (जयशंकर प्रसाद के तीसरे और अधूरे उपन्यास की नायिका) क्या परम्परागत पाठक को प्रसाद के बाद हिन्दी कथा साहित्य में उस अधूरी नारी की पूर्णता की प्रतीक्षा थी? नारी जिस क्षण जिसके साथ होती है, उसी की होती है, उसके प्रेम का लक्ष्य कोई भी हो, साथ वाले की सेक्स की उम्र कोई भी हो, यह क्षण उपन्यास में पाठक का अपना हो जाता है, उसे रस मिलता है, रस ही मोक्ष है।

आगे के वर्णन में बहुत सी बातें पाठक को अपनी ओर से भरनी होगी। लगता है, प्रेम या रोमांस से हीन इस कथानक में इरा और अपने मुन्नू का यह मिलन एक पीड़ादायक प्रेम की पहली तरंग सा काँप रहा है। इरा ने उसको एक छोटा लड़का समझकर फुसलाया है, अपने पुराने प्रेमी से छुटकारा पाने के लिए। वह एक चिट्ठी दे देगी और मुक्त हो जाएगी।

प्रेम एक पैंथर है, वह अपने शिकार को इतनी जल्दी नहीं छोड़ता। पंजे का पहला प्रहार कर उसे तड़पने के लिए छोड़ देता है। खुद थोड़ी दूर बैठकर आँखें गड़ा कर इतमिनान से असली चोट का मौका तय करता है। इरा..आ गई है, उसकी कुर्सी के पास लाइब्रेरी में, वह उठ खड़ा होता है। पहली बार यह युवा लड़की, जो प्रेम का स्वाद चख चुकी है, अनेक बार एक शादी- शुदा परपुरुष के साथ हमबिस्तर हो चुकी है। अचानक अपनी चीते जैसी मांस भक्षण की भूख को जागते हुए अनुभव करती है। लड़का चाहे चौदह वर्ष का हो, किन्तु खड़ा होकर पूरे पुरुष जितनी ऊँचाई में इरा की ठुड्डी और माथे के बिन्दु तक आ गया होगा। होंठों की सीध में होंठ। लेखक लिखता है। इरा के होंठ खुल गए। पाठक! आप बताइये। सेक्स की आदिम भूख और क्या होती है, जैसे नींद में सोए बच्चे के होंठों से कुछ भी लगाओ, अंगुली या रबड़ की टिप्पी, वह नींद में होंठ खोल देता है। उसे एक ही बात का सहज ज्ञान हुआ है, स्तनों का अग्रभाग जहाँ होंठ लगते ही वह दुग्धपान कर सकता है।

किसी भी लड़के की देह की सुगंध, देह अनुभव से गुजरी युवती को पागल कर लेती है। इसको नहीं मालूम वह क्या कर रही है। बाहर निकल कर वे एक टैक्सी वाले सरदार को जगाते हैं, सरदार को लगता है वह कोई सपना देख रहा है।

समीक्षक अपने पाठक से यहाँ सीधा संवाद करना चाहता है, क्यों, क्यों टैक्सी ड्राइवर को यह सपना लगता है? इसलिए कि वह पैंथर को अपने शिकार को दबोचने के क्षण में बीच में फँस गया है, पूछता है, 'कहाँ जाना है?'

बहुत कोमल धागों से बुनी हुई रचना है यह 'एक चिथड़ा सुख' किन्तु धागे कितने भी रेशमी रहे हों यदि पुराने पड़ कर चिथड़े रह गए हों, तो चाहे आप अपने रूमाल की तरह अपने मुँह से बार-बार लगाइये, एक स्त्री से संभोग के पहले अनुभव का स्वाद दुबारा कभी नहीं दुहरता। प्राय: सभी स्त्रियाँ अपने मेट को निरन्तर ना कहकर आत्महत्या करवा देती है। निती भाई ने ठीक किया, पहली ही ना में जीवन का अंत कर लिया। खुद पैंथर के पंजों के नीचे चले गए। इसे आप साहस कह सकते हैं। निर्मल एक साहसी लेखक हैं। अपनी रचनाओं में निरन्तर इस पैंथर का सामना करते रहे हैं, अपने अंतिम उपन्यास, 'अंतिम अरण्य' तक। इति।

प्रो. परेश : 1251/8-सी, चण्डीगढ़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बेबी कुमारी

25 अक्टूबर, 1984 को मुजफ्फरपुर, बिहार में जन्म। दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए.। विभिन्न पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित। हिन्दी अकादममी, दिल्ली द्वारा कविता के लिए नवोदित लेखक पुरस्कार प्राप्त। सम्प्रति दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में शोध छात्रा।

नमी

जी भर के
बरसी हैं
यादें
बो दूँगी
नये सपने
फिर से
लेकिन,
मन की माटी में
हाल* अभी ज्यादा है।

हाल = नमी

रोज...

रात,
धुआँती है
और
जज़्ब हो जाती है
एक कविता
तकिए के गिलाफ में
सुबह
राख मसलकर
आँखों में आँज लेती है
होंठों पर गोंज लेती है
गीत
धँस जाती है
दिन में
सूखी लकड़ियाँ
तलाशने।

चाँद

कल रात
धरती ने
चूल्हा जोड़ा
तवा चढ़ाया
और
गोल-गोल
चाँद गढ़ लिया
आसमान में टँगा
शशांक, हिमांशु, अंशुल
देखता रहा
पूरे कुनबे को
आँसू सहलाते
कौर निगलते।

30 वर्ष की आयुसीमा में आनेवाले नये रचनाकार इस स्तम्भ के लिए अपनी कविताएँ और दो-तीन पृष्ठों की छोटी कहानियाँ भेजें। स्तम्भ का नामकरण वरिष्ठ कवि विजेन्द्र की एक कविता पुस्तक के शीर्षक से किया गया है। आभार।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

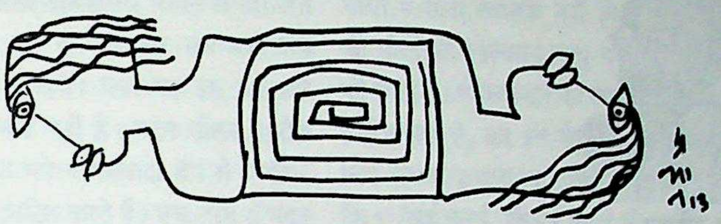

क़िस्से

कहाँ पता था?
सालों की गिरहें
और वर्षों की गाँठें
मन पर
इतनी कसेंगी
इतनी गठेंगी
कि
टूट जाएगी
डोर ही

'मेरे' और
'तुम्हारे'
हिस्से
गाँठों और
गिरहों के क़िस्से।

अकाल

धूसर आँखें
टँगी हैं
आसमान पर
भीतर बाहर
तना है
सुखाड़
खँखरा* फटक रहीं
जिंदगियाँ
टटोल रही हैं
साबुत बचा
अनाज।

खँखरा : धान की खराब फसल

मार्फ़त- सतीश त्यागी, डबल्यू ज़ेड-150, बसई दारापुर, नई दिल्ली-110015
मो.09899688073

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मदन मोहन

ग्रामीण जीवन के यथार्थ का प्रामाणिक आख्यान

स्वप्निल श्रीवास्तव

जहाँ एक जंगल था (उपन्यास) : मदन मोहन
अंतिका प्रकाशन : सी-56, यू.जी.एफ.-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन- II ग़ाज़ियाबाद-201005 (उ.प्र.)
मूल्य : 495 रुपये।

उदारीकरण और अपसंस्कृति ने भारतीय सामाजिक संरचना को बाहर से भीतर तक प्रभावित किया है। शहर की संस्कृति पहले से ही प्रदूषित थी, लेकिन अब गाँव का स्वरूप भी पहले जैसा नहीं रह गया है। लोक संस्कृति विनष्ट हो रही है। पारस्परिक सम्बन्ध स्वार्थ पर टिके हुए हैं। आपसी भाईचारा खत्म हो रहा है। पूँजीवादी संस्कृति का प्रभाव गाँव के जीवन पर प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है। संयुक्त परिवार लगभग टूट चुके हैं। उनका शहरों की ओर पलायन हो रहा है। इसे एक तरह का विस्थापन कहा जाय, तो अनुचित न होगा। नौकरी और बेहतर जीवन की खोज में गाँवों की एक बड़ी आबादी शहरी जीवन की ओर उन्मुख हो रही है। इस ट्रेजिडी का सबसे ज्यादा शिकार मध्य वर्ग हो रहा है। गाँवों की आबादी लगातार कम हो रही है और शहरों की जनसंख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। इस असंतुलन ने बहुत सी समस्याओं को जन्म दिया है। एक आंकड़े के अनुसार देश के डेढ़ करोड़ घर जनविहीन हैं। गाँव से शहर की ओर पलायन करने वाले लोगों का गाँव से रिश्ता समाप्तप्राय हो रहा है। वे तीज-त्योहारों में भी गाँव नहीं लौटते। उनका जीवन शहर और गाँव के बीच झूलता रहता है। न वे अपनी जड़ों को बचा पाते हैं और न पूरी तरह आधुनिक हो पाते हैं। वे जीवन भर इस विडम्बना को झेलने के लिए अभिशप्त होते हैं। अधिकतर लोग अपनी जमीनें बटाई पर दे देते हैं। गाँव में नियमित आवाजाही न होने के कारण उनकी जमीन और दीगर सम्पत्तियाँ असुरक्षा की भेंट चढ़ दबंगों-बेईमानों के कब्जे में चली जाती हैं।

सुपरिचित कथाकार मदन मोहन के उपन्यास 'जहाँ एक जंगल था', का बाहरी ताना-बाना तो यही है, पर अन्तर्वस्तु में वर्गीय एवं वर्णगत विषमता के मूल कारकों की पहचान के साथ प्रतिरोध की प्रामाणिक परिस्थितियाँ विन्यस्त हैं। इस उपन्यास के कथा का केन्द्र पूर्वी उ. प्र. का वह इलाका है जहाँ टांगिया मजदूरों का शोषण हो रहा है। जंगल पार्टी एवं मुहनोंचवा का आतंक है। सुमित्रानन्दन पंत की मशहूर पंक्ति 'अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सबका मन चाहे' को याद करना यातनादायक हो चुका है। यह भाव अब ग्राम्य जीवन से तिरोहित हो चुका है। इन कारणों का समाजशास्त्रीय अध्ययन होना चाहिये। मगर यह इस उपन्यास लेखक का अभीष्ट नहीं है। मदन मोहन ग्रामीण अंचल की कथा को यथार्थवादी ढंग से निर्भय-निर्मम होकर उद्घटित करते हैं। एक तरह से मदन मोहन ने इस तरह की कथा कह कर जोखिम उठाया है। हमारे समय में स्त्री विमर्श, देह विमर्श और दलित विमर्श की अनगूँज सुनाई पड़ रही है। नागर कथाओं की पिपिहिरी बज रही है। ऐसे वक्त में मदन मोहन ने एक ऐसे वर्ज्य विषय की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, जिस ओर कथाकारों की दृष्टि कम ही जा रही है।

आज के गाँव प्रेमचन्द के समय के गाँव नहीं रह गये हैं, उनका स्वरूप पूरी तरह बदल गया है। वहाँ सामंतवाद खत्म नहीं हुआ है। कोढ़ में खाज की तरह वहाँ पूँजीवादी ताकतें शोषण के लिए संगठित हो रही हैं। इस सार्वजनिक लूट में आला अफसरों से लेकर ग्राम प्रधान तक शामिल हैं। इन्हें सत्ता का संरक्षण मिला हुआ है, पुलिस की भूमिका के बारे में कहना क्या, वह समाज विरोधी ताकतों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है।

इस उपन्यास का नायक गोरखनन्दन गाँव पहुँच कर इन्हीं सवालों से जूझता है। यह पूर्वी उ.प्र. का वह इलाका है, जिसकी सीमायें नेपाल को छूती हैं। कथा का केन्द्र मालेपार गाँव और उसके आसपास का ग्रामीण क्षेत्र है। कथानायक कानपुर में नौकरी करता है और अपनी पत्नी के साथ गाँव आता है। उसे लगता है उसके गाँव में बहुत कुछ बदल गया है। उपन्यास पढ़ते समय हमें यह याद रखना चाहिये कि यह पूर्वी उ.प्र. का वह इलाका है, जहाँ इंसेफेलाइटिस नाम की जानलेवा बीमारी का सर्वाधिक प्रकोप है। इस बीमारी से सबसे ज्यादा बच्चों की मृत्यु होती है। इसे इस क्षेत्र में 'नइकी बेमारी' के नाम से भी जाना जाता है। यह बीमारी 30-35 वर्षों से महामारी का रूप ले रही है, लेकिन सरकार ने इस बीमारी का भारत में होना स्वीकार नहीं किया है। इस तरह की मौतों को रहस्यमय मृत्यु मान कर लीपापोती की जाती है। गोरखनन्दन का लड़का, जो अमेरिका में वैज्ञानिक है, वह इस रोग का टीका बनाने के लिए प्लान्ट लगाना चाहता है। उसका कथन है कि - 'थर्ड वर्ल्ड, जिसमें भारत भी शामिल है, में बीमारी के कारकों को बनाये रखने में डवलप्ड कन्ट्रीज की गहरी रुचि है, क्योंकि ये देश ही उनके अच्छे मार्केट हैं... थर्ड वर्ल्ड की सरकारें बड़े विकसित देशों की दलाल हैं... मगर इंडिया में पोलिटिकिल पार्टियों के वोट बैंक और क्लास मेंटालिटी का जो चक्कर है, वह उसके इप्लीमेंटेशन में आड़े आता रहा है।' डॉ. विकास यह भी जानता है कि जापानी इंसेफेलाइटिस के वायरस सूअरों से फैलते हैं। यदि इन इलाकों से इनको हटा दिया जाय, तो बीमारी खत्म हो सकती है, लेकिन सूअर पालन एक विशेष जाति करती है, और यह जाति विभिन्न पार्टियों का वोट बैंक है।

अमेरिका जैसे मुनाफाखोर देश की रुचि किसी बीमारी को जड़ समेत नष्ट करने में नहीं, बल्कि उनके जरिये मुनाफा कमाने में है, इससे उन भारतीयों के चरित्र को समझा जा सकता है, जो अमेरिका की बहुराष्ट्रीय संस्थाओं में नौकरी कर रहे हैं। उनका उद्देश्य अपने देश के हित में कार्य करना नहीं, बल्कि अपने शत्रु से मिलकर मुनाफा कमाना है। यह क्रूर पूँजीवाद है, जिसके पंजे और दाँत बहुत नुकीले हैं, वे विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को निगल सकते हैं। गोरखनन्दन को जब अपने बेटे विकास की इस मनोवृत्ति का पता चलता है, तो उनका मोह भंग हो जाता है, जिसे हम तथाकथित विकास कहते हैं, उसके पीछे एक लूट की संस्कृति है। उ.प्र. में हुआ राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना का घोटाला इस तथ्य का ज्वलंत उदाहरण है। गलती से ही सही, एक समय में राजीव गाँधी ने कहा था कि योजनाओं का पन्द्रह प्रतिशत विकास में खर्च होता है, बाकी लूट में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चला जाता है, जिसमें योजनाओं से जुड़े हुए लोगों की हिस्सेदारी है। सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का लाभ गाँव को नहीं मिल पाता है, नरेगा जैसी योजनाओं का हस्र हम देख रहे हैं।

जब कॉमरेड राकेश मिश्र ग्राम प्रधान चुल्हाई के दुष्कर्मों का कच्चा चिट्ठा जन सूचना के अधिकार के तहत प्राप्त कर लेता है, तब उसकी जाँच करने बड़े हाकिम आते हैं। उनके साथ मीडियाकर्मी भी मौजूद हैं, लेकिन जाँच का कोई नतीजा नहीं निकलता, सब कुछ मैनेज कर लिया जाता है। बस हाकिम द्वारा ग्राम प्रधान को डाँट पिलायी जाती है, और मामला यह कह कर रफा-दफा कर दिया जाता है कि ग्राम प्रधान तीन माह में शिकायतें दूर कर लें। इसे जाँच नहीं महज एक प्रहसन कहेंगे, जिसके मंच हमारे गाँव बनते जा रहे हैं।

मदन मोहन ने गाँव में चल रही योजनाओं और वहाँ की तुच्छ राजनीति की वीभत्स तस्वीर प्रस्तुत की है। राजनीति का उद्देश्य जनहित नहीं है, बल्कि राजनीति निवेश का क्षेत्र बन गया है। चुनाव इतना महँगा हो गया है कि उसे कोई ईमानदार नेता लड़ नहीं सकता है। इसलिए राजनीति में पूँजीपति डॉन माफिया और ठेकेदारों की आमद हो रही है। उन्हीं से जनतंत्र बन रहा है। जनता जाति धर्म और सम्प्रदाय में विभाजित हो गयी है। जनता के चरित्र में भी कम बदलाव नहीं आया है। शायद इसी तरह की जनता के लिए ब्रेख्त ने कहा था कि ऐसी जनता को बरखास्त कर देना चाहिये।

इस उपन्यास का एक मात्र सांसद प्रतापादित्य है, जो लोगों को धर्म की अफीम खिला कर असली मुद्दों से ध्यान हटाने की कोशिश करते हैं। उन्हें उनके बराबर सिक्कों से तौला जाता है और नोटों की माला पहनाई जाती है। सांसद जी के विचारधारा के भारी समर्थक है। एम.एल.ए. और एम.एल.सी. भी उनके समर्थन में खड़े हैं। गाँव का परिदृश्य विदूषकों और खलनायकों से भरा हुआ है। प्रतापादित्य जैसे लोग एक नाम नहीं एक प्रवृत्ति है, लेकिन उनकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि उन्हें उखाड़ फेंकना कठिन कार्य है। इसके लिए जन चेतना की जरूरत है। हालाँकि इस क्षेत्र में राकेश मिश्र जैसे जनवादी नेता काम कर रहे हैं, लेकिन उन्हें इसलिये सफलता नहीं मिल रही है, क्योंकि उनके साथ जनता की अपेक्षित भागीदारी नहीं है। समाज विरोधी शक्तियाँ संगठित हैं। उनके ब्यूह को तोड़ना आसान नहीं रह गया है, क्योंकि उनको सत्ता, प्रशासन और पुलिस का वरद्हस्त प्राप्त है।

गोरखनन्दन के गाँव में आने का उद्देश्य जमीन बेचना है, ताकि वे अपने बेटे के प्लान्ट में निवेश कर सकें, लेकिन उनकी जमीन पर कई लोगों का गैर कानूनी कब्जा है। गाँव की जमीनों पर भूमाफिया की नजर है, लेकिन जब कथानायक को पता चलता है कि उनका बेटा विकास का उद्देश्य इंसेफेलाइटिस से बच्चों को बचाना नहीं, बल्कि मुनाफा कमाना है, इसलिए वह अपने फैसले पर पुनर्विचार करता है और अपनी जमीन - घर राकेश मिश्र के संगठन और पुस्तकालय को दे देता है। यहाँ हम गोरखनन्दन के चरित्र का उदात्तीकरण देखते हैं। गोरखनन्दन कॉमरेड राकेश मिश्र को जो पत्र लिखते हैं, उसके कुछ अंश महत्त्वपूर्ण हैं : 'दरअसल बाबा', इस तरह मैंने अपनी मुक्ति का रास्ता भी निकाला है, उस अपराध बोध से मुक्ति का, जो प्रेत की तरह अब तक मेरा पीछा करता रहा है। वह था जनविद्रोह की आग से डर कर भाग जाने का अपराध बोध। मुझे लगा कि तुम मेरे द्वारा छोड़ दिये गये काम को आगे बढ़ा रहे हो और तुम मेरी तरह पीछे मुड़कर नहीं देखोगे।

कतिपय पाठक - आलोचक यह आक्षेप लगा सकते हैं कि गोरखनन्दन का चरित्र पलायनवादी है, किन्तु यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। उसके लिए मध्यवर्गीय चरित्र के भीतर पैठकर वास्तविकता को जाना जा सकता है। इस उपन्यास में पैखी के चरित्र को नजरअंदाज करना कठिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होगा। दलित वर्ग की इस स्त्री के साथ गोरखनन्दन का बालपन से प्रेम था। गोरखनन्दन के साथ पैखी के प्रेम दृश्य का वर्णन मदन मोहन ने मनोयोग से किया है। विवाह के बाद पैखी अपने शराबी और दुराचारी पति का साथ छोड़कर उससे लड़- भिड़ कर अपने मायके आ जाती है और मजूरी धतूरी करके अपना जीवन यापन करती है। गोरखनन्दन पुन: अपने अधूरे प्रेम की डोर पैखी के साथ बाँधते हैं, और उससे ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

गोरखनन्दन की पत्नी सुमित्रा उनसे कहती है – हाँ हमको ताने दे रही थी कि हम गाँव के गुंडों, बेईमानो से डर गये और सब कुछ छोड़कर भाग रहे हैं। आपको कह रही थी कि आप जनम के डरपोक हैं, भगोड़े हैं।

इस तरह पैखी हमारे सामने एक सचेत चरित्र के रूप में सामने आती है, और पाठकों के लिये सवाल छोड़ जाती है। वह एक विराट-यादगार चरित्र के रूप में खड़ी होती है।

गोरखनन्दन की जमीन पर धर्मदेव यादव का कब्जा है, लेकिन एक षड्यन्त्र के जरिये धर्मदेव यादव प्राथमिकी दर्ज करता है कि गोरखनन्दन ने उसके ऊपर हमला करवाया और चोट पहुँचाई है।

अन्ततः गोरखनन्दन गिरफ्तार हो जाते है और मानसिक यंत्रणा में चले जाते हैं। कोर्ट-कचहरी, थाना सब उनके विरुद्ध खड़े हो जाते हैं। मौजूदा शोषक व्यवस्था द्वारा रचित षड्यंत्र को मदन मोहन बहुत कुशलता से बेनकाब करते हैं। अब हमारी न्यायपालिका भी निरपेक्ष नहीं रह गयी है। अब आम आदमी किस संस्था पर भरोसा करे?

इस उपन्यास में बहुत सी कथायें और उपकथायें हैं। इसमें नेगरिया जाति का उल्लेख किया गया है, जो शादी ब्याह और संतान के जन्म के समय लोगों से नेग लेती थी, लेकिन यह प्रथा समाप्त हो गयी है। इस जाति की लड़कियाँ अब जिस्म फरोशी के धंधे में आ गयी हैं। कठघोड़वा की नाच जैसी नृत्य विधा दम तोड़ रही है।

स्वप्निल श्रीवास्तव

मदन मोहन ने पूर्वी उ.प्र. के इस मैले आँचल की कथा बहुत साफगोई से कही है। इन कथाओं की प्रामाणिकता इसलिये है कि लेखक स्वयं इस इलाके का एक नागरिक है और भोक्ता भी है। इस इलाके को लेकर उपन्यास तो लिखे गये हैं, लेकिन जिस विषय को मदन मोहन ने उठाया है, वह विरल है।

इस उपन्यास को पढ़ते हुए भाषा पर बरबस ध्यान जाता है। इस उपन्यास की भाषा आयातित नहीं है, बल्कि यह उस इलाके की भाषा है, जिसे आधार बनाकर यह उपन्यास लिखा गया है। इस उपन्यास की पठनीयता गजब की है, जिसके विवरण हमें विचलित करते हैं और ग्राम्य जीवन के उस यथार्थ से हमारा सामना करवाते हैं, जिस पर प्रथम दृष्टया विश्वास करना कठिन है। क्रूर यथार्थ की तस्वीरें हमें मोहित नहीं करतीं, बल्कि विचलित करती हैं। मदन मोहन ख्याति प्राप्त कहानीकार हैं। उन्होंने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहानियाँ लिखी हैं, लेकिन उनकी अपेक्षित चर्चा नहीं हो सकी। हम सब जानते हैं कि कैसे चर्चायें प्रयोजित की जाती हैं। मदन मोहन निस्पृह कथाकार हैं। साहित्य उद्योग के समीकरण उन्हें पता नहीं हैं। मालूम भी हैं, तो उनसे उन्हें कुछ लेना-देना नहीं हैं। यह मदन मोहन का पहला उपन्यास है, लेकिन पहले उपन्यास की तरह नहीं लगता, यह पूरी तरह मैच्योर और यथार्थवादी उपन्यास है – श्रेष्ठ औपन्यासिक कृतियों के साथ अपनी जगह सुरक्षित करता हुआ।

स्वप्निल श्रीवास्तव : 51, अवधपुरी कालोनी, अमानीगंज, फैजाबाद-224001

मो. 09415332326

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

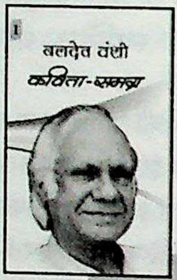

नए इन्सान का अध्यात्म

हेमन्त कुकरेती

कविता समग्र : बलदेव वंशी : सं. कृष्णदत्त पालीवाल
किताबघर प्रकाशन : 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 (तीन खण्ड) मूल्य : 1750 रुपये।

हिन्दी कविता में कई प्रकार की आवाजें हैं; क्योंकि उसके स्रोत अलग-अलग दिशाओं में फैले हैं, इसीलिए रस-गंध-स्पर्श इत्यादि ऐंद्रिक धरातलों पर इसमें भी अलग-अलग किस्म के आस्वाद और अनुभव मिलते हैं। इस नजरिए से देखें तो बलदेव वंशी की काव्य-यात्रा हिन्दी कविता के एक अलग तेवर से परिचित कराती है। उनकी कविताएँ इस बात की साक्षी हैं कि कवि कठिन उलझे हुए शहरी जीवन की जटिलताओं को आसानी से ऐसा काव्य-अनुभव बना देता है जो सबकी समझ में आ जाता है।

बलदेव वंशी की यहाँ एक स्वर आध्यात्मिक चेतना का भी है। उन्होंने संत साहित्य का गहरा अध्ययन किया है। इसकी छाप उनकी कविताओं और चिन्तन पर भी है। खास बात यह है कि बलदेव वंशी का आध्यात्मिक दर्शन नए मनुष्य के जीवन जगत की सच्चाइयों से जुड़ा है इसलिए उसमें चौंकाने वाली रहस्यमयता और चतुराईपूर्ण कलाबाजी नहीं है। कवि ठीक अपने समय में खड़ा होकर दुनिया को उसके यथार्थ रूप में देखता और प्रस्तुत करता है- 'श्वासों से रहित हैं/चेहरे/सोए हुए गहरी नींद में/खोए हुए गहरे/पानी में/भूल जाता है व्यक्ति/कौन-कब आया/किन चेहरों के साथ खेला/किन मोहरों के साथ/जीता/कि हारा/कब चला गया?/' यहाँ मनुष्य खेल नहीं रहा; उससे खेला जा रहा है।

कवि की दुनिया मनुष्य के कष्टों की किताब है। ऐसे मनुष्य की जो डरकर भागता नहीं है। मुश्किलों का सामना करता है। उस मनुष्य का अतीत संघर्षों से बुना गया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। उसके वर्तमान में नसों को तोड़ने वाला द्वन्द्व पसरा हुआ है और उसका डरावना भविष्य कतई अनिश्चित है। इसीलिए उसमें गहरी प्रश्नाकुलता है– 'यों आश्वासनों से कब तक/मापते रहोगे मेरी यातनाएँ?.../गहराते श्वासों के नीचे दबी/एक बहुत पतली लकीर है जो पैनी हो रही है.../मेरे धैर्य के लड़खड़ाते पाँव/छाती के सफेद होते बाल/आँखों में निराशा, पीड़ा, हताशा के/मिले-जुले रंगों की आँधी/गहरे उतरते जड़ता के बिम्ब' यह भावुक काव्य-पंक्तियाँ नहीं जीवन का डरावना और अंतहीन नाटक है।

ऐसी स्थितियों में कोई भी नियतिवादी होकर सच से बच सकता है, लेकिन बलदेव वंशी का कवि सच का सामना करता है। यह हिम्मत उनके शुरुआती कविता संग्रह 'कहीं कोई आवाज नहीं' से लेकर इस सदी के पहले दशक में लिखी कविताओं तक में फैला हुआ है। बलदेव वंशी के यहाँ जो जीवन की चमक है वह इसी रगड़ से पैदा हुई है।

बलदेव वंशी ने आपातकाल के अँधेरों को भी उजागर किया और आजादी के बाद असली आजादी पाने के लिए छटपटाते मनुष्य के साहस और जुनून को भी अर्थ दिए हैं। यही कारण है कि उनके यहाँ 'हवा में खिलखिलाती लौ' और 'नदी पर खुलता द्वार' जिस प्रतीकार्थ को व्यक्त करते हैं उसे 'इतिहास की आग' चखने वाला कवि ही व्यक्त कर सकता है।

बलदेव वंशी ने अपना सरोकार स्पष्ट करते हुए राजनीतिक कविताएँ लिखीं, लेकिन इसी के साथ ही उन्होंने प्रकृति के नैसर्गिक अनुभवों को भी दर्ज किया– 'जब-जब ये पत्थर गाते हैं पागलपन में/तो आकाश में उड़ते पक्षी तक/अपना रास्ता भूल जाते हैं। अपनी चोंच में पकड़ा हुआ अन्न का दाना/अपने भूखे बच्चों के हलक में न रखकर/इन पत्थरों के सीनों में रोप आते हैं/पत्थर अब भी गाते हैं।' इन प्रकृति-छवियों में गतिशील बिम्ब दरअसल जिन्दगी के धड़कते हुए जीवंत चित्र हैं। प्रकृति के बहाने कवि जीवन की लय-ताल और छंद को आधुनिक जीवन-राग के रूप में नियोजित कर रहा है। इस सिलसिले में कवि मुख्य-धारा की हिन्दी-कविता में प्रकृति-अनुभवों के अभावों को पूरा करने की कोशिश भी कर रहा है। इस तरफ हरिवंशराय बच्चन ने भी इशारा किया है-'प्रकृति और ऋतुएँ भी आपके कवि को बड़ी सूक्ष्मता से प्रेरित करती हैं-'सरदी' को 'गुरबत पर अय्याशी की सवारी' और 'बादल' के लिए 'आपसी गिले' जो बहुत बार 'सुने-कहे' कहना आपकी मौलिक सूझ है।

हेमन्त कुकरेती

बलदेव वंशी ने बच्चों की दुनिया पर भी डूबकर लिखा है। यह दुनिया ऊपर से आसान लगती है, लेकिन इस पर लिखना एक बड़ी चुनौती है– 'अकेला बच्चा/अपनी कमीज के कॉलर/दाँतों में चबा रहा है/नहीं/बच्चा अकेलेपन को/गिलहरी की तरह खा रहा है।' बच्चे को अगर हम अकेला कर देंगे तो-'अकेला बच्चा/खिलौनों से नहीं खेल रहा/बल्कि तोड़ रहा है/नहीं/बच्चा कभी कुछ नहीं तोड़ता/वह बड़ों की दुनिया में/अपनी दुनिया जोड़ रहा है।' बलदेव वंशी ठीक ही पहचानते हैं कि बच्चा बड़ों की दुनिया के लिए मौन चुनौती है।

कवि ने बच्चों के सरल मन को गहराई से समझा और उसकी मुश्किलों को आसानी से समझा दिया है। इस मायने में कवि की चिन्ताएँ काफी बड़ी हैं। उन्होंने चाहे महाकाव्यात्मक लम्बी कविता लिखी हो या शब्दों की छोटी कविताएँ; उसमें कवि पूरी तरह से खुद भी शामिल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होता है और अपने समय को भी [illegible] करता है। उन्होंने कहीं भी जीवन के विद्रूप को अनदेखा नहीं किया तो दूसरी तरफ जीवन के उस पक्ष को भी सराहा है जिससे दुनिया बेहतर होकर जीने लायक बनती है।

बलदेव वंशी ने ऐसी काव्य भाषा इजाद की है जो सकारात्मक है, प्राकृत है, लेकिन उसमें चमत्कार-प्रियता या अमूर्तन नहीं है। वह ऐसी भाषा है जिसके अर्थ समझने के लिए शब्दकोश नहीं देखने पड़ते, जबकि उसमें अर्थ की गहराइयाँ मौजूद हैं। इस पारदर्शी भाषा में उन्होंने हमारे समाज के जरूरी हिस्से के जीवन को ऐसे पेश किया है जिसमें हमारा बहुजन समाज खुद को देख सकता है। इस संदर्भ में वरिष्ठ कवि गिरिजाकुमार माथुर ने ठीक पहचाना है कि बलदेव वंशी नगरीय अनुभूतियों के विशिष्ट कवि हैं। उनकी कविताएँ नगरीय अनुभूतियों का तीसरा आयाम व्यक्त करती हैं। उनकी कविताएँ नगर जीवन के निचले और मध्यम वर्ग का अनिवार्य अंग हैं। उनमें उस परिवेश की कशमकश और पीड़ा की अभिव्यक्ति है, परिवर्तन की अग्रगामी सामयिकता है, यथार्थ से निरंतर युयुत्सा है और वे मार्मिक स्थितियाँ हैं जो छोटी-छोटी घटनाओं और अत्यन्त साधारण लोगों के कष्ट और संघर्ष को वाणी देती हैं। आसपास घट रहीं घटनाओं में कविता ढूँढ़ लेने में माहिर इस कवि ने जो सहा है वह उनकी कविता में बिना किसी दिखावट-बनावट के मौजूद है।

उनके कवि का लगातार विकास होता रहा है जैसा कि शमशेर ने अनुभव किया है। बलदेव वंशी 'कवि-रूप में काफी आगे आए हैं। उपलब्धियाँ तो हर कवि के पास होती हैं, मगर मूल्यवान उपलब्धियों का ही महत्त्व होता है। इस दृष्टि से देखता हूँ, सोचता हूँ, तो मुझे आपकी उपलब्धियाँ काफी मूल्यवान लगती हैं। सार्थक काव्ययात्रा करने वाले बलदेव वंशी उन कवियों में से हैं, जिन्हें आलोचक अनदेखा करते रहे हैं। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल द्वारा सम्पादित बलदेव वंशी की समग्र कविताएँ फिर से यह मौका देती हैं कि उन पर नई नजर से विचार और बातचीत हो सके। इससे हिन्दी कविता की मुकम्मिल तस्वीर सामने आएगी।

हेमन्त कुकरेती : ए-3/50, दूसरा तल, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063
मो. 09818540187

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE 2025-2013

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रदीप जिलवाने

संभावना की पतवार से कविता की लहरों के बीच

राजेश सक्सेना

जहाँ भी हो जरा सी संभावना** (कविता संग्रह): **प्रदीप जिलवाने
भारतीय ज्ञानपीठ : 18 इंस्टीट्यूशन एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003
मूल्य : 130 रुपये।

युवा कवि प्रदीप जिलवाने के नवप्रकाशित कविता संग्रह *'जहाँ भी हो जरा सी संभावना'* से गुजरते हुए यह आस सामान्य तौर पर जगती है कि तमाम मुश्किलों से दो-चार होते इस कठिन वक्त में भी अच्छे समय की संभावना जरूर बची रहेगी, जैसे बकौल प्रदीप- ''नींद के लिये जरूरी नहीं/मखमली गद्दे/गर्म देह का स्पर्श/वातानुकूलित कमरे की अनिवार्यता/नींद अपने लिये जगह तलाश ही लेती है/जहाँ भी हो जरा सी संभावना।'' दरअसल कवि इस कविता में नींद के साथ परोक्ष रूप में अच्छेपन की उस संभावना को भी इंगित कर रहा है जहाँ हर कोई एक-दूसरे के लिये कुछ कर रहा है; फिर चाहे वह धूप के लिये पहाड़ और मैदान हों या समुद्र की लहरों के लिये हवा के झोंकें हों अथवा चाँदनी, इस कविता में नींद के सौन्दर्य में प्रकृति के अनुपम बिम्ब कलात्मकता के साथ दस्तक देते हैं। 'भाषा' शीर्षक की कविता अपने बनाव में ही अपनी सान्द्र और ज्वलनशील प्रकृति से उसे मारक बनाती हुई दिखती है। निश्चय ही इस वक्त में जब हमें अपनी भाषा हर समय और व्यक्ति के अनुसार बदलनी पड़ती हो, तब सत्य और न्याय के बारे में हम कैसे बोलेंगे? कवि की यही पीड़ा इस कविता को धार देती है-''हमारी सामाजिक भाषा कुछ और होती है/नैतिक कुछ और/राजनैतिक कुछ और/... अब थूक से सिर्फ करारे नोट ही नहीं गिने जाते/अपनी भाषा को भी चमकाया जाता है।'' यह पूरी कविता अपनी पूरी दहक के साथ हमारे समाज के दोमुँहेपन बल्कि कईमुँहेपन से मुठभेड़ करती है। 'कैलेण्डर पर मुस्कुराती लड़की' इस कविता में बाजार की चालाकी और क्रूरता हमें अनावृत्त स्त्री-देह के रास्ते से प्रॉडक्ट तक पहुँचने की ऐन्द्रिक प्रक्रिया के साथ अन्तर्भूत करती है और अपने अभीष्ट की

CC-0 Jamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu.

राजेश सक्सेना

प्राप्ति में सौन्दर्य की कलात्मक दृष्टि के स्थान पर कीमतों के तयशुदा अर्थशास्त्र की ओर धकेलती हैं जहाँ स्त्री-देह कॅमोडिटी में परिवर्तित हो जाती है। इस तरह यह कविता नवबाजारवाद और वैश्वीकरण से उपजे बहुत जायज सवाल भी खड़े करती है- ''कैलेण्डर पर मुस्कुराती लड़की/और उसके मुस्कुराते होंठ पर/एक किस्म का आमन्त्रण है/...उसकी देह का नहीं/उसकी देह पर चुपडे प्रॉडक्ट तक जाने का।'' प्रदीप की कविताएँ अनुभव के साथ भाषा की संरचना में अपने जनपद की मिट्टी की महक जरूर साथ लेकर चलना चाहती है, किन्तु स्वयं कवि इसमें थोड़ी झिझक महसूस करता है यह द्वन्द्व हमें 'कविता की चाह' कविता में दिखाई देता है जहाँ कवि कहता है-''चाहती तो यह भी हूँ कि/चखकर देखूँ जायका मिट्टी का/थोड़ा सा असभ्य बनकर।'' यहाँ कविता को मिट्टी चखना जिस तरह असभ्यता लग रही है, वह कविता की नहीं बल्कि कवि की मुश्किल है। ऐसा लगता है मानों कविता मिट्टी को छुए बिना या चखे बिना मात्र अनुभव को सृजन का मार्ग नहीं दे सकती। इस कविता में एक और जो दिलचस्प बात दिखाई देती है वह यह कि एक तरफ तो कवि कह रहा है ''चाहती तो बहुत कुछ हूँ/पर तुम तो जानते हो/मेरे चाहने पर भी/अब चाँद को नींद कहाँ आती है/रात की शीतल गोद में लेटकर भी।'' मगर अपनी शीर्षक कविता में कवि नींद की संभावना को हर जगह बताता है। यह दोनों कविताओं का जो अन्तर्द्वन्द्व है, वह एक मनोविज्ञान के उस पहलू पर ले जाता है जहाँ कवि अपनी बेचैनी में सृजन के संघर्ष से जूझ रहा है और अपनी ही गढ़ी रचनाओं में टकराहट उत्पन्न कर रहा है। 'माँ : कुछ अतिरिक्त कविताएँ' में कवि ने बहुत कम चुनिंदा शब्दों में जो कुछ कहा है, वह बहुत प्रभावकारी है। इस कविता में कवि ने कहा है - ''माँ अगर एक शब्द है/तो इसी शब्द से जन्मी है भाषा/और अगर भाषा है/ तो इसी भाषा से जन्में हैं शब्द।'' ''ईश्वर के बारे में, लिखे जा सकते हैं पवित्र शब्द/माँ के लिये लिखा/हर शब्द होता है पवित्र।'' सचमुच माँ शब्द ही अत्यन्त पवित्रता के भाव से बना है। कवि ने यह ठीक ही कहा है इसी शब्द से जन्मी है भाषा; क्योंकि जिस तरह सृष्टि के सृजन में सर्वाधिक समर्पण माँ का है उसी तरह भाषा में भी माँ का है, इसीलिये हर शब्द माँ के लिये छोटा लगता है। यह कविता साधारण कहन के साथ प्रभावपूर्ण ध्वनि छोड़ती है। 'कठिन उम्र किशोरी' में कवि ने वर्जनाओं और बंदिशों में पल रही भारतीय समाज की उन किशोर युवतियों की तरफ ध्यान खींचने का प्रयास किया है, जो हमारे आधुनिक और प्रगतिशील होने और स्त्री सशक्तिकरण के तमाम दावों के खोखलेपन को उजागर करती है। 'आधुनिक किस्म की हिंसाएँ' कविता में कवि ने हिंसाओं की जो फेहरिस्त बनाई है, उसमें कई जगहों पर व्यंग्यात्मकता के जिस भाव से हिंसा को परिभाषित किया गया है, वह अपने अर्थ में पूरी तरह खुल नहीं पाई है जैसे - ''बाजार में खाली जेब जाना हिंसा है, पत्नी से फिर प्रेमिका होने की उम्मीद करना हिंसा है, अपने समय से पीछे चलना हिंसा है।'' यद्यपि कवि को हिंसा के प्रत्यक्ष रूपों ने जिस तरह आहत किया है उसी गुस्से से यह व्यंग्यात्मक ध्वनि इस कविता में गुंजित होती है; तभी वह खाली जेब बाजार जाने वाले और समय के साथ नहीं चलने वाले गरीब को हिंसक बता रहा है। अयोध्या के बाबरी ध्वंस से उपजी साम्प्रदायिक हिंसा के समय कवि की उम्र केवल 14 वर्ष की रही होगी, लेकिन उन कलुषित स्मृतियों को कवि ने '1992 : एक दुखद स्मरण' कविता में जिस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मासूमियत के साथ रखा है वह एक ओर राजनैतिक षड्यंत्र को उजागर करती है, तो दूसरी ओर अपने मानवीय पक्ष को भी मजबूती के साथ खड़ा करती है। इस नास्टेल्जिया में कवि के बाल मन का स्मृतिबोध प्रश्नचिन्ह की तरह है। एक अन्य कविता 'फिर भी' में कवि ने बहुओं को जलाने की एक घटना से उपजी चिंता को अपनी बेटी के बारे में सोचने के लिये मजबूर किया है, वह चिंता केवल कवि की नहीं, बल्कि पूरे समाज की है जहाँ बहुओं को जलाया जा रहा है, एक भयावह त्रासद घटना जिसमें जलाई गई युवती की अन्त्येष्टि से लेकर अपने घर लौटने तक की समयावधि में कवि के अन्दर जो जद्दोजहद चलती है वह इस कविता के प्रसव की ममांतक पीड़ा भी सहन करती है जिसमें कवि उस विद्रूपता को इसी वाक्य विन्यास के साथ लिखता है, – ''... जिधर से अभी-अभी यह बुरी खबर आयी हैं, खबर जिसमें केरोसिन हैं, आग हैं, चीख हैं, चीत्कार हैं, झुलसा हुआ एक चेहरा हैं, झुके हुए कुछ सर हैं, मेरे अन्दर एक ताजी चिता की गंध धंसने लगी, चिता के पार धुएँ में, मुझे चेहरे विकृत दिखने लगे, यह धुँआ इस विकृति को जन्म दे रहा था।'' फिर जब कवि घर लौट आता है और अपनी बेटी की खिलखिलाहट सुनता है, तो वह एक आश्वस्ति के भाव से भर जाता है और है- ''जरूरी नहीं, जो रामचन्दर की बेटी के साथ हुआ, वह मेरी बेटी के साथ भी हो, फिर भी...'' यहाँ कवि ने फिर भी... पर अपनी कविता में जो चिंता का भाव छोड़ा है वह सामाजिक चिंतन के बड़े सरोकार को प्रबलता के साथ रखता है। प्रेम की शास्वत और सार्वकालिक भावना के साथ इस संग्रह में कुछ प्रेम कविताएँ भी हैं जहाँ प्रेम में पड़ी लड़की के कुछ शब्द-चित्र हैं जिनमें बेपरवाह होने से लेकर, प्रेम पर लगे पहरे, तक की झलकियाँ हैं और साथ ही यह आश्वस्ति भी कि प्रेम की भाषा बची रहेगी। दरअसल ये वो वक्त है जब हम इश्क कमीना जैसे गाने भी सुन रहे हैं, ऐसे में कवि की आश्वस्ति प्रेम की कोमल भावना को बचाने के मानवीय पक्ष को भी बचा रही है।

अन्य कुछ कविताओं में 'पगडंडी से पक्की सड़क', 'पिताजी की साईकिल' कविता से राजेश जोशी की 'नाना की साईकिल' कविता याद आती है जिनमें संवेदना का केन्द्रीय तत्त्व एक ही तरह का है और यह स्वाभाविक है, क्योंकि इस तरह के विषय की कविताओं में दोहराव का दोष आ ही जाता है। फिर यहाँ तो शीर्षक भी एक ही तरह का है। 'दुरसिंग का फल्या' कविता में उस आदिम भोलेपन को बड़ी मौलिक और सच्चेपन के साथ कवि ने अपना विषय बनाया है जहाँ राजनैतिक सत्ता, धार्मिक सत्ता और सभ्यता के आधुनिकपन को धता बताती जन-जातीय जीवन का सौन्दर्य, संघर्ष और संस्कृति का दर्शन है। कुल मिलाकर प्रदीप की कविता साधारण जीवन के बोध से निकले विषयों के साथ साधारण व्यवहार और सहज बिम्ब विधान की कविता है। साथ ही उनमें संभावना की पतवार के सहारे कविता की लहरों के बीच जाने की पूरी गुंजाइश है।

राजेश सक्सेना : डी15, ज्योति नगर कालोनी, उज्जैन (म.प्र.) मो. 09425108734

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किरण श्रीवास्तव

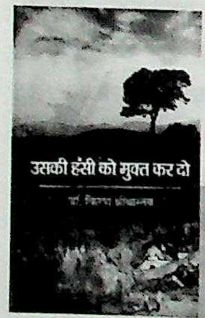

अपसंस्कृति से जूझतीं कविताएँ

रश्मि शील

उसकी हँसी को मुक्त कर दो *(कविता संग्रह)* ***: किरण श्रीवास्तव***
अनन्य प्रकाशन : 1/10785, मेन रोड, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 मूल्य : 175 रुपये

डॉ. किरण श्रीवास्तव हिन्दी गद्य क्षेत्र में संवेदित और सार्थक हस्ताक्षर के रूप में पहले ही अपनी पहचान 'सामाजिक संदर्भों के नये प्रतिमान' एवं 'साहित्य में संचेतना' के माध्यम से बना चुकी है। 'उसकी हँसी को मुक्त कर दो' के द्वारा एक कवयित्री के रूप में आपका पदार्पण हुआ है। आपके निबन्ध जहाँ विचार की गम्भीरता के साथ काव्यत्व के गुणों से परिपूर्ण सहजता का बोध कराते हैं, वहीं आपकी काव्य रचनायें सहजता, सहृदयता के साथ वैचारिक गम्भीरता की अनुभूति कराती हैं। जीवन की संवेदना बोध के इंद्रधनुषी रंग इन कविताओं में बिखरे पड़े हैं, जो विभिन्न रंग रूप मूड गंध और स्वरूप को प्रस्तुत करती हैं।

संग्रह में जीवन और प्रकृति के राग में आकंठ डूबी 60 रचनाएँ संग्रहीत हैं, जो न सिर्फ हमारी चेतना को झकझोरती हैं, बल्कि पाठक स्वयं को बौद्धिक चक्रव्यूह में उलझा हुआ पाता है तब तार्किकता और सहजता के द्वंद्वात्मक अवलम्ब के सहारे कवयित्री बाहर निकलने की प्रेरणा देती है। मूल्य विघटन और अपसंस्कृति से जूझतीं संग्रह की कविताएँ जीवन मूल्यों को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करती हैं तो कहीं सामाजिक विषमताएँ, राजनीतिक संघर्ष, निराशा, हताशा एवं विसंगतियों से आहत हो मर्मांतक पीड़ा का अनुभव करती हैं। उनकी कविताएँ वेदना में चेतना की किरण बनकर आलोक बिखेरती हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्व में आलोक फैले/इसलिए तपती रही/ ज्ञान का विस्तार हो/इसलिए लखती रही/कर्म का संदेश देती/चेतना की मैं किरण हूँ।

संग्रह की प्रथम कविता 'करुणानिधान राम' में लोक मंगल की कामना से कवयित्री मानव-मूल्य और संस्कृति के रक्षक राम का शत-शत अभिनन्दन करती है। अहंकार, अन्याय, काले-धन, भ्रष्टाचार आदि के रूप में फैली आसुरी प्रवृत्तियों से राम ही समाज को मुक्ति दिला सकते हैं।

समूची सृष्टि को दबोचे भ्रष्टाचार का अहिरावण/ पूँजीपतियों का मेघनाद इन्द्र को जीत, करता गर्जन/प्रभु! करो उसका मान-मर्दन तुम्हारा शत्-शत् अभिनन्दन।

जिस धरती पर हमने जन्म लिया है। प्राणदायिनी प्रेम व खुशियाँ बाँटने वाली धरती के प्रति कृतज्ञ होना हम सबका कर्त्तव्य है। 'प्रेममयी पृथ्वी को प्रणाम' कविता में कवयित्री ने इन्हीं भावों को स्वर दिया है।

सभी ग्रहों से न्यारी/पृथ्वी सबसे प्यारी/मनमाने मौसम की रानी/बहता इसमें मीठा पानी/प्राणवायु का दान मिला है/जीवन का सम्मान मिला है।

आज समाज में नैतिकता, मर्यादा, अनुशासन, निष्ठा व कर्त्तव्य के प्रति लगन की भावना अब निष्प्राण हो गई है। केवल पैंतरेबाजी, फरेब और स्वार्थ का बोलबाला है, जमाना उलट सा गया है, परन्तु कवयित्री अपनी आस्था और विश्वास को सहेजे रहती है। जीवन व जगत की रक्षा के निमित्त काव्य रचना करती है।

जीवन और जगत की रक्षा के लिए/तुम क्या कर सकते हो?/इस प्रश्न से प्रारम्भ होती है/मेरी कविता।

डॉ. किरन की कविताओं में प्रेम का ऐंद्रिय आकर्षण है और उसका ऐंद्रियातीत अनुभव भी, इसलिए प्रेम महज ऐंद्रिय आकर्षण के जाल से विमुक्त होकर आत्मसमर्पण और आत्मदान की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। ये कविताएँ प्रेम से बढ़कर दाम्पत्य की कविताएँ है। जहाँ प्रेम दाम्पत्य का रूप ग्रहण कर आजीवन सहगामिनी, जीवनसंगिनी बन जाता है, प्रणय-सुमन खिल उठते है, केसर की क्यारी महक उठती है। 'बीते बीस बसंत' कविता में कवयित्री ने अपनी ऐसी ही मृदु-स्मृतियों को संजोया है-

बीते बीस बसंत मधुमय/छोड़, कुछ तनाव के छिन/हिल-मिल रहे नित दिन/सरस-मधुर दोनों का जीवन

नारी-विमर्श के सरोकार से जुड़ी चेतना 'समाज चुप है', 'पैराडाइज', 'तिलिस्म टूटेगा', 'इस युग की नारी', 'ससुराल के द्वार', 'प्रेम के सतत प्रवाह के लिए', जागीर आदि कविताओं में दृष्टिगोचर होती है। धरती बसंत और आकाश नारी की व्यथा-कथा है। ससुराल के द्वार से उपेक्षित नारी प्रेम के सतत प्रवाह के लिए पुरुष समाज को ललकार उठती है कि अब पुरुष क्रूरता के आगे वह झुकने वाली नहीं है क्योंकि मातृशक्ति सम्पन्न उसे जीने की कला आती है। ममता त्याग, करुणा, आत्मोत्सर्ग की भावना उसकी युगों से युगों तक जागीर है -

छू नहीं पाओगे/मेरे मातृत्व की छाया भी/ क्योंकि/युगों से युगों तक की जागीर है

कविताओं में जीवन, समाज और सम्बन्धों की यथार्थपरक त्रयी अर्थबोध के बिम्ब हैं। कवयित्री समाज के पहले से रचे बसे प्रतीक व मिथकों के सहारे नवीन सूत्रों को खोजने का प्रयत्न करती है। उन्होंने अपने जीवनानुभवों से रूढ़िवादी संक्रमण को पुनर्शोधित कर पुनराविष्कार करने की कोशिश की है-

बादल की काली घटा भयानक है तो क्या?/ बरसेगी तो साफ दिखेगा/विचारों का तूफान भावों का बादल बरसेगा ही/दुःख-दर्द धुला मानव-जीवन/निखरेगा ही!!

जीवन में परिवर्तन, समता की दृष्टि, प्रकृति और विकृति, दिशा और दशा से जुड़े तमाम अनुत्तरित प्रश्न हमारे सामने सहज ही आ खड़े होते हैं जिनके हल हमें ढूँढ़ना है। कविताओं की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्निग्धता में पाठक स्वतः प्रवाहित होने लगता है, लोग स्वयं क्षुब्ध है, आक्रोशित है और बदलाव चाहता है। 'प्यासे लोग', 'समयचक्र', 'मजदूर', 'चक्रव्यूह में', 'भीड़', 'किराये के लोग', 'शोषण बना मोक्ष', 'अंधेरे को जीता है', 'भुखमरी का जोंक', 'मंजिल', 'घातक सौंदर्य', 'सपेरा' 'इतिहास भुला बैठे', 'बिखराव', 'ज्योति पर्व', 'इमारतें', 'पहाड़ के लोग', 'नियति', 'मिलावट', 'अनन्त' आदि रचनाओं में विकृतियों और विडम्बनाओं के साथ सत्य, प्रेम, सद्भाव, स्वावलम्बन और संवेदनाओं के रंग धुले हुए हैं। जीवन और जगत से जुड़े विभिन्न पक्ष इन रचनाओं में समाहित है।

कविता मानव जीवन का अंग है परन्तु आलोच्य कृति में जीवन मानों रच बस गया है। बचपन से निर्वाण तक की यात्रा कवयित्री ने भावों के कोमल स्पर्श के सहारे तय की है। ये रचनायें तो पाठक को यह एहसास दिलाती हैं कि इनमें उसके ही सुख-दुःख शामिल है।

काव्य संग्रह में कुछ क्षणिकाएँ एवं हाइकु है जो अपने लघु कलेवर में विषय की व्यापकता समेटे है और तीर के समान मर्म पर प्रहार करती है-

मैलाआँचल/परती-परिकथा/गाँव की व्यथा।

भाषा के स्तर पर, कथ्य के स्तर पर, तथ्य के स्तर पर, अनूठे शिल्प विधान के स्तर पर कविताएँ बार-बार हृदय पर दस्तक देती हैं और ठहर कर संवाद के लिए प्रेरित करती हैं। शब्द के माध्यम से कवयित्री भावों के चित्र पाठकों के सामने चित्रित करती जाती है कि वह मुग्ध रह जाता है-

तुम्हारी नन्हीं उंगलियाँ/कोमल फूल की पँखुड़ियाँ/तुम्हारी आँखों में जीवन झाँकता था

रश्मि शील

भाषा के अनुरूप शैली में प्रवाह, स्वाभाविकता और सरलता है जो कथ्य को पाठक के लिए सहज बोधगम्य बनाती है, उसकी चेतना स्पर्श करती है और उसके मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव छोड़ती है।

'अन्तहीन त्रासदी में', 'सत्यं शिवं सुंदर' का 'संकल्प' लेकर खाली हाथ होकर भी 'अतीत का वैभव' याद कर कवयित्री 'एक तारा' पर 'कोमल स्पर्श' से 'लय' उत्पन्न करती है, बुलबुल की तरह गान करती है और यह 'आकांक्षा' करती है कि केसर की क्यारी महक उठे तथा 'अनन्त' प्रणय-सुमन खिल उठे। यह सब संभव है-

बस, इतना कर दो/कमरे में कैद उसकी हँसी को मुक्त कर दो

आलोच्य कृति में ईर्ष्या-द्वेष, प्रतिप्रश्न-उत्तर, अपना-पराया, मोह-माया, इच्छा-अनिच्छा आदि भाव जगह-जगह उभरे हैं। निश्चय ही ये सहज, निश्छल भाव बोध की कविताएँ हैं। ऐसा समय जहाँ सब कुछ कृत्रिम है, वहाँ अकृत्रिम मनोहारी भंगिमाओं का अंजोर कवयित्री अपनी रचाओं में रूपांतरित करती है। ये कविताएँ कोरी बौद्धिक कविताएँ नहीं हैं, इनका अपना रंग है, अपना राग है। निश्चय की 'उसकी हँसी को मुक्त कर दो' काव्य संग्रह अपने उन्मुक्त हास्य से काव्य प्रेमियों के हृदय को आह्लादित भी करेगा और प्रश्नाकुल भी। इसी शुभकामना के साथ।

रश्मि शील : 3/1, टिकैत राय तालाब कालोनी, ताल कटोरा रोड, लखनऊ-226017
मो. 09235858688

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh,Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

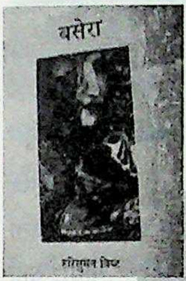

बेरहम समय की पड़ताल

हरिसुमन बिष्ट

प्रताप सिंह

बसेरा (उपन्यास) : हरिसुमन बिष्ट
प्रकाशक : कल्याणी शिक्षा परिषद, 3320-21, जटवाड़ा, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
मूल्य : 250 रुपये।

समकालीन उपन्यास नये समाज के बीहड़ क्रूर और मनोचेतना को झकझोरने वाले परिवेश से वाबस्ता है। इससे उसके सृजन-पक्ष के संकट भी बढ़े हैं। तत्कालीन घटनाओं तथा उनके यथार्थपूर्ण-चित्रण के जोखिम उन्हें, उनके कलात्मक-छोर और अनगढ़-शिल्प से भी दूर ले जा रहे हैं। किन्तु यही बदलाव एक 'टर्निंग-पाइंट' भी है, जो रूढ़ हो चले कथानकों, शैलियों, चरित्रों, फैण्टेसियों की वर्णनात्मकता के बोझ से उन्हें मुक्त भी करता है। इस दृष्टि से उपन्यासकार हरिसुमन बिष्ट की उपन्यास-कला ने परिवेश के अनुरूप यथार्थ-बिम्बों में आए बदलावों को सहज ही स्वीकार किया है। समीक्षित उपन्यास 'बसेरा' से पूर्व आंचलिकता ही प्रमुख रही है, जबकि 'बसेरा' तक की नूतन औपन्यासिक-यात्रा सीधे विषम परिवेश के नये बीज-पाठ से शुरू होती है और भावक-जगत् को उस सरहद पर लाकर छोड़ देती है, जहाँ से इस नये समाज के नये महानगरीय तनावों और आवारा-पूँजी से उपजे द्वंद्वों की जड़ें साफ दिखलाई देने लगती हैं। संयोग ही कहिए कि विषय की विद्रूपता के क्रूर मायाजाल ने 'बसेरा' के उपन्यासकार को भी समाज के परत दर परत छिपे रह गए एक नये- निर्मम सत्य के उद्घाटन के लिए चुना है। यह उपन्यासकार 'बसेरा' के कुंभीपाक में प्रवेश से पहले पहाड़ के अंचल का ही खरा शिल्पी रहा है। 'आसमान झुक रहा है', 'होना पहाड़' और 'आछरी-माछरी' इस दिशा के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

आज का उपन्यास आंचलिकता का दामन छोड़ कब का शहरी हो चला है, पर हरिसुमन बिष्ट ने अपनी उसी गँवई जमीन की संवेदना और महक को अपने पूर्व उपन्यासों में बरकरार रखा है। उसकी गहरी पड़ताल से उन्हें पहचाना गया है और सच्ची पाठकीय सनद भी मिली है।

वास्तव में 'बसेरा' उपन्यास से हरिसुमन ने दुधारी नई औपन्यासिक-यात्रा शुरू की है। विषय-परिवर्तन के नाते ही नहीं, नये समय के विलोम में सुख-संस्कृति तलाश कर रही, विलासिता के खूँटे से बँधी अति सम्पन्न विलासी पीढ़ी और उसके उपकरणों (माध्यमों) का जायजा भी यहाँ नये सिरे से, पूरी ईमानदारी से, गहराई से लिया गया है। उपन्यासकार के नये परिवेश और वहाँ से उपलब्ध अंचल एवं नागरीय जीवन-शैलियों के पारस्परिक टकराव ने उन्हें एक 'एसिड टेस्ट' से गुजरने का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मौका दिया है। नये [illegible] उपन्यासकार होने के नाते हरिसुमन ने इस चुनौती को 'निठारी' के कड़वे सच की पड़ताल के रूप में स्वीकार किया है।

यहाँ 'निठारी' का यह कड़वा सच मात्र एक निर्मम घटना का यथार्थवादी रिपोर्ताज अथवा 'घृणित बिम्ब' बनकर नहीं रह गया है। इसके महीन-ग्राफ को हरिसुमन ने आवारा-पूँजी के निर्मम-खेल को समझ कर ही, एक ऐसे सामाजिक-पाठ में बदला है, जहाँ अपने नये समाज की बदशक्ल होकर उभरी राक्षसी प्रवृत्ति और उसकी बदबू महसूस की जा सकती है। उपन्यास में वर्णित एक तरफ बेबस विस्थापित गुजर-बसर के लिए किसी भी कीमत पर लुट रहा तबका है, तो दूसरी तरफ - कारखानेदारों, मालदारों का बहुरूपिया, राक्षसी, ऊँची पहुँच वाला फ्लैट-बंगला संस्कृति का छद्म-पौषक अलम्बरदार नया समाज है, जो छोटे तबकों का शिकार कर, न केवल अपनी वहशत का सामान खरीदता-बटोरता है, बल्कि उसी शोषित-समाज (तबके) की अगली अनाम पीढ़ी की 'नरबलि' के रूपक रचने से भी बाज नहीं आता।

इस रूपक का 'एक्सरे' दिखाने के भी कई खतरे हैं। कहीं परिवेश की विद्रूपता, राक्षसी-प्रवृत्तियाँ, वासनामुखी क्रूर-चाहतें, एक उपन्यास को 'बेलगाम' भी कर सकती थीं। और परिवेश से उपन्यास के लिए उपलब्ध 'कच्चा-माल' उसे सचमुच 'बीज-पाठ' से भटका कर, हिंसक-रोमानी अथवा हॉरर-शैली की किसी शाखा/शृंखला में भटक रहे उपन्यासों की श्रेणी में पहुँचा सकते थे। पर उपन्यासकार के वैचारिक आत्म-संयम और तराशी गई परिवेशगत पात्रता तथा घटनाक्रम की सही बुनावट ने 'बसेरा' से उपलब्ध बीज-पाठ की व्यंजना को ही उसकी वांछित पड़ताल के अनुरूप बदल दिया है। इस पाठ में उपन्यास की वर्णनात्मकता और घटनाओं के पीछे की तफ़्तीश का दायरा खुलता चला गया है। उसे 'सम्मोहित-दृश्यों' की खुराक से बचाकर उपन्यासकार ने सीधे प्रभावक-बिंदुओं को छूते हुए 'दृश्य-बिम्बों' की रचना की और पूरे परिवेश के प्रपंच को खोज निकाला है। यह आसान नहीं था, पर उपन्यास का पूर्व-रंग और एक भूमिकाहीन मादक शुरूआत ही उपन्यासकार के मकसद को पूरा कर देते हैं। मसलन -इसकी शुरुआती मारक पंक्तियों की रहस्यमयता से पर्दा उठाने का लेखक का उपक्रम ...गोया, वही नोएडा और निठारी की मॉल-कलचर में प्रवेश का (पाठकवृंद के लिए) खुफिया रास्ता हो...!

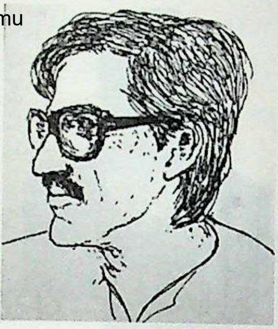

प्रताप सिंह

'बेबस -विस्थापित आत्माओं का यही जाना पहचाना, नामचीन नया इलाका है ...उसकी बदबूदार सुरंग का मुहाना और मैन होल यहीं खुलता है। पैने दाँतों वाले पिशाच उनकी चाकरी में यहाँ गश्त लगाते हैं।' इसकी वहशतजदी के रूपक का भेद खोलने के बजाय उपन्यासकार सर्वप्रथम निठारी की सहज आम जिंदगी और पूर्व-रंग से भौगोलिक-सच्चाइयों का नक्शा तैयार करता है। कब यही भौगोलिक सच्चाइयाँ शोक में डूबे संतप्त छोटे समाज की 'आह' में बदल जाती हैं, उपन्यास की संरचना और विन्यास ही इस धुंध को साफ करते चलते हैं। 'बच्चों का गुम होना' घटनापरक न रहकर, एक भरे-पूरे संवेदनशील समाज के भयावह रूपक की करुण तस्वीर पेश करता है और हमारे देखते-देखते वहाँ के शामिलात तथा जुदा वर्ग-चरित्रों के असल चेहरे भी इसी बिंदु पर नुमाया होने लगते हैं और नये कुचक्र में फँस जाते हैं।

विस्थापित निम्नवर्ग के चरित्र ही पूरे उपन्यास की धुरी बने रहते हैं- जदो सरकार, अजीत हालदार, अर्जुन साहू तक कथानक सीमित नहीं रहता, बल्कि मुस्तफा, साहू, जशोदा, गीता, शबाना, आलोकी, वीणा हालदार, रसूल मियाँ की जीवन्त उपस्थिति ही निठारी के रूपक की दिशा बदलती है। कथानक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के दूसरे सिरे पर डॉ. माधुरी, उपेक्षित मित्र, दो बच्चे सम्पन्न- वर्ग की फिसलन और खालीपन को दिखलाते हैं। साथ ही, महेन्द्र, नन्दी जैसे चेहरे इस कलुषित आडम्बरी दुनिया में सहायक-क्रिया का काम करते नज़र आते हैं। इनके अलावा पुलिस और दूसरे निठल्ले महकमों की भूमिका भी विचारणीय है। उपन्यास कथानक से ज्यादा अपने संवादों से भी चारित्रिक चतुराई और निरीहता को दर्शाता है। बाकी तस्वीरें माहौल की रचनात्मकता की निशानदेही और नक्काशी से भी उभरती हैं।

उपन्यास में इंसानी हैवानियत/वहशी शैतानियत की छवियाँ और भी हैं जो गुमशुदगी की तहकीकात से परे तक फैली हैं। इनमें आलोकी, महेन्द्र और डॉ. माधुरी तथा नर्सिंग होम के समीकरण सामने आते हैं और पैसे के नये पुजारियों की हरकतों/करतूतों के कारनामों से वाकिफ कराते हैं। इसका 'बसेरा' में दर्दनाक चित्रण है। अच्छे-बुरे किसी भी पात्र को इस 'कुंभीपाक' से राहत मिलने की उम्मीद नहीं है। उपन्यासकार ने अपने पिछले उपन्यासों की आंचलिकता से उपजी भाषाई सहजता को भी इस अलग शैली के उपन्यास में भी आजमाया और बरकरार रखा है। इस दृष्टि से अध्याय 3,7,8,9,10,11 तथा 14 के दृष्टांत उपन्यासकार के इस कौशल का परिचय बखूबी देते हैं। पृष्ठ 108, 127, 142, 159 और 162 पर रची विडम्बनाएँ इन्सानियत से दूर होते/मिटते सरोकारों के हवाले भी प्रस्तुत करती हैं-

'अब आलोकी बचे या नहीं, उसके इलाज का रुपया डॉक्टर माधुरी को दे दिया। उससे अब कोई सरोकार नहीं रह गया था, इन्सानियत के सरोकार तो कभी नहीं। जबसे उसके शरीर की कीमत उसने लगवा दी और वह उसका समय-समय भुगतान भी करता रहा था। उस आदमी के लिए औरत की कीमत कोई ज्यादा नहीं थी, वह कभी भी कितनी भी थोक में खरीद सकता था, आज वह किसी कुतिया को एक टुकड़ा रोटी का देता, तो दूसरे दिन वह स्वयं जूठी रोटी के लालच में चली आती।'

माना आलोकी का यह चरित्र-चित्रण बेबाक-सा है, जो एक उत्तरकालीन- उपन्यास में भी जाने क्यों नये-पुराने मूल्यों से एक साथ उपजी बुराइयों की भी याद दिलाता है। खैर...! (कोई भी इस बदले हुए जमाने में 'आलोकी' को बदलना चाहेगा!) उपन्यासकार हरिसुमन बिष्ट ने अपने इस उपन्यास से 'नये समाज के बसेरे' की 'सड़ांध' और आवारा-पूँजी के घृणित-खेल को, अपनी सीमाओं में सजग रहते हुए पूरी ईमानदारी से उजागर किया है। 'बसेरा' की इस शैली में औपन्यासिक-धरातल सहज ही उभरा है। यहाँ दूसरे कथाकारों की तरह शहरी जीवन के विलासोन्मुखी मनोरोगों की 'सर्जरी' नहीं की गई है। संजीव इस क्षेत्र में आज भी एक अपवाद जरूर हैं, जो अपने अनुभवों की पृथ्वी को खाँचों में बाँटकर, उसे पूरा ही चाक-चौबंद होकर समकालीनता को रचते हैं। इस दिशा में प्रयोगशीलता की दृष्टि से 'बसेरा' एक भिन्न विषय की बुदबुदाती प्रयोगशाला में तैयार किया गया 'क्रिस्टिल' है। उसका कैनवास दूधनाथ सिंह के 'आखिरी कलाम' के सांप्रदायिक रूपक की तरह तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि और धार्मिक उन्माद की तहों से परे (नई संस्कृतियों की घिनौनी यौन वृत्तियों के रहते) बची-खुची मानवीयता के सिरे जोड़े रखने की चाहना से ही निर्मित हुआ है। किंचित, यह उपन्यासकार अपने नये बीज-पाठ से नये सम्पन्न और विपन्न जटिल-समाजों के तनावों और उससे उपजे अंतर्द्वन्द्व को भी सरलता से चित्रित करता है। 'बसेरा' की यही सादगी और साधारणता इस कृति को असाधारण उपन्यास में बदलती है।

प्रताप सिंह : फ्लैट न.220, जी.एच.-2, पत्रकार परिसर, सेक्टर-5, वसुन्धरा ग़ाज़ियाबाद-201012 मो.09717749114

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

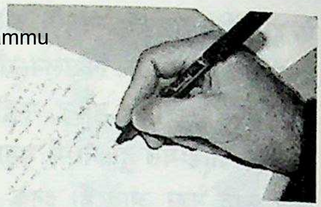

हृदयेश, शाहजहाँपुर : तीन सप्ताह पूर्व आपसे बात हुई थी। 'वागर्थ' का जनवरी 2013 अंक आज प्राप्त हुआ है। फरवरी अंक नहीं मिला है। यहाँ एक पिछड़े छोटे शहर का वासी होने के कारण 'वागर्थ' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से ही वर्तमान साहित्य की रचनात्मक मिज़ाज़ और उसकी गतिविधियों से परिचत होता हूँ।

मार्च अंक में मेरा साक्षात्कार आप दे रहे हैं। किसी प्रथम श्रेणी की पत्रिका में यह मेरा पहला साक्षात्कार होगा। आपके इस उदार सहयोग के लिए आभार।

कमल किशोर गोयनका, दिल्ली : 'वागर्थ' के अप्रैल 2013 अंक में 'काला पारिजात' पढ़ा तो एक बार फिर आपकी साहित्य एवं मानवीय चेतना और भाषा सौन्दर्य की दाद देने का मन हुआ। आपने भारतीय की अच्छी खबर ली हैं और सभ्यता की असभ्यता का वास्तविक चित्र खींचा है। आपकी लेखनी अब हम सभी को मुग्ध कर रही हैं और मन में बात उठती है कि यह कोहनूर कहाँ छिपा था? आपकी भाषा, चित्रण की अद्‌भुदता मर्म को बारीकी से पकड़ने की दृष्टि आपने काले को पारिजात बना दिया है। हम भारतीय हिप्पोक्रेट हैं, दुहरा जीवन जीते हैं, जबकि हमारा धर्म–कर्म में एकता की बात कहता है। मैं पुनः कहता हूँ, आप लिखती रहें। आप देखेंगी कि कोलकाता की इस लेखिका की देश में कैसी चर्चा होती है।

फूलचंद मानव, चंडीगढ़ : तुम्हारा उपन्यास 'पानी भीतर फूल' धारावाही देखता–पढ़ता रहा हूँ। अब तो पुस्तकाकार भी आ चुका है, बधाई। वागर्थ का संपादन आप, कुसुम खेमानी बखूबी करते हैं। अच्छा लग रहा है। कुसुम खेमानी के लेखन का भी इधर नोटिस ले रहा हूँ।

नरेश चंद्रकर, बड़ौदा : आपने इधर (1980 के बाद की कविता) की इस छोड़ी हुई कविता पर, बातचीत का चस्का पैदा कर दिया है। इस पूरी चर्चा/प्रतिचर्चा में आप पर किसी ने अनादरपूर्वक बात नहीं की है, यह अच्छी और अपेक्षित बात भी है। आप एक सुलझे, समझदार और अलग मिज़ाज़ के कवि रहे हैं। हैं भी।

अमृतलाल मदान, कैथल : हृदय रोग के कारण कोई तीन वर्ष के अन्तराल के बाद 'वागर्थ' से फिर से जुड़ने का सौभाग्य फरवरी 13 से प्राप्त हुआ। ऐसा लगा ज्यों फिर एक परिवार में लौटा हूँ। एक अन्य कारण 'झरोखा' में मेरे ताजे उपन्यास 'एक अधूरी प्रेमकथा' की झाँकी भी रही। कविताएँ, कुछ कहानियाँ तथा 'लॉन्ग नाइन्टीज़' के सब लेखकों को और 'पानी भीतर फूल' भी पढ़ा। पर पीछे की कड़ियों से अनजान रहने के कारण एक पछतावा–सा भी रहा। हाँ, आंचलिकता का आनन्द जरूर लिया। बतरस में कुसुम जी की कुंभ यात्रा ने निर्मल वर्मा की याद दिला दी। वास्तव में इस अंक को कात्यायनी से कुसुम खेमानी तक की दो विपरीत ध्रुवों की यात्रा का नाम दूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

वीरेन्द्र गौड़, इन्दौर : फरवरी 2013 के वागर्थ में 'कुम्भ, जलावृत्त में तैरती अमृत बूँदें', कुसुम जी की भावपूर्ण अभिव्यक्ति मन को छू गई। वैज्ञानिक सोच, चिन्तन भी 'कुम्भ' में गंगा की अमृत बूँदों में डूबकर 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' कहने लगा। ये कुम्भ ही हमारे जीवन का कल्मष धोते हैं और नैतिकता से दूर आध्यात्म के संसार में ले जाते हैं। इतने आक्रमण हुए, विधर्मियों ने घोर अत्याचार किए फिर भी भारतीय संस्कृति आज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अक्षुण्ण है। सचमुच ऐसे लेख मानवजीवन को ऊर्जा प्रदान करते हैं। वागर्थ ऐसे ही साहित्य-रस की वर्षा करता रहे।

गौरीशंकर पाण्डेय 'अरविन्द', फैजाबाद : 'वागर्थ' का फरवरी 2013 अंक देखा-पढ़ा। मन गद्-गद् हो उठा। 'समकालीन कविता का आत्मसंघर्ष', विनोद दास का 'समय की चुनौतियाँ -हिन्दी कविता '80 के बाद', कात्यायनी तथा बद्रीनारायण विरचित आलेख 'लॉन्ग नाइन्टीज़' की काव्यात्मक रचनात्मकता का यथातथ्य विमर्श प्रस्तुत करते हैं। ऐसा विमर्श अपेक्षित भी रहा है। प्रति पाँच-छह वर्ष बाद ऐसा विमर्श, उसकी प्रस्तुति सर्वथा वांछनीय है। आलेखों की यह शृंखला समकालीन हिन्दी कविता के प्रतिष्ठित हस्ताक्षरों के काव्य-कर्म की समीक्षा के साथ उनके उल्लेखनीय अवदान को स्वीकृति प्रदान करती है। 'कथा साहित्य' स्तम्भ की चारों रचनाएँ भी पठनीय हैं। 'कविता' स्तम्भ की चारों रचनाओं में रणेन्द्र जी की 'अभी तो' व 'ख्वाबों...' दोनों कविताएँ भाव-भाषा-बिम्ब विधान दृष्टियों से विशेष प्रभावकारी हैं। 'बतरस' की वर्णनात्मकता, वैविध्य संवाही प्रकृति-चित्रण और कल्पना की उर्वरता सराहनीय है। वातायनगत उपन्यास अंश प्रभावकारी व सुरुचिपूर्ण है।

वागर्थ का मार्च 2013 अंक भी सुरुचिपूर्ण है। शुभारम्भ यशपाल के अभिमत से है जो मानवता धर्म को रेखांकित करता है। 'पानी भीतर फूल' का अन्तिम भाग सचमुच और-और ठोस सूक्तियों-उक्तियों का संवाही और चारु उपन्यास शिल्प का निदर्शक है। 'आलेख' स्तंभगत समाहित चारों आलेख अपने-अपने शीर्षकों को सटीक सिद्ध करते हैं। हृदयेश से संवाद साहित्यानुरागियों के लिए परमपयोगी है। 'प्रेमचन्द' की कहानी 'कफन' का समीक्षण और-और उपादेय है। अष्टभुजा शुक्ल जी व्यंग्य मर्मभेदी है। संगीत की हिन्दुस्तानी शैली के उजास की रचनाकर्मी हंगुबाई हंगल का स्मरण किया जाना न केवल उपयोगी, अपितु उत्साहवर्द्धक है। 'झरोखा' सर्वथा अभिनव ज्ञान-सूचना वर्धक है।

मीरा गौतम, कुरुक्षेत्र : मार्च अंक 2013 में 'वागर्थ' में नियमित प्रकाशित 'पानी भीतर फूल' उपन्यास समाप्त हो जाने से भारी रिक्तता को झेलना पड़ रहा है। बड़ी रोचकता से पढ़े जाने वाले इस उपन्यास में समाज और परिवार के मानवीय और सामाजिक सम्बन्धों को कई-कई कोनों से सकारात्मक दिशा मिली है। श्यामली और निताई के दाम्पत्य सम्बन्ध अभावों के बीच अटूट हैं। आज के अहंकारी और समानता की खोखली दावेदारी करने वाले टूटते-बिखरते रिश्तों के लिए यह एक नसीहत है, जहाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में एक दूसरे की रुचियों, भावनाओं और सात्विक प्रेम की अभिव्यक्ति ने बड़ी गहराई से प्रकृति और परिवेश के उपजे नकारात्मक प्रभावों को पूरी तरह निरस्त कर दिया है। संवाद और स्थानीय बोली का भाषा में प्रयोग कथानक में दम भर रहा है। गाँवों का मनोविज्ञान और सम्बन्धों की ईमानदारी बार-बार गाँवों की ओर लौटने को प्रेरित करती है। वात्सल्य और दाम्पत्य सम्बन्धों के अलावा गाँवों की सौहाद्रता और भाईचारे को रेखांकित करता यह उपन्यास देश के किसी भी गाँव की तस्वीर खींचता है।

विवेक सत्यांशु, इलाहाबाद : 'वागर्थ' का मार्च 2013 अंक पढ़ा। 'पानी भीतर फूल' उपन्यास का अंतिम किस्त काफी प्रभावशाली लगा। रेणु की आंचलिक संवेदना की याद दिलाता है। 80 के बाद की कविता की परिचर्चा 'वागर्थ' में निष्पक्ष नहीं है, सबने अपने-अपने खेमे के कवियों की चर्चा की है। 80 के बाद ही मेरी कविताएँ भी पहल, समकालीन भारतीय साहित्य, वागर्थ, साक्षात्कार, काव्यरूप, जनसत्ता आदि में प्रकाशित हुई थीं। 'वागर्थ' के इस अंक की कविताएँ, गद्य रचनाएँ अंक को विशिष्ट बनाती हैं।

अनीता गोस्वामी, कोलकाता : वागर्थ का मार्च 2013 अंक प्राप्त हुआ। अंक कलात्मक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

दृष्टि से परिपूर्ण लगा तथा इसकी साज-सज्जा भी सहज ही अपनी ओर ध्यान आकर्षित करती है। अंक की सभी रचनाएँ उत्साहवर्धक एवं ज्ञानवर्धक लगीं। सृजन स्मरण के अन्तरंग 'अज्ञेय' जी की 'आलोचना से संबधित पंक्तियाँ' विशेषकर अच्छी लगीं। सम्पूर्ण अंक रुचिकर है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिव कुमार आजाद, इटावा : मार्च 2013 अंक के अत्युत्तम आवरण पृष्ठ को देखकर आभास हुआ कि सचमुच बसंत आ गया है, जिसने पशु-पक्षियों, कीटपतंगों को प्रसन्न कर प्रकृति की काया ही बदल दी है। सबके सब अत्यधिक प्रसन्न हैं। 'पानी भीतर फूल' के अंतिम भाग को बहुत ध्यान से पढ़ गया। चरमोत्कर्ष भाग अति सुन्दर रहा। कित्तनी सुन्दरता से आपने सरल, सजीव प्रभावोत्पादक भाषा में मानव जीवन के गुप्त गूढ़ रहस्य को उजागर किया है- ''आधा जीवन मिलन था और आधा जीवन विरह। मिलन और विरह के बीच प्रतीक्षा का पुल था और प्रतीक्षा के पुल पर जंगल का सन्नाटा।'' इसे कभी भी झुठलाया नहीं जा सकता, यह प्रकृति का अकाट्य सत्य है जो शाश्वत है।

सेवाराम त्रिपाठी का 'भूमंडलीकरण : बनती छवियों का मायालोक' विश्व के आधुनिकतम समाज पर लिखा गया एक अद्भुत विवेचनात्मक निबन्ध है। विमल वर्मा का 'आदमी की मुक्ति की छोटी सी कुन्जी' भी एक अत्युत्तम विवेचनात्मक निबन्ध है। इस निबन्ध में उन्होंने केदारनाथ सिंह की कविताओं के माध्यम से 'आदमी की मुक्ति की छोटी सी कुन्जी' को तल्लीनता से तलाश की है। रश्मि रेखा का 'एक कविता के बहाने समकालीन हिन्दी कविता की पड़ताल' और नील कमल का 'बीच बहस में कविता' 1980 के बाद से लेकर वर्तमान की कविताओं पर बखूबी विस्तार से विवरणात्मक निबन्ध प्रस्तुत करता है। जीवन सिंह ठाकुर की 'गुजरते हुए' एक घटना प्रधान कहानी है। माँ की क्षण भर की याद से लेखक की माँ के प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति देखकर हृदय गद्गद् हो गया। प्रभात की 'मँगते' उद्देश्यपूर्ण सामाजिक कहानी है। शिवकुमार यादव की 'बुद्ध की मोहब्बत' समाज में सदियों से व्याप्त अनेकानेक अन्ध विश्वास और कुरीतियों पर आधारित एक अच्छी सामजिक कहानी है।

कुसुम खेमानी ने 'कैरीबियन द्वीपसमूह का सिरमौर' में ट्रिनीडाड के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से वहाँ की भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक, व्यवसायिक और आर्थिक जानकारी जिस सुन्दरता से उपलब्ध कराई है, वह सचमुच प्रशंसनीय है। अत्युत्तम यात्रा वर्णन के लिए हार्दिक धन्यवाद।

सुशील कुमार पाण्डेय, सुलतानपुर : वागर्थ का अप्रैल 2013 अंक खोलते ही 'देश' के अन्तर्गत गणेश शंकर विद्यार्थी का भाषा विषयक विचार पढ़ा। विद्यार्थी जी राष्ट्रभक्त थे अतएव उनका मत था कि पराई भाषा चरित्र की दृढ़ता का अपहरण कर लेती है और मातृभाषा स्वाभिमान के साथ आत्मबल प्रदान करती है। आवरण पृष्ठ का तृतीय पृष्ठ 'देशान्तर' में जार्ज लुकाच ने उपन्यास एवं महाकाव्य पर मौलिक चिन्तन किया है। अनन्त कीर्ति तिवारी ने भगवत रावत की कविता के माध्यम से हिन्दी शोध-क्षेत्र के नवीन अध्याय का उद्घाटन किया है। भगवत रावत की कविता अपने युग की प्रतिनिधि है। चन्द्रशेखर की कविताओं में चिन्तन बोध का बिम्ब खूबसूरत है। नामवर सिंह ने अभिज्ञात की पुस्तक 'खुशी ठहरती है कितनी देर' की सरल एवं सुबोध समीक्षा कर उनकी कविताओं की अन्तरात्मा में झाँककर ठीक ही कहा है- ये कविताएँ एक नवीन तथा मौलिक दिशा की ओर संकेत करती हैं। डॉ.जयप्रकाश कर्दम की पुस्तक 'मेरे संवाद' की समीक्षा में बहुत ही ज्वलन्त प्रश्न उठाया गया है। रुस्तम राय ने समीक्षा गम्भीर की है।

बिर्ख खड़का डुवर्सेली, दार्जिलिंग : वागर्थ के अप्रैल 2013 अंक में परख अन्तर्गत तीन कविता-संग्रह, एव वैचारिकी और एक साक्षात्कार की परख पढ़ने के बाद लगा, भूमंडलीकृत बाजार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यवस्था में भी कविता ने अपनी जगह सुरक्षित रखी है। भावों की अभिव्यक्ति में शब्दों का सहारा लेकर कविगण जनगण तक खुशी पहुँचाने की कोशिश में होते हैं– तलाश कर पीड़ा और पीर की छाप, चिन्ता की जड़ और आशाओं का आकाश। कवि अभिज्ञात की 'खुशी ठहरती है कितनी देर' में विवेक समीक्षक डॉ.नामवर सिंह ने अभिज्ञात को नये साँचे व ढाँचे का कवि बताकर विवेक की उपस्थिति को आवेश की आवश्यकता माना है। कुमार अंबुज के कविता संग्रह 'अमीरी रेखा' समीक्षक नरेन्द्र जैन ने पूँजीवादी बाज़ार व्यवस्था में अमीरी रेखा की असीम लम्बाई नापने का सफल प्रयास किया है। कवि अंबुज की पैनी दृष्टि में वैश्वीकरण की व्यापकता बेचैनी का कारण है। समीक्षक नरेन्द्र जैन के शब्दों में अंबुज की कविता काफ्काई यंत्रणा है और मुक्तिबोधीय अंधेरा भी है। कविताओं में उन्होंने अन्याय से न्याय की ओर जाने का नया पथ भी पाया है। कुमार अनुपम का कविता संग्रह 'बारिश मेरा घर है' में तीक्ष्ण दृष्टि के विचारक प्रांजल धर ने आधुनिक जीवन की जटिलता से उपजे यथार्थ को उकेरा है और मानवीय रिश्तों के टूटते संगीत को समझने की कोशिश भी की है। कवि अनुपम को बाजारवादी सामन्ती शक्तियों का पर्दाफाश करके 'वसुधैव' कुटुम्बकम की अवधारणा को उठाया है। भूमंडलीकरण को समझाने के कार्य में कविता को जिम्मेदारी है। सुरेश पंडित ने मैत्रेयी पुष्पा की 'तब्दील निगाहें' में साहित्य, संस्कृति, दलित, स्त्री के बारे में बदलते विचार को नए सिरे से अध्ययन–विवेचन–विश्लेषण का प्रयास किया है, क्योंकि बदलाव का परिवेश हर तरफ है और सच दायरे से बाहर भी है। जयप्रकाश कर्दम के 'मेरे संवाद' में रुस्तम राय ने लेखक के जीवन संघर्ष, जीवन मूल्य और विश्वदृष्टि के पहलुओं को दलित आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में परखने का सूक्ष्म प्रयास किया है, क्योंकि यह सच है कि दलितों की पीड़ा का सही समाधान नहीं हुआ है, समाज में बराबर का दायरा अभी तक प्राप्त नहीं है। कर्दम के साक्षात्कारों के समीक्षक रुस्तम राय ने ब्राह्मणवादी मानसिकता से सजी सँवरी भारतीय संस्कृति की त्रुटियों को दिखाकर सही दिशा दिखाई है।

क्रान्ति कनाटे, बड़ौदा : वागर्थ के अंक नियमित रूप से पढ़ रही हूँ। आपका हार्दिक अभिनन्दन कि पत्रिका देश भर के श्रेष्ठ साहित्य का प्रतिनिधित्व कर रही है।

राजेन्द्र पटोरिया, नागपुर : वागर्थ का अप्रैल 2013 अंक मिला। पढ़े बिना नहीं रहा जाता। इसमें देश–देशान्तर, बतरस, कथा–साहित्य, आलेख, कविताएँ, संस्मरण, परख, लोकमत, झरोखा, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, उपरोक्त सभी विविधताएँ एक जगह पढ़ने को मिल जाती हैं। पत्रिका बहुत पठनीय, ज्ञानवर्धक व जानकारियों से युक्त है। इसका हर अंक अपनी अलग छाप छोड़ता है। एक सुन्दर पत्रिका निकालने के लिए संपादक मंडल के प्रयासों, सोच का साधुवाद। अच्छी पत्रिका निकालना बहुत कठिन कार्य है। मैं स्वयं कोल–इंडिया की प्रतिनिधि हिन्दी साहित्यिक पत्रिका 'खनन भारती' का संपादक रहा हूँ– पत्रिका निकालने की पीड़ा व आनन्द उठा चुका हूँ।

मुकेश कुमार, गोड्डा : वागर्थ निरन्तर प्राप्त हो रही है तथा वागर्थ से साहित्यिक क्षुधा तृप्त भी हो रही हैं। अप्रैल–2013 अंक की कहानी में गोविन्द मिश्र की कहानी 'खूँटे' बहुत ही अच्छी लगी। सचमुच इंसान को अपनी मर्जी से जीने का हक उसके आखिरी वक्त तक होना चाहिए। लेकिन परिस्थितियाँ सबके साथ एक जैसी नहीं होतीं। ऐसा होता तो वृद्धाश्रम जैसी संस्था का निर्माण नहीं होता। प्रांजल धर और नामवर सिंह जी की समीक्षा अच्छी लगीं। 'चैत की लाल टहनी' का इन्तज़ार रहता है; लेकिन कुछ अंकों से यह स्थगित है। कविताओं में सुनीता जैन, यश शर्मा, किरण अग्रवाल, चन्द्रेश्वर अच्छे लगे। लघुकथाएँ, व्यंग्य को आप शामिल क्यों नहीं करते।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant
VAGARTH-8

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पन्द्रहबीश के जंगलों से (संस्मरण) : **राजेन्द्र राजन** : *यश पब्लिकेशंस : 1/10753, गली नं.3, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, नियर कीर्ति नगर, दिल्ली-110032,* *मूल्य ₹ : 195*

टिस्टा ब्रिज की फूलवाली (कहानी संग्रह) **सुबोध चन्द्र सक्सेना, सरोज सक्सेना** *1 सी/ 1ए, 38 एस.एन.राय रोड, कोलकाता-700038* *मूल्य ₹ : 110*

रात, नींद और सपने (कहानी संग्रह) **राजमणि मिश्र** *वातायन : अयोध्या अपार्टमेंट, फ्रेजर रोड, पटना-800001* *मूल्य ₹ : 200*

टी.वी.में चंपा (कहानी-संग्रह) **संजय कुमार सिंह** *सस्ता साहित्य मण्डल : एन-77 , पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001* *मूल्य ₹ : 90*

एक नहीं था अफलातून (नाटक) : **रमेश दव** *सस्ता साहित्य मण्डल : एन-77 , पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001* *मूल्य ₹ : 60*

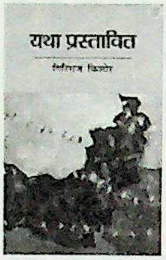

यथा प्रस्तावित (उपन्यास) **गिरिराज किशोर** : *सस्ता साहित्य मण्डल : एन-77 , पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001* *मूल्य ₹ : 120*

स्वर-एकादश (कविता-संकलन) **चयन : प्रभात पाण्डेय, सम्पादन : राज्यवर्द्धन** *बोधि प्रकाशन : एफ-77, सेक्टर 9, रोड नं.11, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006 मूल्य ₹ : 70*

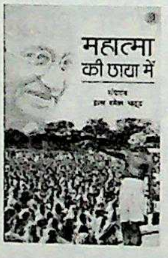

महात्मा की छाया में (डायरी) **सं.इला रमेश भट्ट** *सस्ता साहित्य मण्डल : एन-77 , पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001* *मूल्य ₹ : 90*

रेणु का कथेतर साहित्य : समाज-संस्कृति (आलोचना) **ऋषि कुमार** *अमन प्रकाशन : 104ए/80सी, रामबाग, कानपुर-12* *मूल्य ₹ : 400*

जद बी माँडबा बैठूँ छूँ कतिवा (राजस्थानी कविता) **: ओम नागर** *राजस्थाना साहित्य एवं संस्कृति जनहित प्रयास, बीकानेर (राजस्थान) मूल्य ₹ : 100*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंधवोई नहीं दिन हाल (राजस्थानी कविता) : **अम्बिका दत्त**
बोधि प्रकाशन : एफ-77, सेक्टर 9, रोड नं.11, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006 मूल्य ₹ : 35

स्थापित होता है शब्द हर बार (कविता संग्रह) : **राघवेन्द्र तिवारी**
पहले पहल प्रकाश : भोपाल मूल्य ₹ : 200

अरण्य तंत्र (उपन्यास) : **गोविन्द मिश्र**
किताबघर प्रकाशन : 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, मूल्य ₹ : 300

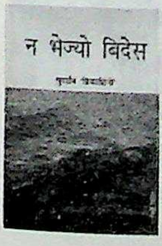

न भेज्यो बिदेस (उपन्यास) : **सुदर्शन प्रियदर्शिनी**
नमन प्रकाशन : 4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, मूल्य ₹ : 200

एक सवाये सुर को साधो! (ग़ज़ल संग्रह) : **सलीम ख़ाँ फ़रीद**
बोधि प्रकाशन : एफ-77, सेक्टर 9, रोड नं.11, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006 मूल्य ₹ : 100

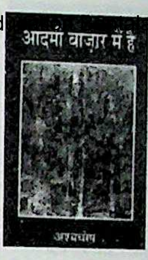

आदमी बाज़ार में है (ग़ज़ल संग्रह) : **अश्वघोष**
राजेश प्रकाशन : जी-62, गली नं.5, अर्जुन नगर दिल्ली-110051, मूल्य ₹ : 200

दस्तख़त (कहानी संग्रह) : **ज्योति कुमारी**
वाणी प्रकाशन : 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 मूल्य ₹ : 100

तो अंग्रेज क्या बुरे थे (कहानी संग्रह) : **रविन्द्र बड़गैयाँ**
राधाकृष्ण प्रकाशन : 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 मूल्य ₹ : 95

बाँसों के झुरमुट से (नवगीत संग्रह) : **ब्रजेश श्रीवास्तव**
उत्तरायण प्रकाशन : सी-2/114, सेक्टर-एफ (विस्तार), लखनऊ-226012 मूल्य ₹ : 250

और थोड़ी दूर (कविता संग्रह) : **सच्चिदानन्द विशाख**
उत्तरायण प्रकाशन : सी-2/114, सेक्टर-एफ (विस्तार), लखनऊ-226012 मूल्य ₹ : 250

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महिला कथाकार
1965 से आद्यतन (कहानी संग्रह)
सं.पुष्पपाल सिंह
हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स : ए-53 सेक्टर-57, नोएडा-201301
मूल्य ₹ : 250

नवागत पीढ़ी
21वीं शती की कहानियाँ
(कहानी संग्रह) :
सं.पुष्पपाल सिंह
हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स : ए-53 सेक्टर-57, नोएडा-201301
मूल्य ₹ : 250

एक सौ पचास प्रेमिकाएँ
(कहानी संग्रह) :
इंदिरा दाँगी
रामकमल प्रकाशन : 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 मूल्य ₹ : 95

मनु को बनाती मनई
(कविता संग्रह) : **ज्ञानेन्द्रपति**
किताबघर प्रकाशन : 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, मूल्य ₹ : 250

गोपाल सिंह नेपाली युगद्रष्टा कवि
(जीवनी) : **नंदकिशोर नंदन**
प्रकाशन विभाग : सूचना भवन, सी.जी.ओ.कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003
मूल्य ₹ : 150

मेरा मुझ में कुछ नहीं
(आत्मकथा) : **रमेश उपाध्याय**
शब्दसंधान प्रकाशन : 107, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली-110063
मूल्य ₹ : 300

साए (कहानी संग्रह) :
विजय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस : 337 चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003
मूल्य ₹ : 250

महानायक बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर
(ऐतिहासिक उपन्यास) :
मोहनदास नैमिशराय
धम्म ज्योति चैरिटेबल ट्रस्ट : गली नं.6, डी-ब्लॉक, हर्ष विहार दिल्ली-110093
मूल्य ₹ : 70

आवाजें अब नहीं आतीं
(प्रतिनिधि कविताएँ) :
राजेन्द्र नागदेव
कल्पतरु प्रकाशन : रेवती कुंज हापुड़-245101, मूल्य ₹ : 295

मस्तूलों के इर्दगिर्द
(कहानी संग्रह) :
विमल चन्द्र पाण्डेय
आधार प्रकाशन : एससीएफ 267 सेक्टर-16, पंचकूला-134113 हरियाणा, मूल्य ₹ : 250

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ग्रीस और दुबई (यात्रा वृत्तांत)
माला वर्मा
मानव प्रकाशन : 131, चित्तरंजन एवेन्यू, कोलकाता-700073
मूल्य ₹ : 400

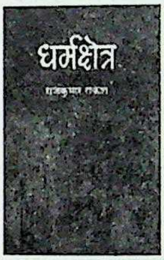

धर्मक्षेत्र (उपन्यास)
राजकुमार राकेश
आधार प्रकाशन : एससीएफ 267 सेक्टर-16, पंचकूला-134113 हरियाणा, मूल्य ₹ : 350

मुट्ठी में बादल (उपन्यास)
हरियश राय
आधार प्रकाशन : एससीएफ 267 सेक्टर-16, पंचकूला-134113 हरियाणा, मूल्य ₹ : 250

ललित निबन्ध स्वरूप एवं परम्परा (आलोचना)
श्रीराम परिहार
आर्य प्रकाश मंडल : IX/221 सरस्वती भंडार, गांधीनगर दिल्ली-110031
मूल्य ₹ : 750

गद्य का परिवेश
(आलोचनात्मक निबंध)
विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
किताबघर प्रकाशन : 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मूल्य ₹ : 350

बोल कि लब आज़ाद हैं
(उपन्यास)
नसीम साकेती
शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स : 10295, लेन नं.1, वैटस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032 मूल्य ₹ : 175

चिरकुट (उपन्यास)
हितेन्द्र पटेल
नयी किताब : 1/11829, प्रथम मंजिल, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
मूल्य ₹ : 110

साहित्य-दर्शन (आलोचना)
आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री
किताबघर प्रकाशन : 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मूल्य ₹ : 400

आपकी प्रतीक्षा (उपन्यास)
श्याम विमल
आर्य प्रकाश मंडल : IX/221 सरस्वती भंडार, गांधीनगर दिल्ली-110031
मूल्य ₹ : 270

यायावर (कविता संग्रह)
सौरभ राय 'भगीरथ'

T3, Signet Apartment, Behind HSBC, 139/1, 3rd Cross, Ist Main, Sarvabhouma Nagar, Bannerghatta Road, Bangalore-560076
मूल्य ₹ : 250

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

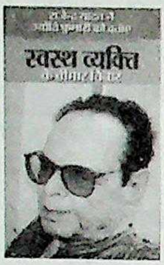

राजेन्द्र यादव ने ज्योति कुमारी को बताए

स्वस्थ व्यक्ति के बीमार विचार (विचार)

राजेन्द्र यादव

किताबघर प्रकाशन : 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

मूल्य ₹ : 400

दो ध्रुव (नाटक संग्रह)

अन्तोन चेख़ोव

अमरसत्य प्रकाशन : ग्राउंड फ्लोर 109, ब्लॉक बी, प्रीति विहार दिल्ली-110092, मूल्य ₹ : 225

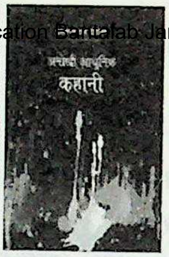

अनोखी आधुनिक कहानी

(कहानी संग्रह) :

दामोदर दत्त दीक्षित

साहित्य भंडार : 50, चाहचन्द, इलाहाबाद-211003

मूल्य ₹ : 250

तीन सहेलियाँ तीन प्रेमी

(स्त्री मन की कहानियाँ)

आकांक्षा पारे काशिव

रामकमल प्रकाशन : 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

मूल्य ₹ : 80

वागर्थ प्राप्ति स्थान

कोलकाता : मोहन बुक एजेंसी, 2, डेकर्स लेन, कोलकाता-69 / पुस्तक केंद्र, राजकमल प्रकाशन, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-17/ मानव प्रकाशन, 131, चित्तरंजन एवेन्यू, कोलकाता-73

दिल्ली : गीता बुक सेंटर, श्री राजेन्द्र सिंह, जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, नियर गंगा हॉस्टल, नई दिल्ली-67/ सेंट्रल न्यूज़ एजेंसी प्रा.लि., 4-ई/4, झंडेवाला एक्सटेंशन, नई दिल्ली-55/ हेम बुक सेंटर, श्री संजय कुमार, जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, नियर लाइब्रेरी बिल्डिंग, नई दिल्ली-67 / एम.एल. एंड सन्स, 2594/3 मस्जिद कलाली बाग, अल्बर्ट स्क्वायर, पॉकेट सी, आर.के. आश्रम मार्ग, गोल मार्केट, नई दिल्ली-1/ इंडिपेंडेंट पब्लिशर्स ग्रुप, यूनिवर्सिटी स्टूडेंट सेंटर, आर्ट्स फैकल्टी, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली-7।

बिहार : श्री सुनील कुमार आर्य, सोगरा मार्केट, गरपर, बिहार शरीफ, नालंदा-803101/ श्री कृष्णचंद्र चौधरी, स्टेट हास्पीटल, अमास, गया-824121/ लालमुनी बुक स्टाल, श्री लालमुनी शाह, आर.एन. शाह चौक, पुर्णिया-854301/ श्री अनन्त कुमार सिंह, सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक, मंगल पाण्डेय पथ, आरा-802301(भोजपुर)/ श्री अनिल कुमार यादव, रेलवे बुक स्टॉल, खगड़िया-851204/ मुरारी प्रसाद बुक सेलर, न्यू मार्केट, पटना/ वाणी प्रकाशन, अशोक राजपथ, पटना-800004/ कांति प्रकाशन, जानकी प्रकाशन भवन, अशोक राजपथ, पटना- 800004/ अन्नू बुक स्टाल, गोला रोड, दुर्ग स्थान, मुजफ्फरपुर/ मोहन बुक्स एण्ड न्यूज एजेन्सी, रोडवेज बस स्टैण्ड, छपरा- 841301/ ए.के. राय रेलवे बुक स्टॉल, भागलपुर / एस.के. बुक स्टॉल, श्री अरुण अग्रवाल, खलीफा बाग, भागलपुर- 812001 / कौशिक न्यूज एजेंसी, निर्मला भवन, भूरामल फुलवारी, ईश्वर नगर (ईशाकचक), भागलपुर-812001 /नेशनल न्यूज एजेंसी, बुद्धा प्लाजा, बुद्ध मार्ग, पटना-800001।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

झारखण्ड : मॉडर्न बुक डिपो, मेन रोड, राँची/ बुक फाइंड प्लॉट नं. एचई/8 सिटी सेंटर सेक्टर 4, बोकारो स्टील सिटी- 827004।/श्रीमती विजय शर्मा, 151 न्यू बाराद्वारी, जमशेदपुर-831001 / श्री चंद्रशेखर चौधरी, रेंज ऑफिस, फॉरेस्ट, मोहल्ला कृष्णपुर, देवघर, मो. 09472312497।

छत्तीसगढ़ : कुशल्स बुक प्वाइंट, शॉप नं.-3, नूतन कम्प्लेक्स, ओल्ड बस स्टैंड, रायपुर-492001/ श्री मुकुन्द पारेख, ओल्ड बस स्टैंड, रायपुर-492001/मिश्रा बुक स्टाल एंड न्यूज एजेन्सी, न्यू बस स्टैंड, जगदलपुर, बस्तर-494001, श्री वी.वी. शुक्ला, द्वारा रेलवे स्टेशन, बिलासपुर- 495004।

मध्य प्रदेश : श्री महेश कुशवाहा, महेश न्यूज एजेंसी, न्यू बस स्टैंड, शहडोल-484001/ शंकर कम्पीटिशन बुक हाउस, 8 आरआईटी कम्प्लेक्स, सिरमौर चौक, रीवा-486001/ श्री हरिओम राजोरिया, लम्बरदार गली, अशोक नगर-473331/ जनता न्यूज एजेंसी, मालवीय चौक, जबलपुर/ साई न्यूज एजेंसी, प्लेटफॉर्म नं.-1, रेलवे स्टेशन, शहडोल- 484001/ श्री नेमीचंद्र जैन, संजय बुक स्टॉल, सफारी होटल के नीचे, स्टेशन-बजरिया, ग्वालियर। ओम न्यूज एजेन्सी, रंगमहल टाकीज के सामने, न्यू मार्केट, भोपाल। गाँधी बुक स्टॉल, नया बस स्टैण्ड, शहडोल-484001।

उत्तर प्रदेश : करेंट बुक डिपो., 18/53, मॉल रोड, नियर फूल बाग, कानपुर-208001/अल्का न्यूज एजेंसी, रेल बाजार, कैंट, कानपुर / जन चेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020/ जन चेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273009/ मौर्या बुक स्टॉल, बी.एच.यू. गेट, लंका, वाराणसी/ अमर बुक सेन्टर, बी.एच.यू. गेट, लंका, वाराणसी/सरस्वती इंटरप्राइजेज, खड़ौनी कोठी, बलिया-277001/ गुप्ता बुक स्टाल, नियर कांग्रेस भवन, बहराइच/ भीम पुस्तक भंडार, एल.आई.जी-335 आरडीए कॉलोनी, इंदिरा नगर, रायबरेली-229001/ लोक भारती, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-221025 / सिंह एंड ब्रदर्स, सी-32/2 विद्यापीठ रोड, वाराणसी/ मॉडर्न बुक डिपो., जनपथ मार्केट, लखनऊ/ लक्ष्मी बुक स्टॉल, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, ओम एजेंसीज, सोहबतिया बाग, इलाहाबाद।

उत्तराखण्ड :आदित्य न्यूज एजेंसी, पलटन बाजार, देहरादून / पं. घनश्यामदास पुनेठा एंड सन्स,सिमलगेयर बाजार, पिथौरागढ़-262501

राजस्थान : श्री नेमीचन्द्र जैन, अंतरप्रांतीय कुमार साहित्य परिषद, जोधपुर/ श्री राजेन्द्र सिंह, बुक्स एण्ड न्यूज मार्ट, एम.आई. रोड, जयपुर-302001/ सर्वोदय बुक स्टॉल, 70 जसवंत बिल्डिंग, स्टेशन रोड, जोधपुर/ ब्यास रोजगार एवं बुक सेंटर, श्री कल्याणनगर, महेशनगर, जयपुर/ नीशा मिश्रा, 201 नानक पैलेस, श्रीनाथ मार्ग, कोटा जंक्शन- 324002/ सुनील बुक स्टॉल, टाउन हॉल, लिंक रोड, उदयपुर- 313001/ यतीन्द्र साहित्य सदन, सरस्वती विहार, कोर्ट के सामने, भीलवाड़ा- 311001

महाराष्ट्र : पुस्तक संसार, धानवते चेम्बर्स, सीतावर्दी, नागपुर-440012

मुम्बई : श्री रमन मिश्रा, परिदृश्य प्रकाशन, दादी संतुक लेन, इंजीनियर हाउस, धोबी तालाब, मुंबई-1/प्रभात बुक सेन्टर, बी-2/104, शीतल पैलेस, एमटीएनएल के पीछे, शीतल नगर, मीरा रोड (ईस्ट), मुम्बई-401107, मो. 09892815391/पिपुल बुक हाऊस, मेहर हाऊस, 15 कवासजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, मुंबई-1

पंजाब : पंजाब बुक सेंटर, एससीओ-1126-27, सेक्टर-22-बी, चंडीगढ़-160017/ पंजाब बुक सेन्टर, निअर :प्लाजा होटल, जालंधर-144001

ओड़िसा : च्वाइस बुक सेंटर, गवर्मेंट बस स्टैंड, बलांगीर-767001

मेघालय : श्री भरत प्रसाद, नॉर्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी, नेहू कैम्पस, नेहू, शिलाँग- 793022

सर्वोदय के रेलवे स्टेशन स्थित निम्न स्टॉलों पर- दरभंगा, इलाहाबाद जंक्शन, इटावा, रायपुर, वाराणसी, रतलाम।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय भाषा परिषद का संस्थापक दिवस समारोह

भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता ने 1 मई 2013 को अपनी स्थापना के 39 वीं वर्षगाँठ का पालन किया। इस उपलक्ष्य में एक व्याख्यान का आयोजन किया गया था। प्रख्यात गांधीवादी-जीवन दर्शन के मर्मज्ञ श्री कुमार प्रशान्त ने 'आज हमें जिस गांधी की जरूरत है' विषय पर बेहद ही सारगर्भित व्याख्यान दिया। श्री कुमार प्रशान्त ने भारत की बहुत ही मार्मिक तस्वीर पेश की। कश्मीर से लेकर मणिपुर तक के हालात बयाँ किये और कहा कि गांधी ने क्या इसी भारत का सपना देखा था? सच बोलना आज एटॅम बम की तरह है। और अगर सच नहीं बोल सकते तो सच बोलने वालों का समर्थन करो। आगे उन्होंने बताया कि आज भारत में 15 करोड़ पढ़े-लिखे बेकार युवक हैं जो 15 करोड़ एटम बम की तरह हैं। इसके लिए जिम्मेवार कौन है?

कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ.प्रतिभा अग्रवाल ने की, संस्थापक दिवस पर अपना वक्तव्य श्री नन्दलाल शाह ने रखा। संस्थापक-द्वय स्व.सीताराम सकसेरिया एवं स्व.भागीरथ कानोड़िया के जीवन पर श्री रतनलाल शाह ने प्रकाश डाला। स्वागत भाषण श्री ईश्वरी प्रसाद टांटिया ने दिया। अतिथियों का आभार एवं अध्यक्षीय वक्तव्य डा.प्रतिभा अग्रवाल ने व्यक्त किया। सभागार में में जानेमाने साहित्यकार शंभुनाथ, राज्यवर्द्धन, जितेन्द्र जीतांशु, एकान्त श्रीवास्तव, भोला प्रसाद सिंह, हितेन्द्र पटेल, जीवन सिंह, नरेन्द्र सिंह सहित काफी संख्या में लोग उपस्थित थे।

प्रस्तुति : सुशील कान्ति

महादेवी वर्मा पर अंतर्विषयक शोध संगोष्ठी

पिछले 27 अप्रैल को भाषा मंच (अंतर्गत सोदपुर सोलिडेरिटी सोसायटी) द्वारा भारतीय भाषा परिषद के सहयोग से 'महादेवी वर्मा की चिंताओं में स्त्री' विषय पर अंतर्विषयक शोध संगोष्ठी आयोजित की गई। संगोष्ठी में शोध दल ने महादेवी के चित्रों और उनकी रचनाओं पर ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय नजरिए से विचार करते हुए उनके साहित्य में उभरे स्त्री सशक्तिकरण के दर्श को दृश्य-श्रव्य माध्यम के जरिए सामने रखा। संगोष्ठी में कोलकाता विश्वविद्यालय के रेजिस्ट्रार डॉ.वासव चोधरी, मनोज कुमार सरकार, इलीना बनिक, अशोक रंजन ठाकुर, शंभुनाथ, जयंत चौधरी आदि ने अपने विचार रखे। संगोष्ठी में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा निर्मित महादेवी के जीवन पर आधारित फिल्म 'पंथ रहने दो अपरिचित' का प्रदर्शन किया गया। संगोष्ठी में शोध दल के छात्र-छात्राएँ उपस्थित थे। भाषा मंच एवं चेम्बर ऑफ फाइन आर्ट्स के सहयोग से महादेवी के चित्रों की प्रदर्शनी भी आयोजित की गई। मंच का संचालन रॉखी रायॅ हल्दर ने किया।

प्रस्तुति : राखी रॉय हल्दर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'मेरा मुझ में कुछ नहीं' पर विचार गोष्ठी

'कथन' के संस्थापक संपादक रमेश उपाध्याय के 71वें जन्मदिन पर उनकी किताब 'मेरा मुझ में कुछ नहीं' का लोकार्पण 1 मार्च, 2013 को नयी दिल्ली में गांधी शान्ति प्रतिष्ठान के सभागार में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर 'कथन' पत्रिका और शब्दसंधान प्रकाशन के संयुक्त प्रयास से एक विचार-गोष्ठी का आयोजन भी किया गया, जिसमें सुप्रसिद्ध साहित्यकारों ने किताब पर तथा उसके बहाने रमेश उपाध्याय के कृतित्व एवं व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर अपने विचार व्यक्त किये। समारोह के अध्यक्ष थे विश्वनाथ त्रिपाठी और मुख्य अतिथि थे मैनेजर पाण्डेय। वक्ता थे कवि लीलाधर मंडलोई, कथाकार अल्पना मिश्र, व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय, युवा आलोचक राकेश कुमार और विज्ञान लेखक देवेंद्र मेवाड़ी। 'कथन' की संपादक संज्ञा उपाध्याय ने स्वागत वक्तव्य दिया और कार्यक्रम का संचालन युवा आलोचक और 'बनास जन' के संपादक पल्लव ने किया।

लीलाधर मंडोलोई ने पुस्तक की चर्चा करते हुए कहा कि- इस किताब में एक अध्याय है 'मनचाहे ढंग से मनचाहा काम'। मुझे लगता है कि यह इस किताब का नाम भी हो सकता था, क्योंकि यह किताब भी इनका मनचाहे ढंग से किया गया मनचाहा काम है।' राकेश कुमार ने कहा- 'इसमें संकलित सभी रचनाएँ आत्मकथात्मक हैं और साथ ही साहित्यिक भी।' अल्पना मिश्र ने उपाध्याय जी को साहित्य में व्यावसायिकता के विरोधी कहा तो मैनेजर पाण्डेय ने कहा कि- 'इस पुस्तक में रमेश जी ने हिंन्दी आलोचना पर, खास तौर से कहानी की वर्तमान आलोचना पर, जो विचार किया है, उससे हिन्दी आलोचना की संस्कृति और विकृति दोनों सामने आती हैं।' विश्वनाथ त्रिपाठी ने रमेश उपाध्याय को महावीर प्रसाद द्विवेदी की परम्परा में रखा।

प्रस्तुति : संज्ञा उपाध्याय

'मेरा राजहंस' की 25वीं नाट्य प्रस्तुति

बरेली के विंडरमेयर थियेटर में सुधीर विद्यार्थी के आत्मकथात्मक संस्मरण 'मेरा राजहंस' की 25वीं नाट्य प्रस्तुति सम्पन्न हुई जिसमें जिसमें एकल अभिनय शाहजहाँपुर के प्रख्यात रंगकर्मी मनीष मनि ने किया। इसका निर्देशन एवं परिकल्पना नाटक लेखक राजेश कुमार की थी। अपने दिवंगत पुत्र चंदन अभिषेक की मूक बधिरता की समस्या से संघर्ष करते और फिर उस बच्चे को एक मोटर दुर्घटना में खोते पिता की इस व्यथा कथा के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नई दिल्ली, भारतेन्दु नाट्य अकादमी तथा उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी लखनऊ सहित देश भर में 25 प्रदर्शन हो चुके हैं। ?

प्रस्तुति : कविता भारत

'मौरसदार लड़ता है' का लोकर्पण

पिछले दिनों तिलड़ी सम्मान समिति के तत्त्वावधान में साहित्यकार व रंगकर्मी महावीर रवांल्टा के नाटक 'मौरसदार लड़ता है' का लोकार्पण उत्तराखण्ड के शहरी विकास, पशुपालन, कारागार, नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड मंत्री प्रीतम सिंह पंवार ने किया। समारोह की अध्यक्षता नगर पंचायत अध्यक्ष बुद्धि सिंह रावत ने की।

प्रस्तुति : महावीर रवांल्टा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान सम्मान समारोह एवं गोष्ठी

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के तत्त्वावधान में सम्मान समारोह एवं महादेवी वर्मा की स्मृति का समर्पित 'समकालीन समाज और हिन्दी साहित्य का उत्तरदायित्व' विषय पर केन्द्रित संगोष्ठी का आयोजन यशपाल सभागार, हिन्दी भवन लखनऊ में किया गया। मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव ने सम्मान समारोह का गौरव बढ़ाया। समारोह की अध्यक्षता श्री उदय प्रताप सिंह ने की।

भारत भारती सम्मान-2009 से डॉ.महीप सिंह, भारत भारती सम्मान-2010 से डॉ.कैलाश वाजपेयी, भारत भारती सम्मान-2011 से श्री गोविन्द मिश्र को सम्मानित किया गया। इसी प्रकार महात्मा गांधी साहित्य सम्मान-2009 से कमल किशोर गोयनका, महात्मा गांधी साहित्य सम्मान-2010 से मैत्रेयी पुष्पा, महात्मा गांधी सम्मान-2011 से नासिरा शर्मा को सम्मानित किया गया। हिन्दी गौरव सम्मान-2009 से सरला शुक्ला, हिन्दी गौरव सम्मान-2010 से के.पी.सक्सेना, हिन्दी गौरव सम्मान-2011 से श्रीकृष्ण तिवारी को सम्मानित किया गया। समारोह में आभार एवं संचालन अमिता दुबे ने किया।

प्रस्तुति : सुधाकर अदीब

'अजनबी होते शहर में' का विमोचन

गोरखपुर के प्रेस क्लब में पिछले 21 अप्रैल को विनय मितवा का काव्य संग्रह 'अजनबी होते शहर में' का विमोचन किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि वरिष्ठ साहित्यकार गिरिराज किशोर ने कहा कि मितवा की कविताएँ जीवन से दूर होती संवेदनाओं को पकड़ती हैं। विशिष्ट अतिथि रामदेव शुक्ल ने कहा कि विनय मितवा अपने समय के सच से सचेत रूप से जुड़े हैं। इस अवसर पर समारोह में राहुल श्रीवास्तव, प्रशान्त श्रीवास्तव, प्रदीप सिंह, अजय पाण्डेय, भगत गौड़, आलोक श्रीवास्तव, मुकेश परमात्मा प्रसाद, अनन्त मिश्रा, संजय श्रीवास्तव, अशक आदि सम्मिलित थे।

कविता का जनतंत्र और जनतंत्र की कविता पर विद्वानों का विमर्श

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के इलाहाबाद क्षेत्रीय केन्द्र में 'कविता का जनतंत्र और जनतंत्र की कविता' विषय पर गोष्ठी की आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता हिन्दी की सुप्रसिद्ध आलोचक प्रो.निर्मला जैन ने की। बतौर मुख्य अतिथि कुलपति विभूति नारायण राय, वरिष्ठ साहित्यकार विजय बाहदुर सिंह, भरत भारद्वाज, उदभ्रान्त ने भी अपने विचार रखे। इस अवसर पर हरिश्चन्द्र आग्रवाल की पुस्तक 'सवाल यह है' का विमोचन भी किया गया।

प्रस्तुति : अमित विश्वास

रामधारी सिंह दिनकर की कविताओं की प्रतियोगिता

सदीनामा और भारतीय भाषा परिषद के संयुक्त तत्वावधान में परिषद सभाकक्ष में 24 अप्रैल को दोपहर 12 बजे से रामधारी सिंह दिनकर की कविताओं की एक प्रतियोगिता आयोजित की गई। इस प्रतियोगिता में शहर के विभिन्न कॉलेजों के छात्र-छात्राओं ने दिनकर की कविताओं की आवृति की। प्रथम स्थान पर रहीं प्रीति ओझा (लाल बाबा कॉलेज), द्वितीय स्थान पर रहीं पुष्पा मान (कोलकाता विश्वविद्यालय), तृतीय स्थान पर संयुक्त रूप से विजयी रहे पूजा सिंह और रवि साव (योगेश चन्द्र कॉलेज)। प्रतियोगिता में जज थे जयपुरिया कॉलेज के अध्यापक श्री रणजीत और भारतीय भाषा परिषद के सुशील कान्ति। धन्यवाद ज्ञापन भारतीय भाषा परिषद के प्रबंधक श्री ए.के.बैनर्जी ने किया। संचालिका थी कविता और कार्यक्रम का संयोजक तुनीर कुमार थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य-संगीत उत्सव

श्री अचलेश्वर महादेव मन्दिर फाउंडेशन डाला, सोनभद्र के प्रांगण में महाशिवरात्रि महोत्सव एवं साहित्य-संगीत उत्सव में आदिवासी साहित्य-कला-संस्कृति के शोधकर्ता एवं सोनहाटी पत्रिका के प्रधान संपादक दीपक कुमार केसरवानी को साहित्य लेखन एवं संपादन के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए देश के प्रख्यात कवि-कथाकार उदय प्रकाश द्वारा स्मृतिचिन्ह प्रदान कर सम्मानित किया गया। इसी समारोह में आकांक्षा पारे, मीनाक्षी जिजीविषा को भी सम्मानित किया गया। उत्सव में 'हिन्दी की सांस्कृतिक विमुखता' विषयक सेमिनार पर विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये। उत्सव का द्वितीय सत्र महान सितार वादक पं.रविशंकर जी को समर्पित रहा। अतिथियों का स्वागत महंथ मुरली तिवारी एवं आभार, कार्यक्रम के संयोजक चन्द्रप्रकाश तिवारी ने व्यक्त किया।

प्रस्तुति : प्रतिभादीप

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल : एक विमर्श

भोपल के दुष्यंत कुमार संग्रहालय में पिछले दिनों ग़ज़लायन-3 का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे श्याम मुंशी ने कहा कि 'ग़ज़ल दर असल दुनिया की सारी जबानों की कविता में जितने भी फार्म है उनकी बादशाह है।' कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ.मधुर नज्मी थे। स्वागत वक्तव्य किशन तिवारी ने दिया। अनवारे इस्लाम ने 'समकालीन ग़ज़ल' विषय पर अपना विचार व्यक्त किया। कार्यक्रम के अगले चरण में शिवकुमार अर्चन, बद्रवास्ती, शाहिद समर एवं विदिशा से पधारे सुरेन्द्र श्रीवास्तव अपनी समकालीन ग़ज़लों का पाठ किया। कार्यक्रम का संचालन जाने-माने ग़ज़लकार महेश अग्रवाल ने किया तथा आभार प्रदर्शन सुभाष दुबे ने किया।

प्रस्तुति : किशन तिवारी

पुस्तक मिली

योगक्षेम (उपन्यास) : **राजेन्द्र त्यागी** : परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 540 रुपये।
अन्तर्द्वन्द्व (उपन्यास) : **ओमप्रकाश** : पंच-पान प्रकाशन, जोधपुर , मूल्य : निःशुल्क।
मायण (उपन्यास) : **आनंद प्रकाश माहेश्वरी** : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 150 रुपये।
रमण दा (उपन्यास) : **सुरेन्द्र प्रसाद यादव** : निराली दुनिया पब्लि., दिल्ली, मूल्य : 150 रुपये।
गुल्लू और एक सतरंगी (किशोर उपन्यास) : **श्रीनिवास वत्स** : किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 240 रुपये।
समझणिये की मर (हरियाणवी उपन्यास) : **श्याम सखा 'श्याम'** : सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल, मूल्य : 150 रुपये।
औरत वे पाँचवां (हरियाणवी दोहा-संकलन) : **श्याम सखा 'श्याम'** : सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल, मूल्य : 150 रुपये।
रघुराज नगर का शहीद और अन्य कहानियाँ (कहनी संग्रह) : **जयप्रकाश** : गौरव बुक्स, दिल्ली, मूल्य : 200 रुपये।
आशीर्वाद एवं अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह) : **गोवर्धन लाल गर्ग** : पंकज पब्लिकेशन्स, जयपुर, मूल्य : 100 रुपये।
हे राम! (कहानी संग्रह) : **सुशान्त सुप्रिय** : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, मूल्य : 200 रुपये।
बारिश, ठंड और वह (कहानी संग्रह) : **गजेन्द्र रावत** : कश्यप पब्लिकेशन, ग़ाज़ियाबाद, मूल्य : 180 रुपये।
पीठ पीछे की दुनिया (कहानी संग्रह) : **नीलम चतुर्वेदी** : सुहानी बुक्स, दिल्ली, मूल्य : 200 रुपये।
यहीं-कहीं (लघु कथा संग्रह) : **सुरेश जांगिड़ उदय** : अक्षरधाम प्रकाशन, कैथल, हरि. मूल्य : 100 रुपये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविश–2 (लघुकथा संग्रह) : **सुरेश गर्ग** : माँ प्रकाशन, विदिशा, मूल्य : 101 रुपये।

छोटे कदम (लघुकथा संग्रह) : **पुरुषोत्तम कुमार** : गगन स्वर बुक्स, ग़ाज़ियाबाद , मूल्य : 180 रुपये।

अन्तर–पथ (कविता संग्रह) : **रचना शर्मा** : पिल्ग्रिम्स प्रकाशन, वाराणसी, मूल्य : 300 रुपये।

बस एक मुट्ठी राख (कविता संग्रह) : **चन्द्रशेखर चौधरी** : मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली , मूल्य : 140 रुपये।

संघर्ष ममता का (कविता संग्रह) : **शुभदर्शन** : विभोर प्रकाशन, अमृतसर, मूल्य : 250 रुपये।

सायना नेहवाल (कविता संग्रह) : **सायना नेहवाल** : पेंगुइन प्रकाशन, दिल्ली , मूल्य : 150 रुपये।

राजपथ पर (काव्य संग्रह) : **अमरनाथ 'अजेय'** : ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, मूल्य : 200 रुपये।

अनुभूतियों की दस्तकें (कविता संग्रह) : **गिरिजा शंकर मोदी** : ज्यातिलोक प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 200 रुपये।

गूँजती रहती है प्रतिध्वनि (कविता संग्रह) : **रमेश चन्द्र पन्त** : विन्सर पब्लिशिंग, देहरादून, मूल्य : 100 रुपये।

ताना है मैंने इन्द्रधनुष (कविता संग्रह) : **राजमणि मिश्र** : वातायन प्रकाशन, पटना, मूल्य : 150 रुपये।

मुक्ति–द्वार के सामने (कविता संग्रह) : **प्रताप सहगल** : अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 150 रुपये।

अनुभूति (कविता संग्रह) : **इला मुखोपाध्याय** : सूर्या मीडिया, दुर्ग , मूल्य : 80 रुपये।

विज्ञान नवनीत (आलेख) : **रमेश दत्त शर्मा** : आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, मूल्य : 290 रुपये।

मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल संग्रह) : **मनोज अबोध** : हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, मूल्य : 150 रुपये।

अंगारों पर शबनम (ग़ज़ल संग्रह) : **वीरेन्द्र खरे 'अकेला'** : अयन प्रकाशन, दिल्ली , मूल्य : 200 रुपये।

बहुत कुछ भूल जाता हूँ (ग़ज़ल संग्रह) : **मृत्युंजय मिश्र 'करुणेश'** : किताब पब्लिकेशन, दिल्ली, मूल्य : 150 रुपये।

महान विभूतियों का अधूरा बचपन (जीवनी) : **विनोद कुमार मिश्र** : आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, मूल्य : 200 रुपये।

बाबा शेख़ फ़रीद (जीवनी) : **हरिकृष्ण देवसरे** : सुहानी बुक्स, दिल्ली, मूल्य : 120 रुपये।

बर्फ़ की वादी में (माहिये) : **सिराज देहलवी** : गुलिस्ताँ प्रकाशन, कोलकाता, मूल्य : 150 रुपये।

दुनिया माया जाल (दोहे) : **सिराज देहलवी** : गुलिस्ताँ प्रकाशन, कोलकाता, मूल्य : 150 रुपये।

हर पल मेरे साथ (दोहे) : **कमलेश कुमार गुप्त** : अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर , मूल्य : 75 रुपये।

धनक रंग (रूबाइयाँ) : **सिराज देहलवी** : गुलिस्ताँ प्रकाशन, कोलकाता, मूल्य : 150 रुपये।

यादों का जंगल (हाइको) : **सिराज देहलवी** : गुलिस्ताँ प्रकाशन, कोलकाता, मूल्य : 150 रुपये।

यह क्या हो रहा है? (हास्य व्यंग्य संग्रह) : **जयगोपाल मदान** : संस्कृति प्रेस, दिल्ली, मूल्य : 225 रुपये।

उत्तर में आदमी (निबन्ध–संग्रह) : **रामनारायण 'रमण'** : अयन प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 250 रुपये।

गँवई गंध–गुमान (विमर्श) : **सोमेश शेखर चन्द्र** : एक्सिस बुक्स, दिल्ली, मूल्य : 295 रुपये।

डॉ.अमरेन्द्र संदर्भ और साहित्य (व्यक्तित्व) : **सं.आभा पूर्वे** : समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 200 रुपये।

साहित्यिक तुला पर वाल्मीकि रामायण (आलोचना) : **विजय रंजन** : अवध–अर्चना प्रकाशन, फैजाबाद , मूल्य : 300 रुपये।

साहित्य विविध विधाएँ (आलोचना) : **शशि सहगल** : परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 240 रुपये।

बरेली सेन्ट्रल जेल (साक्षात्कार) : **कविता भारत** : लोक प्रकाशन गृह, दिल्ली, मूल्य : 40 रुपये।

ऑस्कर अवार्ड्स : यह कठपुतली कौन नचावे (फिल्म) : **रामजी तिवारी** : द ग्रुप, जन संस्कृति मंच, ग़ाज़ियाबाद, मूल्य : 40 रुपये।

सपनों की सौग़ात (एकांकी संग्रह) : **भगवान अटलानी** : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, मूल्य : 150 रुपये।

लावण्यदेवी (उपन्यास) : **कुसुम खेमानी** : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 300 रुपये।

धरती अधखिला फूल है (कविता संग्रह) : **एकान्त श्रीवास्तव** : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 250 रुपये।

बढ़ई कुम्हार और कवि (आलोचना) : **एकान्त श्रीवास्तव** : किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 500 रुपये।

पानी भीतर फूल (उपन्यास) : **एकान्त श्रीवास्तव** : वाणी प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 300 रुपये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी की साहित्यिक विरासत और आधुनिक जगत में उसकी समीचीनता

आधुनिक जगत् की बात जब हम करते हैं, तो हमारे सामने एक ओर विज्ञान और टेक्नोलॉजी का अत्यंत विकसित युग आकर खड़ा हो जाता है; आधुनिक उदारीकरण और ग्लोबलाइजेशन द्वारा विश्व को आर्थिक ग्लोब में देखने की परिकल्पना सामने आती है, वहीं दूसरी ओर शीत युद्ध और आतंकवाद का परम भयानक रूप भी है; भुखमरी, बीमारी और बेरोजगारी का विराट काला समुद्र भी है। अपनी अस्मिता और स्वार्थों के खोने का भय; साम्प्रदायिक, जातीय और क्षेत्रीय वैमनस्य का रूप ले चुका है। हमारा विश्व, दिन पर दिन एक जटिल विश्व होता जा रहा है। अत्याधुनिकता के नाम पर मानवीय मूल्यों का सतत् ध्वंस, पुनरुत्थान की भयावह वापसी आदि कहीं न कहीं लोकव्यापीकरण और आधुनिक चेतना को निरर्थक बनाती प्रतीत होती हैं। हमारी शती ने साम्यवाद से लेकर अनेक विचार-सरणियों का उद्भव और पतन देखा है। दो-दो भयानक युद्ध देखे हैं, विकसित राष्ट्रों के आतंकवादी व्यूह में गरीब देशों को फँसते देखा है और देखा है कि राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध, दोहरे कूटनीतिक मानदंडों से परिचालित हो रहे हैं। तकनीकी विकास इस चरम सीमा पर पहुँच गया है कि उससे मनुष्य की संवेदनाओं पर कहाँ-कहाँ आघात होता है इसकी नाप-तौल भी मुश्किल हो गई है। परिवारों, सार्थक परम्पराओं और मानवीय मूल्यों और सम्बन्धों के अनवरत टूटने के दौर से हम गुज़र रहे हैं। ऐसे तमाम दिग्भ्रमों के बीच से सर्जनात्मक संवेदना के लिए राह निकालना आज की सबसे बड़ी चुनौती है।

हमारी चिंता यह है कि क्या हमारी समूची साहित्यिक विरासत और सांस्कृतिक उपलब्धियाँ मिलकर इस विकट समय में कोई सार्थक भूमिका निभा सकती है?

हिन्दी, पण्डितों की नहीं जनता की भाषा है। सौभाग्यवश हिन्दी साहित्य का जन्म भी फक्कड़ सिद्धों और नाथों की बानियों में हुआ। यह संतों की कुटिया में पला और बड़ा हुआ। सिद्ध हों या संत या भक्त, सबने जनता को प्रेम, उदारता और मानवीयता की सीख दी है। तत्कालीन राजनीति जब लोगों के बीच मतभेद पैदा कर रही थी, तब संत और भक्त कवि परस्पर जुड़ने के लिए जनता का आह्वान कर रहे थे। तुलसी अगर कह रहे थे- 'सियाराम मय सब जग जानी' तो कबीर- हिन्दुओं और तुर्कों के बीच एक ही ईश्वर होने के मर्म सिखा रहे थे। जायसी और प्रेममार्गी कवियों ने तो फारसी लिपि में भारतीय जन-जीवन को अभिव्यक्त कर कमाल का काम किया था। संतों ने पाखंड, हिंसा, द्वेष और तमाम ऐसे बाह्याचारों पर लगातार प्रहार किए, जो मनुष्य को मनुष्य से न सिर्फ़ अलग करते हैं; बल्कि पारस्परिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वैमनस्य की जड़ों को सींचते हैं। सिद्धों, नाथों, पंथ कवियों या संतों के धर्म के जो भी माध्यम रहे हों, उनका काव्य लोक जीवन और लोक मूल्यों की अन्विति का काव्य था।

भक्ति काल के बाद आए रीति काल में प्रमुख रूप से कविता की पच्चीकारी करने और अभिव्यक्ति को प्रेम के रूमानी घेरे में समेटने की भले ही कोशिश हुई हो, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से ऐसी राग-भावना की अभिव्यक्ति हुई जो कम-से-कम ऐसी अभिव्यक्तियों से बेहतर थी, जिनसे मानवीय पाखण्ड और विकृतियाँ पनपती हैं। इस युग में भी ऐसे कवि हुए, जो प्रेम की सनातन मार्मिकता व्यक्त कर रहे थे और राष्ट्रीय स्वाभिमान के उस विनाश युग में ओजस्वी वाणी से राष्ट्रीय संकल्प और मूल्यों की रक्षा करने की प्रेरणा दे रहे थे।

यह हिन्दी की ही विरासत थी कि अगर किसी समय धर्म के केन्द्र से मानवीय रागात्मकता और मूल्याश्रित जीवन को उजागर किया गया था, तो उसकी परिणतियाँ किसी पतनोन्मुख युग में न होकर आधुनिक युग के लिए प्रेरणादायी चेतना के रूप में हुईं। भारतेन्दु युग का सामाजिक जागरण, रूढ़ियों से मुक्त होने की कामना और सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक पाखंडों पर प्रहार मूल रूप से हिन्दी के मूल्याश्रित लोक चरित्र और लोक चेतना का ही अनवरत प्रवाह था। राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के युग में रचनाकारों की वाणी ने परम्परा के श्रेष्ठ उपादानों के माध्यम से लोगों की आत्महीनता को दूर करते हुए उनके अन्दर एक ऐसा ओजस्वी राष्ट्रीय भाव जगाया, जो तत्कालीन समय की आवश्यक मांग थी। मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे राष्ट्रीय कवियों की वाणी हिन्दी-भाषी जनता की वाणी ही थी।

तात्पर्य यह कि प्रारम्भिक सिद्ध कवियों की काव्य-साधना से लगाकर आगे भी जारी उत्तरदायी कवियों में मनुष्य के जिस मंगल की आकांक्षा और उसे नष्ट करने वाली रूढ़ियों पर प्रहार करने की प्रवृत्ति थी, वही संत और भक्त कवियों की वाणी में अधिक प्रबल होकर उभरी। ईर्ष्या, घृणा और मूल्यों के पतन के विरुद्ध मनुष्य के भीतर से एक श्रेष्ठतर और उदात्त भावना की सृष्टि करना इस साहित्य का लक्ष्य रहा है। सौन्दर्य और प्रेम की नदियाँ बहाने वाले कवियों ने भी मनुष्य के हृदय में रागात्मकता का प्रसार किया है और एक ऐसी दुनिया की तलाश करनी चाही है, जिसमें द्वेष के लिए कोई जगह न हो। जब हमारे समाज को रूढ़ियों ने जकड़ा, जब वह अनेक प्रकार के अंधविश्वासों और साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद के खूंखार जबड़ों में फँसा था, तब भी हमारे लेखकों ने उनके खिलाफ हम सब को सचेत किया और मनोबल बढ़ाया। यह हिन्दी की साहित्यिक विरासत का ही सार्थक विकास था। छायावादी कवियों ने कविता और गद्य के माध्यम से भारतीय जन-मानस को अपनी सांस्कृतिक अस्मिता का बोध कराया और उनके भीतर सोए ऊँचे मानवीय भावों को जाग्रत किया। कामायनी, राम की शक्ति पूजा, चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, तुलसीदास, जागो फिर एक बार आदि ऐसी रचनाएँ हैं, जो इतिहास के संदर्भों को सामयिक अर्थ देती हैं और मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों को जाग्रत कर सांस्कृतिक और सामयिक संघर्ष को नई अर्थवत्ता देती हैं।

सौन्दर्य और प्रेम से जीवन को परिशुद्ध करते हुए एक ऐसी निष्कलुष उदात्त भावना इन रचनाओं के माध्यम से लोगों के मन में प्रवेश कर रही थी, जो राष्ट्रीय संघर्ष के लिए बल भी थी और मानसिक विकास के लिए संबल भी। इतना ही नहीं, समकालीन समस्याएँ, अन्तर्बाधाएँ और उत्पीड़न को भी इन रचनाकारों ने नई अर्थवत्ता दी और सदियों से मन में बैठी गुलामी से मुक्त होने का आह्वान किया। यह मनोवैज्ञानिक उपचार निश्चय ही महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि बाहर की बेड़ियाँ तोड़ने से पहले जरूरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
होता है भीतर की बेड़ियों को काटना। 'ध्रुवस्वामिनी' का पुरुष-उत्पीड़न से मुक्त होकर अपने स्वतंत्र नारी व्यक्तित्व को घोषित करना या 'चतुरी चमार' और 'पगली' जैसे चरित्रों का अपने विशिष्ट व्यक्तित्व और संघर्ष द्वारा नये अर्थ में उजागर होना या तत्कालीन अकाल, भुखमरी और ग्रामीणों की समस्याओं का गद्य व कथा के माध्यम से अवतरित होना यह दिखाता है कि किस तरह हमारे रचनाकार जीवन की उत्कट समस्याओं और मानवीय सम्बन्धों को नए ढंग से परिभाषित कर रहे थे।

प्रेमचन्द और उनके युग के रचनाकारों ने ग्राम्य-जीवन और साधारण मनुष्य की यातनाओं के साथ उनकी उदात्तताओं का जो रूप प्रस्तुत किया; उसने साहित्य में परम्परागत रूप से चली आ रही नायक की अवधारणाओं को ही बदल दिया। उन्होंने अपनी संवेदनशील सशक्त लेखनी द्वारा प्रमाणित किया कि बड़े कुल या समृद्धि के बीच ही बड़े आदमी पैदा नहीं होते; बल्कि दरिद्रता व अभाव के बीच भी ऐसे इंसान पैदा होते हैं, जो नायक या महानायक बनने की क्षमता रखते हैं। शास्त्रीय अवधारणाओं का यह बदलाव असल में हिन्दी साहित्य की उस अंतर्वाही चेतना का ही प्रतिफल है, जो मनुष्य के अंतर्जगत और व्यक्तित्व को उसकी बाह्य स्थितियों की तुलना में सदैव अधिक महत्त्व देती आई है। वर्ग-वैषम्य और शोषण विरोधी लेखकीय चेतना यद्यपि मार्क्सवाद के प्रभाव से अधिक प्रखर हुई, परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि उस समय तक प्रेमचन्द 'गोदान' सहित अपनी सब महत्त्वपूर्ण कृतियाँ लिख चुके थे। उधर छायावादी कहे जाने वाले जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल' और 'तितली' जैसे प्रचण्ड आक्रामक और ग्राम्य-जीवन की नई रूप-रेखा प्रस्तुत करने वाले उपन्यास लिख दिए थे। इस संदर्भ में निराला की 'भिखारी', 'दान' जैसी कविताओं को भी देख सकते हैं। आशय यह है कि हिन्दी साहित्य पर मार्क्सवाद के प्रभाव को मान्यता देते हुए भी हम यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि मानवीय संवेदना और समानता की भावना के कारण हमारे रचनाकार स्वयं ही प्रगतिशील थे, किसी आयातित आग्रह के कारण नहीं। प्रेमचन्द के युग में ही रामचन्द्र शुक्ल जैसे आलोचक हुए, जिन्होंने आलोचना की परम्परा को नई धार दी। शुक्ल जी की आलोचना में सर्वहारा की ही नहीं, प्रकृति और जीवन के समस्त पक्षों की मार्मिक अभिव्यक्ति का आग्रह था, जिनसे मनुष्य सही अर्थों में सामाजिक मनुष्य बनाता है। बाद के प्रगतिवादी युग में लेखकों ने निश्चय ही मार्क्सवाद से प्रभाव ग्रहण किया और सामाजिक चिंतन को विचारधारा की सीमाओं में बाँधने की कोशिश की; फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यहाँ परम्परा की सचेत संवेदना की अनुपस्थिति है।

उदाहरण के रूप में हम केदारनाथ अग्रवाल की प्रकृति सम्बन्धी अनेक कविताएँ, नागार्जुन की 'बादल', सुमन की महात्मा गाँधी की मृत्यु पर लिखी रचनाएँ और 'जल रहे हैं दीप जलती है जवानी' जैसी अनेक रचनाओं को ले सकते हैं। हिन्दी के लेखकों ने शोषण के खिलाफ जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा की वे इस शती में स्मरण रहेंगे। चाहे प्रगतिशील युग हो या नये साहित्य या उत्तर आधुनिकता का युग ही क्यों न हो, हमारे विभिन्न लेखकों ने व्यक्ति, देश, समाज की और मानवता की समस्याओं के जिन धरातलों को छुआ है, वे आज भी प्रासंगिक हैं। इसी दौर में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यासों की समानांतर धारा साहित्य में प्रवाहित थी, जो इतिहास और परम्परा को नये अर्थों में प्रतिष्ठित कर रही थी। इस संदर्भ में वृंदावन लाल वर्मा जैसे लेखकों को उद्धृत कर सकते हैं।

नई कविता, नई कहानी, नई आलोचना अर्थात् नये साहित्य के युग में हम देखते हैं कि अनेक विचार और अवधारणाएँ पश्चिम से हमारे देश में प्रवेश कर रही थीं और हमारे लेखकों को आकर्षित कर रही थीं। परिणामस्वरूप हमारे साहित्य में कई विचारों और प्रभावों का संक्रमण देखा गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समय की गति जैसे-जैसे तीव्र होती जाती है और विश्व का भूगोल सिमटने लगता है; वैसे-वैसे अनेक प्रकार की पारस्परिक अंत:क्रियाएँ होने लगती हैं। दुनिया का पास होना एक मुहावरा भर नहीं है; ऐसा ज्वलंत सत्य है जिससे इनकार करने का कोई औचित्य नहीं। भारतीय जीवन, ज्ञान और साहित्य के कितने ही प्रभाव दूसरे देशों की रचनाओं पर पड़े हैं। यह ठीक है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में प्रभावों का प्रवाह पश्चिम की ओर से ही आया है; फिर भी यह बात आश्वस्त करती है कि उन प्रवाहों में भारत बहा नहीं है। इसका कारण उसकी ऐसी परिपक्व मानसिकता और ठोस वैचारिक एवं मानवीय आधार-भूमि है, जो गहराई से भारतीय मनुष्य में जमी है। यह उल्लेखनीय है कि इतने सारे वैचारिक संक्रमणों के बावजूद हिन्दी साहित्य अपनी जमीन और उसकी गंध से जुड़ा हुआ साहित्य है। किसी भी दौर में वह सरासर विदेशी नहीं हुआ; न अपने देश की मूल समस्याओं और परम्परा की उत्कृष्टता से विमुख हुआ। 'अन्धायुग' हो या 'आत्मजयी', 'अपने-अपने अजनबी' हो या 'मैयादास की माड़ी', 'झूठा सच' हो या 'अनामदास का पोथा'- सबके भीतर आधुनिक चेतना के साथ परम्परा से उपलब्ध श्रेष्ठ तत्त्वों का समन्वय दिखाई देता है और ऐसा विखंडन भी, जो ऐतिहासिक प्रक्रिया का अनिवार्य भाग है।

हिन्दी के वर्तमान साहित्य में भी, जो बहुत से नये और ताजे रचनाकारों द्वारा समृद्ध किया जा रहा है; हिन्दी जैसी जन-भाषा का जन-चरित्र और लोक-संस्कार विद्यमान है। आज के रचनाकारों के कथ्य और भाषा-शैली पर लोक-भाषा और लोक-जीवन की गहरी छाप है; यह इस बात को साबित करती है कि आज के साहित्य का अपनी विरासत से गहरा रिश्ता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पिछले समय में भारत की राजनीति और राजनीतिक दलों में कई तरह की संकीर्णताओं ने प्रवेश किया। कई बार तो ऐसा लगा कि कहीं हम अपने कठमुल्लापन, जातीय और प्रांतीय भेदभाव, आतंकवाद और शोषण-प्रक्रियाओं के चलते मध्य काल में तो नहीं लौट गए हैं; हालाँकि यह एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति भी नज़र आ रही दिखाई पड़ती है, परन्तु इस बात का गर्व के साथ उल्लेख किया जा सकता है। कि हिन्दी का कोई भी सर्जनात्मक लेखक, चाहे वह घोषित वामपंथी हो या घोषित दक्षिणपंथी, किसी ने भी सम्प्रदायवाद, जातिवाद, अलगाववाद और अन्य संकीर्णताओं का पक्ष नहीं लिया। इतना ही नहीं, वह बराबर उसके विरोध में खड़ा रहा। यदि हम इस सर्जनात्मक चरित्र को देखें, तो हमें इसमें संदेह नहीं रह जाएगा कि हिन्दी की साहित्यिक विरासत विधेयात्मक है, नकारात्मक नहीं। यहाँ एक ऐसी विरासत है, जो हमें परम्परा से भी सही रूप में जोड़ती है और अपने वर्तमान में भी तन कर खड़े होने की हिम्मत पैदा करती है।

हमारी साहित्यिक विरासत में जो गहरा आध्यात्मिक स्पर्श है; जो एक निरपेक्ष उदात्तता है; निरर्थक परम्पराओं और पाखंडों पर जो करारी चोट है और समस्याओं की कठिन राहों से गुजर कर आशा और आस्था की नई दिशा का जो संधान है; वह किसी भी दिग्भ्रम के युग में, परिवेश बदल जाने पर भी निश्चय ही एक प्रकाश-स्तंभ का काम कर सकता है, क्योंकि समस्याओं की शक्ल भले बदल जाए चरित्रों, कथाओं या विषयों के भीतर निहित कथ्य मनुष्य को विवेक संगत अन्तर्अर्थ और दृष्टि देने में समर्थ होता है।

कुसुम खेमानी
3 लाउडन स्ट्रीट कोलकाता 700017

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रिल्के ने युवा कवियों को भारी–भरकम विषयों के प्रति चेताया था, क्योंकि वे अत्यधिक कठिन होते हैं और एक महान कलात्मक परिपक्वता की माँग करते हैं। उसने उनको सुझाया था कि वे अपने चारों ओर जो देखते हैं, कैसे वे अपना प्रत्येक दिन व्यतीत करते हैं, क्या खो गया है, क्या पाया गया है, इन सब पर लिखें।

उसने उनको उत्साहित किया था कि वे अपनी कला में उन चीज़ों को लाएँ जिनसे हम घिरे रहते हैं, वे स्वजनों से और अपनी स्मृतियों में बसी वस्तुओं से बिम्ब ग्रहण करें।

उसने लिखा था कि, 'यदि तुम्हें अपनी दिनचर्या विपन्न लगे तो जीवन को दोष नहीं देना। इसके लिए तुम स्वयं दोषी हो। तुम स्वयं इतने पर्याप्त कवि नहीं हो कि जीवन की सम्पदा को अनुभव कर सको।' यह सलाह तुम्हारे लिए चालू और मूढ़ लग सकती है। यही वजह है कि हम अपने पक्ष में विश्व साहित्य के सर्वाधिक esoteric कवि को ले आए– ज़रा देखो, उसने कैसे तथाकथित साधारण चीज़ों की प्रशंसा की है।

विस्लाव शिम्बोर्स्का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Registered No. KOL RMS/118/2013-2015
Vagarth June 2013 Regd.No. 61730/95
Date of Publication : 16th May 2013

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सृजन स्मरण

आज़ाद देश की नई परीक्षा हुई शुरू
कुरबानी का फिर नया ज़माना आया है,
फिर नई चुनौती वहशी हूणों की आई
फिर नये राष्ट्र ने भैरव राग गुँजाया है।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

(1915–2002)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक : नन्दलाल शाह द्वारा भारतीय भाषा परिषद 36ए शेक्सपियर सरणी, कोलकाता 17 के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित
मुद्रक : [illegible] लि., 13 प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट, कोलकाता 700072
संपादक : एकान्त श्रीवास्तव □ कुसुम खेमानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant